इकाई -1 व्यवस्था विश्लेषण- राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2. उद्देश्य

1.3 व्यवस्था विश्लेषण

1.4 राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा

1.5 राजनीतिक व्यवस्था की विशेषताएं

1.6 उपादेयता और सीमाएं

1.7. सारांश

1.8. शब्दावली

1.9.अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10.संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.11.सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

1.12.निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

राजनीति विज्ञान की परम्परागत अवधारणा राजनीति के जिन गतिशील तत्वों की पहचान और उनका सम्यक विश्लेषण करने में असफल रही, उसको राजनीति विज्ञान की नयी अवधारणा ने, सार्वभौमिक रूप से समझने में सहायता प्रदान की। राजनीति विज्ञान की आधुनिक अवधारणा ने नए परिवर्तनों को समझने के लिए न सिर्फ नए पद्धतियों की पहचान की अपितु प्राचीन अवधारणाओं को उनकी प्रासंगिकता की कसौटी पर भी कसते हुए, उनकी उपादेयता की सीमाओ की पहचान भी की। नए और आधुनिक उपागम में वैज्ञानिक पद्धतियो के प्रयोग ने उसकी विश्वसनीयता को स्थापित करते हुए, उसकी आवश्यकता को रेखांकित किया। तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत उपागम राजनीतिक संरचनाओं के व्यवहार हो सही अर्थों में समझने में विफल साबित हुए। राजनीतिक प्रक्रियाओं और व्यवहार के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए, नए विधियों और उपागमों की खोज प्रारम्भ हुयी जिसमें व्यवस्था विश्लेषण सर्वाधिक आधारभूत और महत्वपूर्ण है।

1.2. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- राजनीति विज्ञान के आधुनिक अवधारणा के विकास को बेहतर रुप से समझ सकेंगे।
- राजनीति विज्ञान के परम्परागत अवधारणा की कमियों को जान सकेंगे।
- राज्य अथवा अन्य सांस्थानिक संरचनाओं के स्थान पर राजनीतिक व्यवहार को एक व्यवस्थागत संरचना के रूप में जान पाएंगे।
- राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं की गत्यात्मकता को समझ सकेंगे।

1.3 व्यवस्था विश्लेषण

विश्लेषण के एक उपकरण के रूप में राजनीतिक व्यवस्था को समझने का यत्न है। व्यवस्था विश्लेषण राजनीतिक सिद्धांत को परम्परागत सिद्धांतों से हट कर एक सामान्य व्यवस्था उपकरण के रूप में विश्लेषित करता है, जो बिना किसी भेदभाव के सभी सांस्थानिक संरचनाओं के विश्लेषण के लिए एक उपयुक्त उपकरण के रूप में है। व्यवस्था सिद्धांत परम्परागत सिद्धांत के विपरीत राजनीतिक संरचना को एक उपकरण के रूप में स्वीकार करता है जो कुछ निश्चित सार्वभौमिक सिद्धांतों के साथ कार्य करता है एवं समस्त राजनीतिक सांस्थानिक व्यवस्था में एक समान रूप से कार्य करता है। राजनीति विज्ञान की गत्यात्मकता, इस विषय के साथ नए आयाम जोड़ती है और प्राचीन अवधारणाएं उन नवीन प्रवृत्तियों को उनकी समग्रता के साथ बढ़ते हुए विषयक्षेत्र और उनके विविध आयामों को समझने में पर्याप्त सिद्ध नहीं हुयीं। राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा इस कमी को दूर करने में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुयी।

1.4 राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा

आधुनिक राजनीतिशास्त्र के अध्येताओं और विद्वानों ने यह महसूस किया कि, यदि राजनीतिक घटनाओं एवं संस्थाओं के गत्यात्मकता और उसके साथ विषय में जुड़ने वाले नवीन आयामों का अध्ययन करना है तो राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के क्षेत्र में राज्य रूपी संस्था के अत्यधिक महत्व को कम करना होगा। राजनीति शास्त्र के गत्यात्मक तत्वों जैसे सामाजिक प्रक्रिया एवं राजनीतिक प्रक्रिया के अंतःसंबंधों, उनको प्रभावित करने वाली संरचनाओं एवं उनकी पद्धतियों, एक इकाई के रूप में राजनीतिक व्यवहार और पर्यावरण (राजनीतिक) से उसके अंतःसंबंधों का निरूपण एवं उसके अध्ययन को केन्द्र में लाना होगा, तभी एक समग्र अवधारणा का विकास एवं उसका अध्ययन संभव हो सकेगा।

राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के लिए व्यवस्था सिद्धांत की अभिप्रेरणा 'सामान्य व्यवस्था सिद्धांत' से प्राप्त होती है। सामान्य व्यवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक लुडविग वान बर्टलनफी ने किया था। उन्होंने समस्त प्राकृतिक विज्ञानों के समायोजन पर जोर दिया था। प्राकृतिक विज्ञान से समाज विज्ञान के विषय, विशेष रूप से मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा नृविज्ञान तथा तत्पश्चात राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में भी इसका लगातार प्रयोग किया जाने लगा। अमरीकन राजनीतिशास्त्रियों जैसे डेविड ईस्टन, गैब्रियल आमण्ड, मार्टन काप्लान आदि के नाम इसमें प्रमुखता से लिए जा सकते हैं। व्यवस्था सिद्धांत को आधुनिक राजनीतिक संरचनाओं और उनकी प्रक्रियाओं को समझने के लिए, आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत के एक सर्वमान्य उपकरण के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। इसी व्यवस्था सिद्धांत के आधार को स्वीकार करते हुए कालांतर में अनेक नए आयामों को सम्मिलित करते हुए इसको विकसित करने का सफल प्रयास किया गया।

राजनीतिक व्यवस्था को समझने के लिए 'व्यवस्था' की अवधारणा को समझना भी समीचीन होगा। 'व्यवस्था' (system) शब्द भौतिक विज्ञान से लिया गया है जिसका अर्थ सुपरिभाषित अंतर-क्रियाओं के ऐसे समूह से है जिसकी सीमाएं निर्धारित की जा सकें। व्यवस्था की अवधारणा में विभिन्न समूह अंतःक्रिया और समन्वय की प्रक्रिया से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं और एक सीमा में पर्यावरण से प्रभावित होते और पर्यावरण को प्रभावित करते हुए स्थायित्व स्थापित करने का यत्न करते हैं। किसी भी व्यवस्था के अंतर्गत उसके विभिन्न अंग समन्वय की प्रक्रिया में एक दूसरे से जुड़े रहते हैं और एक सांगठनिक स्वरूप का निर्माण करते हैं। जहां भी संगठन अथवा उसके गुण पाए जाते हैं जिसमें उसकी विभिन्न इकाईयां एक दूसरे से सम्बद्ध होकर, समन्वय स्थापित करते हैं वहां व्यवस्था पायी जाती है। राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं के ये समस्त गुण, राजनीतिक व्यवस्था के रूप में राजनीतिक विकास और उसकी विभिन्न प्रक्रियाओं और उसके तत्वों को समझने में सहायक सिद्ध हुए। राजनीतिक व्यवस्था में, विभिन्न राजनीतिक संरचनात्मक तत्व एक दूसरे से सम्बद्ध होकर और परस्पर अंतःक्रिया करते हुए एक निश्चित पर्यावरण में कार्य करते हैं। राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा सामान्य रूप से सभी जगह बराबर रूप से लागू होती हैं जहां भी किसी प्रकार काराजनीतिकक्रिया कलाप दृष्टिगत होता है। यहां, यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि, बहुत बार एक व्यवस्था के अंतर्गत भी अनेक व्यवस्थाएं कार्य करती हुयी दिखायी देती हैं जिन्हें हम उप-व्यवस्था के रूप में पहचान सकते हैं। कोई भी मानवीय व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था बन जाती है यदि उसके अंतर्गत शक्ति, सत्ता, नियम एवं नियंत्रण के तत्व दिखायी देने लगते हैं। राजनीतिक संगठन एवं व्यवस्था अन्य संगठनों से इस रूप में भिन्न होते हैं कि, इसमें सत्ता और नियम विद्यमान रहते हैं जबकि अन्य में उनका अभाव रहता है अथवा नगण्य रूप में होता है। व्यवस्था के तीन गुण सामान्य रूप से सभी व्यवस्थाओं में सर्वव्यापक रूप से पाए जाते हैं-

1. व्यापकता (Comprehensiveness)
2. अन्योन्याश्रय (Interdependence) तथा
3. सीमाएं (Boundaries)।

व्यापकता- व्यापकता का अर्थ यह है कि, किसी भी व्यवस्था के अंतर्गत उसके संरचनात्मक तत्वों के अतिरिक्त भी वो समस्त तत्व जो किसी भी रूप में उसकी प्रक्रिया का हिस्सा होते हैं अथवा किसी भी रूप में उससे सम्बद्ध होते हुए उससे प्रभावित होते हैं अथवा प्रभावित करते हैं, उस व्यवस्था का हिस्सा होते हैं। राजनीतिक व्यवस्था में, राजनीतिक संरचनाओं के अतिरिक्त उसकी विभिन्न प्रक्रियाएं, जाति, धर्म, परिवार, सामाजिक घटनाएं आदि भी उसका हिस्सा होती हैं।

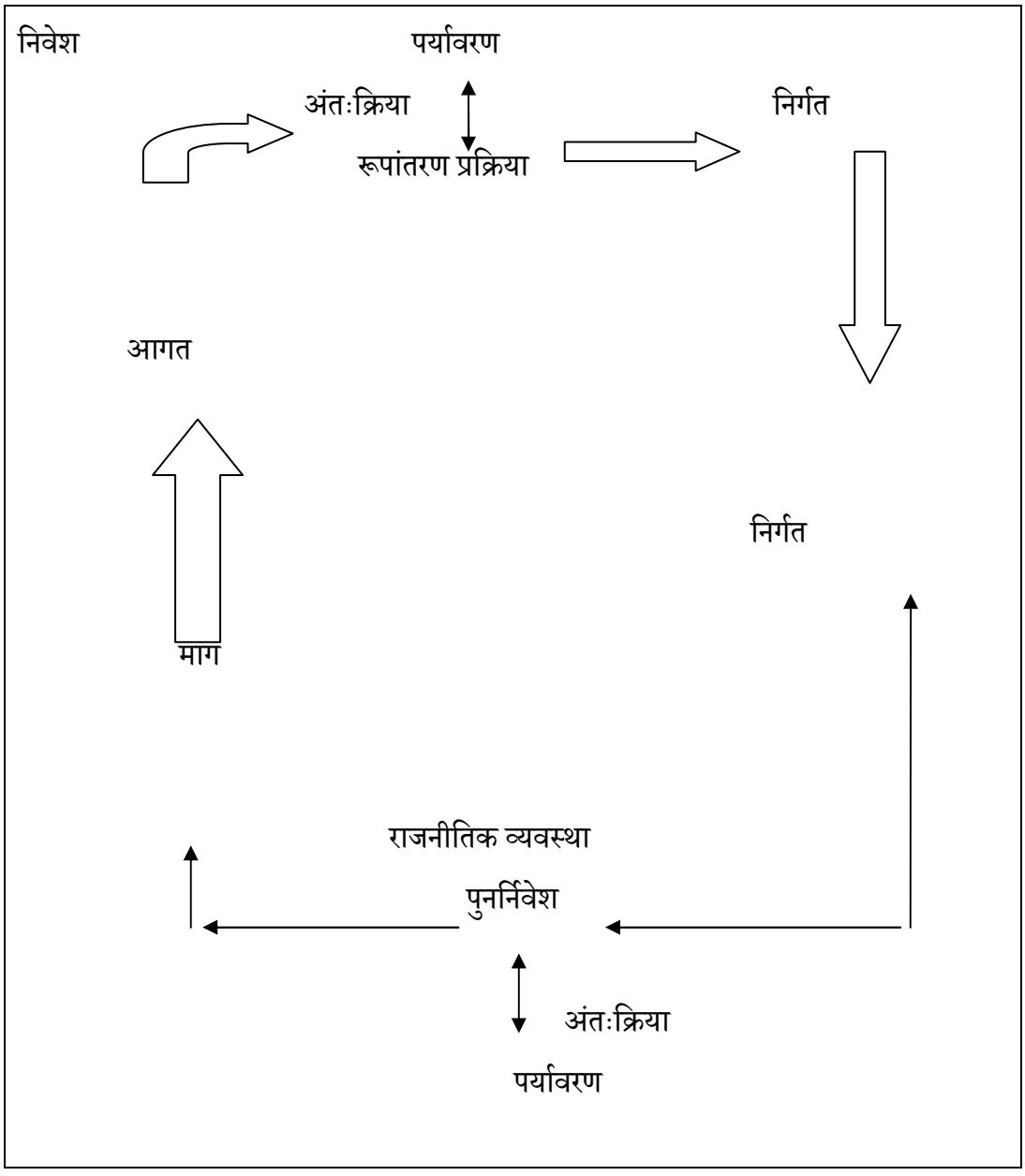

सामान्य राजनीतिक व्यवस्था रेखाचित्र

अन्योन्याश्रय- अन्योन्याश्रय का अर्थ है परस्पर एक दूसरे पर आश्रित होना। व्यवस्था के अंतर्गत एक अंग के गुणों में परिवर्तन का प्रभाव दूसरे संघटकों पर स्वभाविक रूप से पड़ता है जिसे अन्योन्याश्रिता कहते हैं। राजनीतिक व्यवस्था में भी एक घटक के परिवर्तन का प्रभाव स्वभाविक रूप से दूसरे घटकों पर परिलक्षित होता है। सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन का प्रभाव स्पष्ट रूप से राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं पर देखा जा सकता है।

सीमाएं- सीमा से आशय है कि, प्रत्येक व्यवस्था किसी निश्चित बिन्दु से प्रारम्भ होकर किसी निश्चित बिन्दु तक रहती है जिसके अंदर ही उसकी समस्त अंतःक्रियाएं सम्पादित होती हैं। ऐसा बिन्दु जहां पर अन्य व्यवस्थाओं की परिधि समाप्त होती है और राजनीतिक संरचनाओं और इकाईयों की गतिविधियां प्रारम्भ होती हैं, राजनीतिक व्यवस्था की सीमा कहलाती है।

1.5 राजनीतिक व्यवस्था की विशेषताएं

आधुनिक राजनीति विज्ञान के विकास में व्यवस्था विश्लेषण ने निर्विवाद रूप से सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। एक विश्लेषण के उपकरण के रूप में व्यवस्था विश्लेषण ने राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं को समझने का न सिर्फ नवीन आयाम प्रदान किया है अपितु इसको प्रभावित करने वाले और राजनीतिक विकास को उसकी गतिशीलता में समझने का सार्वभौमिक आधार प्रदत्त किया है। राजनीतिक व्यवस्था को समझने में आधुनिक राजनीतिक विज्ञानियों की निम्न परिभाषाएं सहायक होंगी।

राबर्ट डहल के अनुसार, ''राजनीतिक व्यवस्था मानव सम्बन्धों का वह स्थायी संरूप है जिसके अंतर्गत शक्ति, नियम और सत्ता महत्वपूर्ण मात्रा में निहित हों।'' डेविड ईस्टन के अनुसार, ''राजनीतिक व्यवस्था किसी समाज में अंतःक्रियाओं की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से बाध्यकारी या सत्तात्मक आवंटन निर्मित एवं कार्यान्वित होते हैं।'' औरन यंग राजनीतिक व्यवस्था को एक परिवर्तन प्रक्रिया मानते हैं जो कार्य करती है, निर्गत उत्पन्न करती है और पर्यावरण को परिवर्तित करती है जिसमें राजनीतिक व्यवस्था और उसके पर्यावरण में गतिशील प्रक्रिया के प्रचलन के आधार पर निरंतर आदान-प्रदान होता रहता है।'' आमण्ड तथा पावेल के अनुसार ''राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत न केवल सरकारी संस्थाएं जैसे विधान मण्डल, न्यायालय तथा प्रशासनिक अभिकरण सम्मिलित हैं, बल्कि सभी संरचनाओं के राजनीतिक रूप आते हैं।'' उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर राजनीतिक व्यवस्था की निम्न विशेषताओं को निर्दिष्ट किया जा सकता है-

1.बृहद सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत, राजनीतिक व्यवस्था सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, जो अन्य सामाजिक संरचनाओं को भी प्रभावित करती है। अरस्तू की परिभाषा भी व्यक्ति को स्वभाविक रूप से एक राजनीतिक प्राणी के रूप में चिन्हित करता है और एक राजनीतिक इकाई के रूप में उसकी भूमिका सामाजिक व्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा है।

2.राजनीतिक व्यवस्था समाज के भीतर मनुष्य के उन अंतःसंबंधों को व्यक्त करता है जिनके आधार पर मनुष्य यह निर्णय करता है कि, किन आकांक्षाओं और उद्देश्यों को सार्वजनिक नीतियों का रूप देते हुए उसका क्रियान्वयन किया जाय।

3.राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत औपचारिक के साथ साथ अनौपचारिक प्रक्रियाओं और भूमिकाओं का भी अध्ययन किया जाता है।

4.कोई भी मानवीय संबंधों की संरचना राजनीतिक व्यवस्था का रूप धारण कर लेती है, यदि उसके अंतर्गत शक्ति, सत्ता, नियंत्रण एवं नियम के तत्व प्रभावी रूप में दिखायी देते हैं।

इसके अतिरिक्त भी राजनीतिक व्यवस्था की निम्न विशेषताएं सार्वभौमिक रूप से सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में पायी जाती हैं-

1.राजनीतिक संरचनाओं की समानता- समस्त राजनीतिक वयवस्थाओं में अनिवयर्यतः कुछ राजनीतिक संरचना पायी जाती है। इन संरचनाओं में परस्पर तुलना की जा सकती है। इन संरचनाओं में विभेद का अंतर केवल विशिष्टीकरण का होता है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में हितों के निर्धारण के साथ-साथ उनका मांग के रूप में व्यवस्था में प्रवेश, रूपांतरण की प्रक्रिया और नीतियों नियमों के रूप में निर्गत के रूप में पुनः पर्यावरण में प्रवेश, सामान्य रूप से पाए जाते हैं। ये विभिन्न कार्य एक दूसरे से पृथक-पृथक संरचनाओं अथवा मिश्रित रूप में भी हो सकते हैं, किन्तु ये संरचनाएं अनिवार्य रूप से सभी राजनीतिक व्यवस्था में विद्यमान होते हैं।

2.कार्यों की सर्वव्यापकता- राजनीतिक व्यवस्था में कुछ निश्चित कार्य एक बराबर रूप से पाए जाते हैं। हितों के निर्धारण से लेकर निर्गत प्रक्रिया और उनके मध्य अंतःक्रिया प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था के कार्य के रूप में सर्वव्यापक रूप से पाए जाते हैं।

3.राजनीतिक संरचना की विविधता- राजनीतिक व्यवस्था में निश्चित निर्दिष्ट कार्यों को करने के लिए कुछ निश्चित संरचनाएं विद्यमान रहती हैं, जो अपने विशिष्ट कार्य की प्रकृति के कारण एक पृथक स्वरूप में दिखायी देती हैं जैसे कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका। कई बार इन संरचनओं के कार्य मिश्रित स्वरूप में भी दिखायी देते हैं।

4.राजनीतिक संरचनाओं का मिश्रित स्वरूप- कोई भी राजनीतिक व्यवस्था अपने विविध इकाईयों से अपनी अंतःक्रियाओं के कारण एक दूसरे से जुड़ी होती है। अंतःक्रियाओं के कारण कई बार राजनीतिक संरचनाओं का स्वरूप मिश्रित रूप में दृष्टिगोचर होता है।

5.वैधता का अर्जन- किसी भी व्यवस्था की तरह, राजनीतिक व्यवस्था भी अपने स्थायित्व का निरंतर प्रयास करती है और इस प्रयास में वह अपने पर्यावरण से समर्थन प्राप्त कर, अपने नीतिगत निर्णयों एवं अन्य निर्गतों के लिए वैधता अर्जित करती है।

6.राजनीतिक व्यवस्था के भागों में अंतःनिर्भरता- राजनीतिक व्यवस्था के विविध अंगों की परस्पर अंतःनिर्भरता उसे एक व्यवस्था का स्वरूप प्रदान करती है। विविध अंगों का समन्वय और उनकी अन्योन्याश्रिता राजनीतिक व्यवस्था को एक इकाई के रूप में परिणित करती है।

7.राजनीतिक व्यवस्था की सीमा- किसी भी व्यवस्था की तरह राजनीतिक व्यवस्था भी एक सीमा के अंदर कार्य करता है, जो किसी निश्चित बिन्दु से प्रारम्भ होकर निश्चित सीमा के अधीन होता है।

8.राजनीतिक व्यवस्था द्वारा बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग- राजनीतिक व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता, उसके अंदर एक बाध्यकारी शक्ति का पाया जाना होता है जो सत्ता के द्वारा विविध कार्यों को करते हुए, राजनीतिक व्यवस्था के लिए आवश्यक नियंत्रण स्थापित करता है।

1.6 उपादेयता और सीमाएं

व्यवस्था विश्लेषण की अवधारणा जो कि प्राकृतिक विज्ञान के सिद्धांत से अभिप्रेरित है समाज विज्ञान के विषयों, विशेष रूप से राजनीति विज्ञान की अवधारणा को समग्र दृष्टि प्रदान करते हुए, इस विषय को आधुनिक रूप प्रदान करने एवं विश्लेषण के उपकरण के रूप में समझने का यत्न है। इस उपागम से समाज के विभिन्न तत्वों की अंतर्निर्भरता पर ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसके परिणाम स्वरूप अन्तःनिर्भरता व अन्तःक्रियाओं को नियन्त्रित किये जाने वाले नियमों की खोज की जाने लगी, विशेष रूप से राजनीतिक व्यवस्था के संदर्भ में। इस अवधारणा ने एक सामान्य सिद्धान्त के दिशा-निर्देश बनाने का प्रयास किया है जिसके माध्यम से इस विषय की बेहतर समझ विकसित करते हुए, इसके परिवर्तनकारी कारकों एवं गत्यात्मकता को विश्लेषित करते हुए नवीन सिद्धांतों की पहचान हो सके।

व्यवस्था विश्लेषण ने यद्यपि एक विश्लेषण के उपकरण के रूप में समाज विज्ञान सहित, राजनीतिक विज्ञान को एक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है तथापि इसकी सबसे बड़ी सीमा यह है कि, यह पूरी राजनीतिक व्यवस्था को एक उपकरण अथवा मशीन के रूप में देखता है। यह कोई मानकीकृत सिद्धांत प्रतिपादित न करते हुए, मात्र तथ्यपरक विश्लेषणात्मक उपकरण के रूप में ही कार्य करता है। दूसरी जो बड़ी कमी इस अवधारणा को लेकर है वह है, इसकी सीमाओं के निर्धारण की। समाज विज्ञान के विषयों की व्यापकता और परस्पर एक दूसरे से गुंथा होना, इन विषयों के विश्लेषण और व्यवस्था सिद्धांत के रूप में इसकी सीमाओं का स्पष्ट निर्धारण करने में इसकी कमी के रूप में दिखायी देती है। तथापि अपनी सीमाओं के बावजूद भी व्यवस्था सिद्धांत ने राजनीतिक सिद्धांत के विकास में एवं उसको आधुनिक बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अभ्यास प्रश्न

1.राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के लिए व्यवस्था सिद्धांत की अभिप्रेरणा किस सिद्धांत से प्राप्त होती है।

2.सामान्य व्यवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन किस प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक ने किया था ?

3.किस राजनीतिक विचारक ने, राजनीतिक व्यवस्था को मानव सम्बन्धों का वह स्थायी संरूप माना है जिसके अंतर्गत शक्ति, नियम और सत्ता महत्वपूर्ण मात्रा में निहित हों ?

4.अंतःक्रिया एवं अंतःनिर्भरता राजनीतिक व्यवस्था का आवश्यक गुण है। यह कथन सत्य है अथवा असत्य ?

1.7. सारांश

व्यवस्था विश्लेषण ने राजनीतिक प्रक्रियाओं और संरचनाओं को समझने का एक नवीन आयाम प्रदान किया है। राजनीतिक सिद्धांत को परम्परावादी अवधारणा से आधुनिक अवधारणा की तरफ ले जाने में व्यवस्था विश्लेषण का महत्वपूर्ण योगदान है। व्यवस्था विश्लेषण के द्वारा राजनीतिक प्रक्रियाओं और उसकी गत्यात्मकता को समझने में सहायता प्राप्त हुयी तथा आधुनिक एवं नवीन अवधारणाओं के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। व्यवस्था सिद्धांत ने राजनीतिक व्यवस्था को समाज के अन्य घटकों के सापेक्ष समग्रता में विश्लेषित करने का यत्न किया। वर्तमान आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत के विकास में व्यवस्था विश्लेषण के सिद्धांत ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

1.8. शब्दावली

व्यवस्था- यह शब्द भौतिक विज्ञान से समाज विज्ञान में लिया गया है। व्यवस्था का अर्थ सुपरिभाषित अंतर-क्रियाओं के ऐसे समूह से है जिसकी सीमाएं निर्धारित की जा सकें। व्यवस्था की अवधारणा में विभिन्न समूह अंतःक्रिया और समन्वय की प्रक्रिया से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं और एक सीमा में पर्यावरण से प्रभावित होते और पर्यावरण को प्रभावित करते हुए स्थायित्व स्थापित करने का यत्न करते हैं।

मांग- किसी राजनीतिक व्यवस्था में पर्यावरण द्वारा कुछ निश्चित नियमों, सेवा अथवा वस्तु की अपेक्षा में अपने विचारों को राजनीतिक व्यवस्था में सम्प्रेषित करना, राजनीतिक व्यवस्था की मांग कहलाती है।

रूपांतरण- राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत जिस प्रक्रिया द्वारा विविध मांगों को निर्णयन की स्थिति में लाया जाता है उसे रूपांतरण कहा जाता है।

निर्गत- राजनीतिक व्यवस्था में मांग और समर्थन के सापेक्ष, रूपांतरण की प्रक्रिया द्वारा नियम, विनियम, विधि, व्यवस्था, वस्तु आदि के रूप में जो भी सरकार द्वारा प्रदत्त किया जाता है, उसे निर्गत कहा जाता है।

पर्यावरण- जिस राजनीतिक वातावरण और व्यवस्था में समस्त संरचनाएं कार्य करती हैं और मांग,समर्थन, रूपांतरण सहित पुर्ननिवेश की समस्त प्रक्रियाएं सम्पादित होती हैं, उसे राजनीतिक व्यवस्था का पर्यावरण कहा जाता है।

अन्योन्याश्रय- अन्योन्याश्रय का अर्थ है परस्पर एक दूसरे पर आश्रित होना। व्यवस्था के अंतर्गत एक अंग के गुणों में परिवर्तन का प्रभाव दूसरे संघटकों पर स्वभाविक रूप से पड़ता है जिसे अन्योन्याश्रिता कहते हैं।

1.9.अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.राजनीतिशास्त्र के अध्ययन के लिए व्यवस्था सिद्धांत की अभिप्रेरणा 'सामान्य व्यवस्था सिद्धांत' से प्राप्त होती है।

2.सामान्य व्यवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक लुडविग वान बर्टलनफी ने किया था।

3.राबर्ट डहल ने राजनीतिक व्यवस्था को मानव सम्बन्धों का वह स्थायी संरूप माना है जिसके अंतर्गत शक्ति, नियम और सत्ता महत्वपूर्ण मात्रा में निहित हों।

4.यह कथन सत्य है।

1.10.संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, जैन

2.तुलनात्मक राजनीति, जे0 सी0 जौहरी

3.तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं

1.11.सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

1.12.निबंधात्मक प्रश्न

1.राजनीतिक व्यवस्था के संदर्भ में व्यवस्था विश्लेषण सिद्धांत की विवेचना करें।

2.व्यवस्था विश्लेषण सिद्धांत मानवीकीय विषयों और विशेष रूप से राजनीति विज्ञान विषय के विश्लेषण के उपकरण के रूप में कहाँ तक उपयुक्त है? समालोचना करें।

3.व्यवस्था विश्लेषण सिद्धांत के विशेषताओं का उल्लेख करते हुए, इसकी उपादेयता एवं सीमाओं की विवेचना करें।

इकाई - 2 निवेश निर्गत विश्लेषण (डेविड ईस्टन)

इकाई की संरचना

2.1प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 विश्लेष्णात्मक अवधारणा

2.4 निवेश निर्गत विश्लेषण

2.5 निवेश निर्गत विश्लेषण के तत्व

2.6 उपादेयता और सीमाएं

2.7 सारांश

2.8. शब्दावली

2.9.अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.10.संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.11.सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

2.12.निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

राजनीति विज्ञान को आधुनिक स्वरूप प्रदान करने में जिस अवधारणा ने अपना सर्वाधिक योगदान दिया, वह डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था का सिद्धांत था। डेविड ईस्टन कनाडाई मूल के अमेरिकी राजनीति विज्ञानी थे, जो कि अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर थे। डेविड ईस्टन ने व्यवस्था सिद्धांत और निवेश-निर्गत विश्लेषण की अवधारणा का प्रतिपादन कर राजनीति विज्ञान को अपना अमूल्य योगदान दिया। डेविड ईस्टन ने न सिर्फ अपने राजनीतिक सिद्धांतों से 1950 के दशक में व्यवहारवादी सिद्धांतों और अवधारणओं को बल प्रदान किया अपितु 1970 के दशक के उत्तर व्यवहारवाद में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान दिखायी देता है।

व्यवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन 1953 में डेविड ईस्टन ने अपने प्रसिद्ध लेख 'द पोलिटिकल सिस्टम: एन इन्क्वायरी इनटू द स्टेट ऑफ पोलिटिकल (*The Political System: An Inquiry into the State of Political Science*) में राजनीति विज्ञान के विश्लेषण के सिद्धांत के रूप में किया। यद्यपि 'व्यवस्था' की अवधारणा का प्रयोग इसके पूर्व समाजशास्त्र और मनोविज्ञान जैसे विषयों में हो चुका था, किन्तु राजनीति विज्ञान के विश्लेषण के संदर्भ इसका बेहतर प्रयोग डेविड ईस्टन के ही सिद्धांत द्वारा संभव हो सका। इस विषय को आधुनिक कलेवर देने का श्रेय अधिकांशतः तुलनात्मक राजनीति की धारा को जाता है, जिसमें व्यवस्था सिद्धांत सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। कालांतर में ईस्टन ने अपने विविध कृतियों जैसे 'एन एप्रोच टू द एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल सिस्टम'(1953), ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस'(1965), और 'ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ' (1965) द्वारा व्यवस्था सिद्धांत को और पुष्ट किया। व्यवस्था सिद्धांत ने राजनीति की प्रक्रिया को समझने का एक सरल सार्वभौमिक आधार प्रदान किया जो एक समान रूप से किसी भी राजनीतिक प्रक्रिया को समझने में सहायक है। ईस्टन ने राजनीतिक विश्लेषण के क्षेत्र में एक सामान्य सिद्धांत का प्रतिपादन किया है जिसके द्वारा किसी भी राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण एक पैमाने पर किया जा सकता है। ईस्टन के व्यवस्था सिद्धांत के द्वारा जहाँ विकसित राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं को विश्लेषित किया जा सकता है, वहीं अर्द्ध विकसित अथवा विकासशील व्यवस्था को भी उसी व्यवस्था सिद्धांत के द्वारा विश्लेषित किया जा सकता है। व्यवस्था सिद्धांत जहाँ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के विश्लेषण में सहायक है वहीं उसके द्वारा स्थानीय स्तर पर भी समस्याओं का विश्लेषण किया जा सकता है। डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा ने राजनीतिक व्यवस्था को समझने का एक सरल सार्वभौमिक आधार प्रदान किया, जोकि राजनीति को 'मूल्यों के आधिकारिक आवंटन' के रूप में ही देखती है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- राजनीति विज्ञान के संदर्भ में व्यवस्था विश्लेषण की अवधारणा को बेहतर रुप से समझ सकेंगे।
- डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा को जान सकेंगे।
- राजनीतिक व्यवस्था के संदर्भ में आगत, निवेश, रूपांतरण और निर्गत की प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- राजनीतिक व्यवस्था के तहत नीतिगत निर्माण की अंतः प्रक्रियाओं को समझ सकेंगे।
- राजनीतिक व्यवस्था के सामान्य और सार्वभौमिक तत्वों को पहचान सकेंगे।

2.3 विश्लेष्णात्मक अवधारणा

डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा विश्लेषण के एक उपकरण के रूप में राजनीतिक प्रक्रियाओं को उनके सूक्ष्म स्तर पर समझने का यत्न है। ईस्टन द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत दो अर्थों में सामान्य है-

प्रथम, ईस्टन इस विचार को स्वीकार नहीं करता है कि, अलग-अलग राजनीतिक संरचनाओं उनकी प्रक्रियाओं और समस्याओं के विश्लेषण के लिए अलग-अलग सिद्धांत होने चाहिए, अपितु एक ही सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से सभी स्तरों पर लागू होना चाहिए। दूसरा ईस्टन का यह मानना है कि, राजनीतिक सिद्धांत का मुख्य कार्य उन सामान्य समस्याओ, सिद्धांतों और प्रक्रिया का विश्लेषण करना है जो समस्त राजनीतिक व्यवस्थाओं में एक समान रूप से पायी जाती है।

2.4 निवेश निर्गत विश्लेषण

डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक व्यवस्था का निवेश-निर्गत विश्लेषण आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था का आधार है। ईस्टन ने राजनीतिक सिद्धांत को एक व्यवस्थित और सुसंगत विश्लेषण का आधार प्रदान किया है। ईस्टन के अनुसार, राजनीतिक व्यवस्था संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं का एक जटिल समूह है जो समाज के भीतर आधिकारिक मूल्यों का आवंटन और विनियोजन करता है। राजनीतिक व्यवस्था अंतः क्रियाओं का एक समूह है जिसके अंतर्गत आगत मांगों को निर्गत में बदला जाता है।

राजनीतिक व्यवस्था के अध्ययन का महत्व इस रूप में है कि, राजनीतिक व्यवस्था के तहत सत्ता, पर्यावरण से प्राप्त मांगों को किस प्रकार रूपांतरित करती है और उसका समाज पर किस प्रकार का प्रभाव पुनः दृष्टिगत होता है। व्यवस्था के तहत किस प्रकार विभिन्न इकाईयों की अंतःक्रियाएं एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। राजनीतिक व्यवस्था के द्वारा अधिकारपूर्ण निर्णयों और उनके आधिकारिक आवंटन का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है, और इसके प्रभाव का विश्लेषण भी इस अवधारणा के द्वारा प्रभावी रूप से किया जा सकता है। राजनीतिक व्यवस्था के सत्ता द्वारा रूपांतरण की प्रक्रिया से प्राप्त परिणामों को उस राजनीतिक व्यवस्था का निर्गत अथवा प्रदा कहा जाता है। किसी व्यवस्था में निर्गत की प्रक्रिया, उसके आगत अथवा आदा पर निर्भर करती है।

व्यवस्था को चलायमान बनाए रखने के लिए एक निश्चित संतुलन के साथ व्यवस्था की विभिन्न इकाईयों का कार्य करना आवश्यक है। आगत (Input)के बिना कोई व्यवस्था कार्य नहीं कर सकती और उससे होने वाला निर्गत (Output) उस व्यवस्था का लक्ष्य अथवा उद्देश्य। निर्गत अथवा प्रदा ही किसी राजनीतिक वयवस्था का आधार होती है जिसके द्वारा किसी राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को जाना जा सकता है। मूल्यों का आधिकारिक आवंटन और आधिकारिक निर्णय के साथ उनका वियोजन के द्वारा समर्थन प्राप्त करना हीराजनीतिकव्यवस्था के वैधानिकता का आधार है।

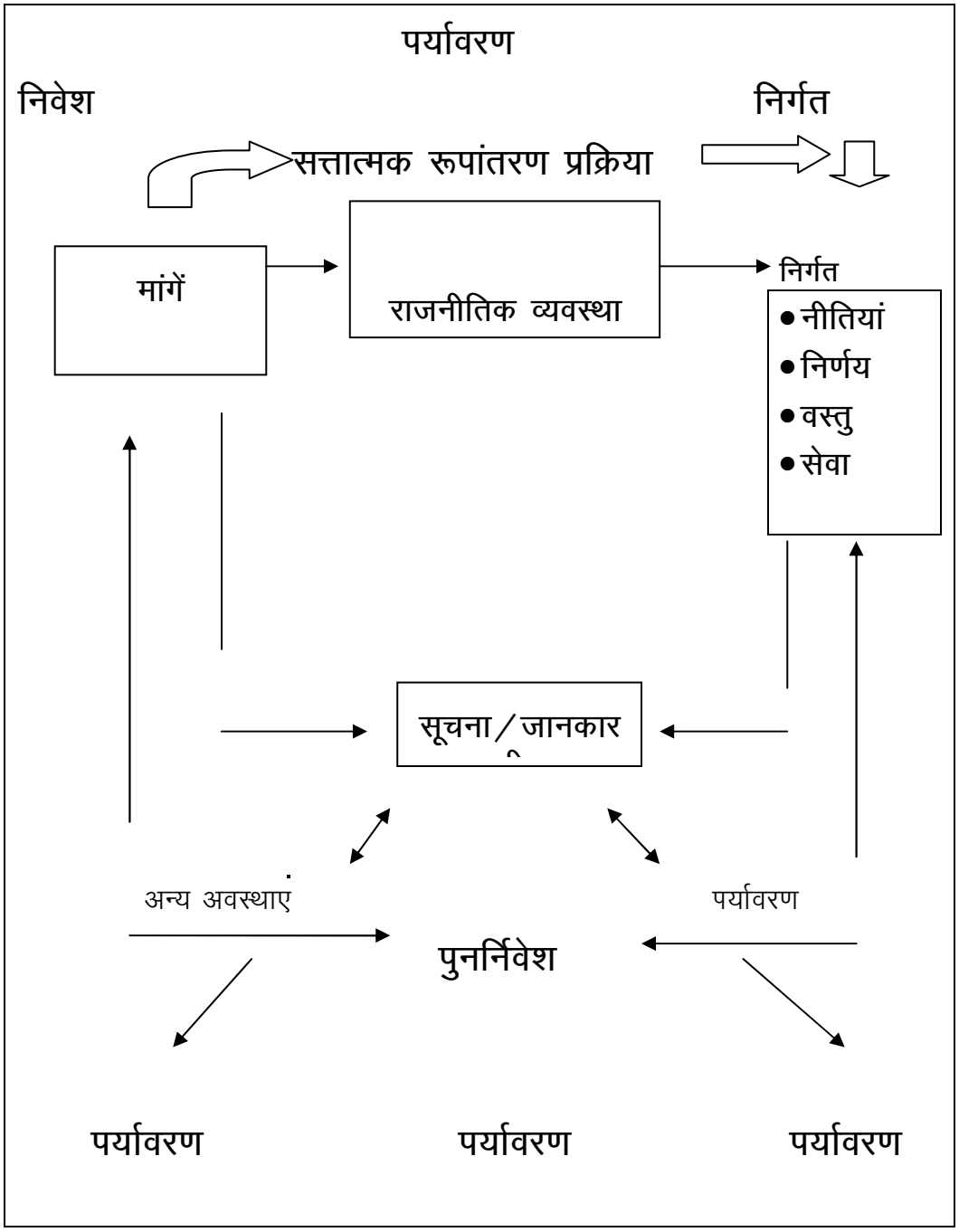

डेविड ईस्टन का निवेश निर्गत मॉडल

2.5 निवेश निर्गत विश्लेषण के तत्व

व्यवस्था सिद्धांत के निवेश-निर्गत विश्लेषण की विशेषताओं को उसके विभिन्न इकाईयों के रूप में समझना अपेक्षाकृत आसान होगा। निवेश-निर्गत विश्लेषण के निम्नलिखित तत्व इसकी विशेषताओं को भी इंगित करते हैं।

आगत (**Input**) - आगत अथवा आदा का अभिप्राय मांग तथा समर्थन से है। प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में पर्यावरण से कुछ मांगें रखी जाती हैं तथा उन मांगों के सापेक्ष रूपांतरण द्वारा निर्णय करने के निमित्त, व्यवस्था से कुछ समर्थन दिया जाता है। समर्थन उस राजनीतिक व्यवस्था में अपने निर्णयों के निमित्त दबाव बनाने अथवा उसके प्रति आकर्षित करने के निमित्त प्रयोग में लाया जाता है। राजनीतिक व्यवस्था को प्राप्त समर्थन, उसके लिए वैधता स्थापित करता है। इसके साथ ही समर्थन, राजनीतिक तंत्र को विभिन्न प्रकार की मांगों के दबाव से निपटने की शक्ति प्रदान करता है क्योंकि राजनीतिक तंत्र का अस्तित्व ही इस बात पर निर्भर करता है कि, उसे जनता का कितना समर्थन प्राप्त है। मांगों की वैधता तंत्र की क्षमता तथा स्थायित्व को समझने में सहायता करती है। मांग हमें यह समझने में सहायता करती है कि, किस तरह पर्यावरण सम्पूर्ण राजनीतिक तंत्र पर अपना प्रभाव डालता है।

माँग (Demand) - माँग मत की अभिव्यक्ति है, जो किसी राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक सत्ता से पर्यावरण के द्वारा वस्तुओं और सेवाओं के रूपांतरण की अपेक्षा में व्यक्त की जाती है। माँगें विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं किन्तुराजनीतिकसत्ता सिर्फ उन्हीं माँगों को स्वीकार करती है जो उसराजनीतिकव्यवस्था के अनुकूल हो और जिसको पूरा कर सकने की उसकी क्षमता हो। माँगों की अपनी एक निर्दिष्ट दिशा होती है जिसका बहाव सदैव सत्ता की ओर होता है।

समर्थन (Support) - राजनीतिक व्यवस्था को अपने आप को सुचारू रूप से संचालित करने एवं उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों की वैधता स्थापित करने के निमित्त समर्थन की आवश्यकता होती है जो उसराजनीतिकव्यवस्था के पर्यावरण से प्राप्त होती है। राजनीतिक व्यवस्था का स्थायित्व और उस राजनीतिक व्यवस्था की कार्यकुशलता, उसको प्राप्त समर्थन के स्तर और उसकी प्रकृति पर निर्भर करता है। माँगों को औचित्यपूर्ण बनाने में समर्थन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समर्थन ही राजनीतिक व्यवस्था को पर्यावरण से जोड़ती है।

निर्गत (Output)- निर्गत, वे उत्पादित वस्तुएं अथवा सेवाएं अथवा नीतियां हैं, जो आगत के रूपांतरण के बाद प्राप्त होती हैं। आगत को समर्थन के सूत्र के साथराजनीतिकसत्ता तंत्र के समक्ष निर्णयन हेतु रखा जाता है और उन विभिन्न माँगों के सापेक्षराजनीतिकसत्ता द्वारा लिया गया निर्णय, निर्गत की श्रेणी में आता है।

पुनर्निवेश (Feedback) - निर्गत का उद्देश्य, विभिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में उपजी हुयी आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। निर्गत के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था में, नीतियों, वस्तुओं और सेवाओं के रूप में नवीन तत्वों के प्रवेश के फलस्वरूप उत्पन्न व्यवस्था के बारे में राजनीतिक व्यवस्था में जो पुनः मत अथवा माँग के रूप में अभिव्यक्ति अथवा प्रतिक्रिया व्यक्त होती है, उसे पुनर्निवेश कहा जाता है। राजनीतिक व्यवस्था के भीतर सम्पादित होने वाले सभी कार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य पुनर्निवेशन-चक्र का है, क्योंकि इसके द्वारा राजनीतिक कार्यों का चक्र संचालित होता रहता है।

पर्यावरण (Environment)- राजनीतिक व्यवस्था सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में अन्य व्यवस्थाओं जैसे कि- आर्थिक, धार्मिक आदि की तरह ही एक उपव्यवस्था है। पर्यावरण द्वारा इसकी अन्य सहयोगी उप-पद्धतियों का बोध होता है। कोई भी व्यवस्था एक निश्चित पर्यावरण में ही कार्य करती है अथवा दूसरे शब्दों में किसी भी व्यवस्था के संचालित होने के निमित्त एक पर्यावरण आवश्यक होता है। आंतरिक सामाजिक पर्यावरण को देखने से यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक व्यवस्था वातावरण, मानव जनित क्रियाकलापों और सामाजिक पद्धतियों से प्रभावित होता है।

2.6 उपादेयता और सीमाएं

निवेश निर्गत विश्लेषण में ईस्टन ने पुनर्निवेशन की प्रक्रिया को समाहित कर इसे गत्यात्मकता प्रदान की है। यह सिद्धांत राजनीतिक प्रक्रियाओं की गतिशीलता को समझने का यत्न करते हुए उस व्यवस्था में उत्पन्न हो रहे माँगों की प्रक्रिया को समझने का यत्न है। राजनीतिक परिवर्तन और विकास को समझने में इस सिद्धांत से बड़ी सहायता प्राप्त होती है। यह सिद्धांत किसी भी स्तर की राजनीतिक व्यवस्था को समझने और विश्लेषण हेतु उपयुक्त है। इस सिद्धांत ने अपने आप को किसी विशिष्ट राजनीतिक संरचना और व्यवस्था से न जोड़ते हुए, तुलनात्मक विश्लेषण को एक नयी अंतर्दृष्टि प्रदान करते हुए, सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान किया है। औरन यंग के अनुसार ''यह सिद्धांत राजनीतिशास्त्रियों द्वारा राजनीतिक विश्लेषण के लिए विकसित सभी क्रमबद्ध सिद्धांतों में सर्वाधिक अन्तर्वेशित सिद्धांत है।''

निवेश-निर्गत सिद्धांत की उपयोगिता और विशेषताओं के बावजूद इसकी कुछ सीमाएं भी दिखायी देती हैं जो विभिन्न आलोचकों के विचारों में भी अभिव्यक्त होता है। पॉल क्रेस के शब्दों में, ''ईस्टन का सिद्धांत राजनीति का सारहीन दर्शन है।'' ग्वीशियानी के अनुसार, ''यह सिद्धांत यथास्थितिवाद को पुष्ट करता है।'' लिप्सन के अनुसार ईस्टन का सिद्धांत 'यांत्रिक व्याख्या' है। ईस्टन के निवेश निर्गत सिद्धांत की कमियों को निम्न रूप में देख सकते हैं-

1.यथास्थितिवाद- ईस्टन का सिद्धांत व्यवस्था को बनाए रखने पर बल देता है, यह व्यापक परिवर्तन और क्रांति का विश्लेषण नहीं करता है।

2.मानवीय तत्व की उपेक्षा- ईस्टन द्वारा व्यवस्था में प्रक्रिया तथा अंतःक्रिया पर विशेष बल दिया गया है, जिससे मानवीय तत्व की उपेक्षा प्रतीत होती है।

3.राजनीतिक तत्व की उपेक्षा- ईस्टन के सिद्धांत में सामाजिक पर्यावरण के विशद और व्यापक तत्वों को समाहित किया गया है, जिससे राजनीतिक तत्व की उपेक्षा का भान होता है। पर्यावरण में उपस्थित अनेक तत्वों को राजनीतिक स्वरूप में मानने में कठिनाई होती है।

यह सिद्धांत अपनी तमाम आलोचनाओं के बावजूद राजनीतिक सिद्धांत को आधुनिक स्वरूप प्रदान करने के लिए महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी है। इस सिद्धांत ने तुलनात्मक राजनीति और विश्लेषण की अवधारणा के विकास में नवीन मानदण्ड स्थापित किया है। यथास्थिति को लेकर होने वाली इसकी आलोचना पूर्ण रूपेण सत्य नहीं है क्योंकि राजनीतिक व्यवस्था के अंदर क्रिया और अंतःक्रिया निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया को गतिशील बनाए रखता है और व्यवस्था के स्थायित्व को भी बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यस्था के अंदर क्रियाएं और अंतःक्रियाएं भी मानवीय तत्वों के कारण ही संभव है, अतैव यह आलोचना भी समीचीन प्रतीत नहीं होता । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के साथ ही अपने अस्तित्व और विकास के लिए एक साथ कई भूमिकाओं का निर्वहन करता है जिससे कई बार भूमिकाएं मिश्रित स्वरूप में दिखायी देती हैं। विभिन्न अंगों की इकाई के रूप में कार्य करते हुए वह एक राजनीतिक इकाई के रूप में भी कार्य करता है अतएवराजनीतिकतत्वों की उपेक्षा किसी भी व्यवस्था में और विशेष रूप से राजनीतिक व्यवस्था में संभव प्रतीत नहीं होता। ईस्टन द्वारा प्रतिपादित निवेश-निर्गत सिद्धांत ने राजनीतिक सिद्धांतों को एक नए आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने का माध्यम उपलब्ध कराया जिससे भिन्न-भिन्न परिवेश में कार्य रहे राजनीतिक व्यवस्थाओं को एक ही सार्वभौमिक मापदण्ड पर विश्लेषित किया जा सके। इसके साथ कुछ ऐसे सार्वभौमिक तत्वों और प्रक्रियाओं की पहचान की जो समस्त व्यवस्थाओं में सामान्य और अनिवार्य रूप से पाए जाते हों।

अभ्यास प्रश्न

1.डेविड ईस्टन द्वारा व्यवस्था सिद्धांत कब तथा किस लेख द्वारा प्रतिपादित किया गया ?

2.डेविड ईस्टन मूलतः कहाँ का था ?

3.ईस्टन राजनीति को किस रूप में परिभाषित करते हैं ?

4.राजनीतिक व्यवस्था में समर्थन कहाँ से प्राप्त होता है ?

5.राजनीतिक व्यवस्था में रूपांतरण की प्रक्रिया किसके द्वारा सम्पादित की जाती है ?

2.7 सारांश

डेविड ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था सिद्धांत, राजनीतिक सिद्धांत के आधुनिकीकरण की दिशा में एक मील का पत्थर है। व्यवस्था सिद्धांत ने न सिर्फ विश्लेषण के निमित्त आधुनिक परिप्रेक्ष्य उपलब्ध कराया, अपितु राजनीतिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं के कुछ सर्वमान्य सिद्धांतों और तत्वों की भी पहचान की। नीति विश्लेषकों के द्वारा ईस्टन के सिद्धांत के पाँच चरणों यथा - आगत, रूपांतरण, निर्गत, पुनर्निवेश तथा पर्यावरण के द्वारा नीतियों का विश्लेषण और अध्ययन किया जाता है जिससे नीतिगत निर्माण की प्रक्रिया को बेहतर बनाने में सहायता मिल सके। राजनीति की गत्यात्मकता और उसकी विभिन्न अंतःक्रियाओं को भी इस सिद्धांत द्वारा समझ पाने में सहायता प्राप्त हुयी। डॉ0 एस0 पी0 वर्मा ने ईस्टन के राजनीतिक व्यवस्था विश्लेषण उपागम की दो विशेषताओं का उल्लेख किया है। प्रथम, इस विश्लेषण पद्धति में सन्तुलन दृष्टिकोण से आगे तक जाकर व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों और गत्यात्मकताओं पर ध्यान दिया गया है। यह व्यवस्था को ऐसी निरंतरता मानता है जिसमें विभिन्न तत्वों और पर्यावरण में अदान प्रदान बना रहता है तथा व्यवस्था की अनुकूलन क्षमता बढ़ती रहती है। दूसरा, इसके द्वारा प्रस्थापित प्रत्ययों, प्रविधियों और अवधारणओं के माध्यम से तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक व्यवस्था का तुलनीय अवलोकन संभव हो पाता है।

ईस्टन ने राजनीति को 'मूल्यों के आधिकारिक आवंटन' के रूप में परिभाषित किया है, इस रूप में मूल्य कितने आधिकारिक हैं और इनका आवंटन किस प्रकार हुआ है, इसको समझने में डेविड ईस्टन का यह निवेश-निर्गत सिद्धांत महत्वपूर्ण है। ईस्टन का राजनीतिक व्यवस्था का यह सिद्धांत निश्चित रूप से राजनीतिक सिद्धांत के विकास में एक महत्वपूर्ण पड़ाव है।

2.8. शब्दावली

निवेश - राजनीतिक व्यवस्था के अंदर जो मांग और समर्थन विभिन्न माध्यमों/संरचनाओं से आता है, उसे राजनीतिक व्यवस्था का निवेश कहा जाता है।

रूपांतरण- राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत जिस प्रक्रिया द्वारा विविध मांगों को निर्णयन की स्थिति में लाया जाता हैउसे रूपांतरण कहा जाता है।

निर्गत- राजनीतिक व्यवस्था में मांग और समर्थन के सापेक्ष, रूपांतरण की प्रक्रिया द्वारा नियम, विनियम, विधि, व्यवस्था, वस्तु आदि के रूप में जो भी सरकार द्वारा प्रदत्त किया जाता है, उसे निर्गत कहा जाता है।

पर्यावरण- जिस राजनीतिक वातावरण और व्यवस्था में समस्त संरचनाएं कार्य करती हैं और मांग,समर्थन, रूपांतरण सहित पुर्ननिवेश की समस्त प्रक्रियाएं सम्पादित होती हैं, उसे राजनीतिक व्यवस्था का पर्यावरण कहा जाता है।

समर्थन - राजनीतिक व्यवस्था को अपने आप को सुचारू रूप से संचालित करने एवं उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों की वैधता स्थापित करने के निमित्त समर्थन की आवश्यकता होती है जो उसराजनीतिकव्यवस्था के पर्यावरण से प्राप्त होती है।

पुनर्निवेश ; - निर्गत के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था में, नीतियों, वस्तुओं और सेवाओं के रूप में नवीन तत्वों के प्रवेश के फलस्वरूप उत्पन्न व्यवस्था के बारे में राजनीतिक व्यवस्था में जो पुनः मत अथवा माँग के रूप में अभिव्यक्ति अथवा प्रतिक्रिया व्यक्त होती है, उसे पुनर्निवेश कहा जाता है। राजनीतिक व्यवस्था के भीतर सम्पादित होने वाले सभी कार्यों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य पुनर्निवेशन-चक्र का है, क्योंकि इसके द्वारा राजनीतिक कार्यों का चक्र संचालित होता रहता है।

2.9.अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.डेविड ईस्टन द्वारा व्यवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन 1953 में प्रकाशित लेख 'एन एप्रोच टू द एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल सिस्टम' में किया गया।

2.डेविड ईस्टन मूलतः कनाडाई मूल का था।

3.ईस्टन राजनीति को 'मूल्यों के आधिकारिक आवंटन' के रूप में परिभाषित करते हैं।

6.राजनीतिक व्यवस्था में समर्थन, पर्यावरण से प्राप्त होता है।

4.राजनीतिक व्यवस्था में रूपांतरण की प्रक्रिया राजनीतिक सत्ता द्वारा सम्पादित की जाती है।

2.10.संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.एन एप्रोच टू द एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल सिस्टम, डेविड ईस्टन

2.तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, जैन

3.तुलनात्मक राजनीति, जे0 सी0 जौहरी

2.11.सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

4.ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस, डेविड ईस्टन

5.ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ, डेविड ईस्टन

2.12.निबंधात्मक प्रश्न

1.ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था सिद्धांत ने राजनीति विज्ञान के सिद्धांत को एक नयी दिशा प्रदान की। इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ?

2.राजनीति मूल्यों का आधिकारिक आवंटन है। इस कथन की समीक्षा करें।

3.ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था सिद्धांत की विशेषताओं और उसकी सीमाओं की विवेचना करें।

4.ईस्टन द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था सिद्धांत, राजनीति विज्ञान के विश्लेषण का सार्वभौमिक सिद्धांत है। व्याख्या करें।

इकाई - 3 संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम

इकाई की संरचना

3.1प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 विश्लेष्णात्मक अवधारणा

3.4 संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम

3.5 उपादेयता और सीमाएं

3.6. सारांश

3.7. शब्दावली

3.8.अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.9.संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.10.सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

3.11.निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

राजनीति विज्ञान के विकास के चरण को आधुनिक कलेवर देने का श्रेय अधिकांशतः तुलनात्मक राजनीति की धारा को जाता है। तुलनात्मक राजनीति को यदि, व्यवस्था सिद्धांत ने राजनीति की प्रक्रिया को समझने का एक सरल सार्वभौमिक आधार प्रदान किया तो संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम ने राजनीतिक व्यवस्था को उसकी विभिन्न संरचनाओं और उसकी कार्यप्रणाली तथा उसके प्रभावों के संदर्भ में देखते हुए व्यवस्था सिद्धांत को एक पूर्णता प्रदान की। संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम, की प्रेरणा नृविज्ञान से प्राप्त होती है जो अपने अध्ययन में संरचनाओं और उन संरचनाओं के कृत्यों पर बल देता है तथा यह मानता है कि, संरचनाओं का कुछ निश्चित कृत्य ही समस्त व्यवस्था को चलायमान बनाए हुए है और इसलिए संरचनाओं के अस्तित्व और उनके स्थायित्व को समझने के लिए उन कृत्यों और संरचनाओं को जानना आवश्यक है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- राजनीति विज्ञान के संदर्भ में संरचना की अवधारणा बेहतर रुप से समझ सकेंगे।
- राजनीति विज्ञान के संदर्भ में कृत्य की अवधारणा को जान सकेंगे।
- व्यवस्था विश्लेषण सिद्धांत, जिन प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम प्रतीत नही होता, उसका समाधान संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम करने का यत्न करता है।
- संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम, कृत्यों और संरचनाओं के विश्लेषणात्मक उपागम के रुप में एक मूल्यांकनात्मक मॉडल प्रस्तुत करता है।

3.3 विश्लेष्णात्मक अवधारणा

संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम, विश्लेषण के एक उपकरण के रूप में राजनीतिक व्यवस्था के संरचनाओं और प्रकार्यों को समझने का यत्न है। संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम के अंर्तगत सरकारों की संरचना एवं कार्यों का विश्लेषण किया जाता है। संरचनाओं के व्यवहार की प्रवृत्ति का विश्लेषण उसके स्थिरता और परिवर्तनशीलता को इंगित करती है। जिन संरचनाओं के निरंतर सम्पादित होने वाले व्यवहारों से संरचना के अस्तित्व को स्थिरता प्राप्त होती है उन क्रियाओं को प्रकार्यात्मक कहते हैं, जबकि इसके विपरीत जिन व्यवहारों से, संरचनाओं की स्थिरता पर प्रश्न लगता है अथवा खतरा होता है, उन्हें दुष्क्रियात्मकता की संज्ञा दी जाती है। संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम इन्हीं प्रकार्यात्मकता और दुष्क्रियात्मकता के संदर्भों में राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण एवं उनके विकास का मूल्यांकन करता है।

3.4 संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम

राजनीति विज्ञान में संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम को 1960 तक सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त के विकास के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपागम माना गया था। यह उपागम ईस्टन के निवेश-निर्गत विश्लेषण से उत्पन्न असन्तोष के कारण अस्तित्व में आया, तुलनात्मक राजनीतिक अध्ययनों में इसका प्रयोग विशेष रूप से आमण्ड ने किया है। यह उपागम समाज को अलग-अलग भागों में देखने के बजाय उसे एक समग्र के रूप में देखता है। इसमें किसी प्रणाली के हर एक भाग और उपभाग की संरचनाओं और कार्यों एवं इसके प्रकार्यात्मक पक्षों पर बल दिया जाता है।

संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विश्लेषण दो संकल्पनाओं पर आधारित है। पहला संरचना और दूसरा प्रकार्य। संरचना को हम राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों के निष्पादन की व्यवस्था को कह सकते हैं। हर राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों की क्रिया, जिस व्यवस्था के द्वारा की जाती है उस व्यवस्थात्मक संगठन को संरचना का नाम दिया जाता है। संरचना द्वारा यह जरूरी नहीं कि वह एक ही प्रकार के कार्य करे, वह एक साथ कई प्रकार के कार्य कर सकती है। जैसे राजनीतिक दल, राजनीतिक व्यवस्था के भीतर एक संरचना मात्र है जो कई कार्य करते हैं जिसमें जनमत को सरकार को प्रेषित करना, महत्वपूर्ण विषयों पर जनमत तैयार करना, राजनीति व्यवस्था में अधिक से अधिक लोगों को व्यापक पैमाने पर भाग लेने के लिए प्रेरित करना आदि कार्य शामिल है।

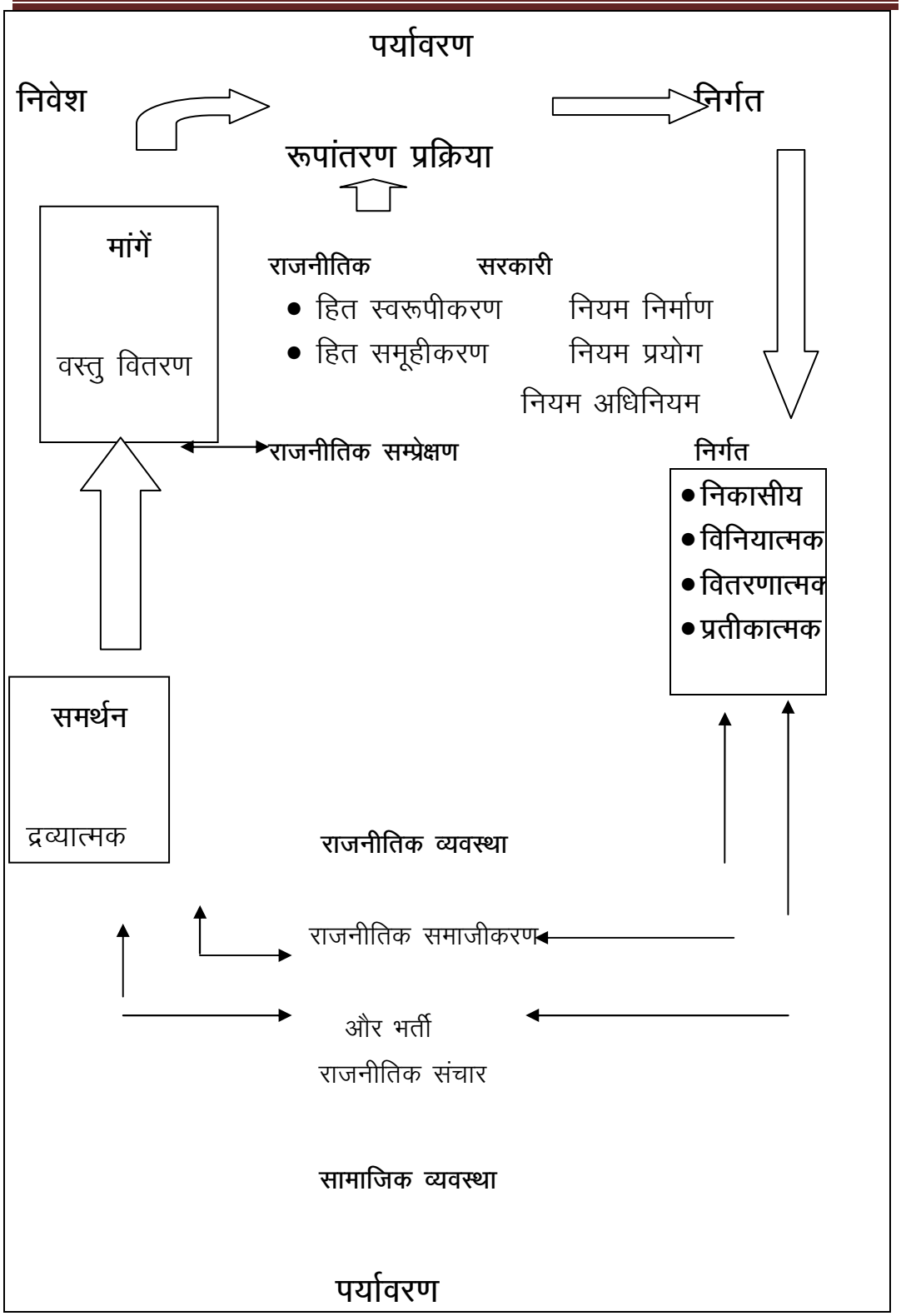
पर्यावरण
निवेश
निर्गत
रूपांतरण प्रक्रिया
मांगें
वस्तु वितरण
राजनीतिक
सरकारी
हित स्वरूपीकरण
हित समूहीकरण
नियम निर्माण
नियम प्रयोग
नियम अधिनियम
राजनीतिक सम्प्रेक्षण
निर्गत
निकासीय
विनियात्मक
वितरणात्मक
प्रतीकात्मक
समर्थन
द्रव्यात्मक
राजनीतिक व्यवस्था
राजनीतिक समाजीकरण
और भर्ती
राजनीतिक संचार
सामाजिक व्यवस्था
पर्यावरण

ऑमण्ड का संरचनात्मक- प्रकार्यात्मक मॉडल

संरचना, वयवस्था के भीतर उन प्रबंधों को बनाती है जो प्रकार्यों का निष्पादन करते हैं। राजनीतिक संदर्भों में जो व्यवस्था काम करती है, उसका एक ढांचा होता है और यह ढांचा (structure) या संरचना अपने आप में एक गतिशील मशीन की भांति कार्य करती है।

प्रकार्यों की संकल्पना के अर्थ को समझाते हुए एस0 पी0 वर्मा की मान्यता है कि, प्रकार्य में तीन बुन्यादी प्रश्न सम्मिलित हैं-

1. किसी व्यवस्था में कौन से बुनियादी कार्य किये जाते हैं ?
2. यह कार्य किस उपकरण से किये जाते हैं ? और
3. किन परिस्थितियों में इन प्रकार्यों का निष्पादन किया जाता है?

मर्टन ने प्रकार्य को परिभाषित करते हुए कहा है- ''प्रकार्य, वे प्रेक्षित परिणाम हैं जो किसी पद्धति के अनुकूल या पुनः समायोजन की व्याख्या करते हैं, और उन प्रेक्षित परिणामों की अपक्रिया (dysfunction) करते हैं जो व्यवस्था के अनुकूल या समायोजन को कम करतें हैं।''

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की विशेषताएं-

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम इस बात की व्याख्या करता है कि कौन सी संरचना, राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत कौन से कार्यों का सम्पादन करती है। यह वस्तुतः व्याख्या और परीक्षण का एक उपकरण है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की मान्यता यह है कि, मनुष्य सुसंगत ढंग से क्रिया करता है और पुरानी क्रियाओं को दोहराता रहता है। जहाँ ईस्टन ने राजनीति व्यवस्था को, 'मांगों-समर्थनों' तथा 'नीतियों, निर्णयों' के रूप में समझने का प्रयास किया है, वहीं ऑमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था को संरचना एवं प्रकार्य के विश्लेषण के रूप में विशेष तरीके से समझने का प्रयत्न किया है। इस कारण से संरचनात्क-प्रकार्यात्मक विश्लेषण की विशेषताएं निवेश, निर्गत विश्लेषण से कुछ भिन्न प्रकार की हो जाती हैं। ऑमण्ड के अनुसार राजनीति व्यवस्था के चार लक्षण है-

1.राजनीतिक व्यवस्था के भागों में आत्मनिर्भरता।

2.राजनीतिक व्यवस्था की सीमा।

3.राजनीतिक व्यवस्था द्वारा बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग।

संरचात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम में ऑमण्ड ने संरचनाओं और प्रकार्यों को विश्लेषित करने में राजनीतिक व्यवस्था को ही आधार बनाया है, परन्तु ऑमण्ड इस बात में अधिक आगे बढ़ गया कि,

इसने उन सब संरचनाओं की ओर ध्यान केन्द्रित किया है जो राजनीतिक व्यवस्थाओं को विशेष प्रकृति प्रदान करती हैं।

इस उपागम में यह मानकर चला जाता है कि, राजनीतिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए व्यवस्था की संरचनाओं का कुछ कार्य या विकार्य अनिवार्यतः निष्पादित होने चाहिए। ईस्टन की भांति आमण्ड भी संरचनाओं और कार्यों को विश्लेषित करने में राजनीतिक व्यवस्था का ही आधार रखता है। इसने उन सब संरचनाओं की ओर ध्यान केन्द्रित किया है जो राजनीतिक व्यवस्थाओं को विशेष प्रकृति प्रदान करती है। 'कार्य' शब्द का व्यवहार भी विभिन्न रूपों में दृष्टिगत होता है, कुछ संरचनाएं विशिष्ट और स्पष्ट कार्य करती हैं जिसे स्पष्ट कार्य ;डंदपमिेज निदबजपवदेद्ध कहा जाता है जैसे संसद के द्वारा विधि निर्माण, न्यायपालिका द्वारा नीति-निर्णयन आदि। अधिकांशतः संविधानिक व्यवस्थाओं में स्पष्ट कार्यों का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया गया है। इसके विपरीत, संरचनाओं के कुछ कार्य स्पष्ट नहीं होते और उनका पता तब तक नहीं हो पाता जबतक कि उनकी खोज नहीं की जाती। ऐसे कार्यों को अव्यक्त कार्य ;(Latent functions)कहा जाता है।

ऑमण्ड के अनुसार व्यवस्था में संरचनात्मक विभिन्नीकरण या विविधता हो सकती है, दूसरे शब्दों में किसी राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों का संपादन 'अ' प्रकार की संरचनाओं के द्वारा हो सकता है तो किसी अन्य व्यवस्था में इन्हीं कार्यों का निष्पादन 'ब' प्रकार की संरचनाएं का सकती हैं। यहाँ संरचनाओं की समानता मौलिक नहीं है, किन्तु व्यवस्था में बने रहने के लिए प्रकार्यों का एक सा निष्पादन अनिवार्य है। कुछ स्थितियों में कुछ संरचनाएं एक सी प्रतीत हो सकती हैं, किन्तु उनके कार्यों में बहुत हद तक भिन्नता पायी जाती है, जैसे भारतीय संसद और अमेरिकन कांग्रेस, चीन का साम्यवादी दल और भारत तथा अन्य लोकतांत्रिक देशों केराजनीतिकदल।

संरचनात्मक एकरूपता के स्थान पर इस उपागम में यह स्वीकार किया गया है कि, संस्कृति विशेष के अनुसार संरचनाओं में हेर-फेर या इनका रूप परिवर्तन या उनके स्थान पर नई प्रकार की संरचनाओं का निर्माण हो सकता है। संरचनाएं हर समय केवल प्रकार्य ही करती हो ऐसा इस उपागम में नहीं माना गया है। एक ही संरचना एक समय में प्रकार्य और दूसरे समय में विकार्य करने की स्थिति में धकेली जा सकती हैं। सामान्य तौर पर संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की कुछ सामान्य लक्षणों को निम्नवत देखा जा सकता है-

1.प्रत्येक व्यवस्था में संरचनाएं विद्यमान होती हैं, जिनकी पहचान की जा सकती है।

2.इन संरचनाओं के अंग व्यवस्था के अंतर्गत कार्य करते हैं।

3.व्यवस्था की संरचनाओं के अंगों द्वारा किए गए कार्यों का महत्व,व्यवस्था के कार्यों के परिप्रेक्ष्य में ही है।

4.व्यवस्था की संरचनाओं के अंग कार्य की दृष्टि से अन्योन्याश्रित होते हैं।

5.ठन कार्यों का महत्व उसी समय तक है, जब तक वे व्यवस्था के अंग हैं।

6.व्यवस्था की प्रवृत्ति साम्य (Equillibrium) की ओर होती है।

राजनीतिक व्यवस्था की संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक व्याख्या

ऑमण्ड के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था ''अन्तः क्रियाओं की ऐसी व्यवस्था है जो उन सभी स्वतन्त्र समाजों में पायी जाती है जो, कम व अधिक विधिसम्मत भौतिक बाध्यता को काम में लाते हुए या उसकी धमकी देते हुए एकीकरण और अनुकूलन स्थापित करने के कार्यों में लगे हुए है।'' ऑमण्ड की राजनीतिक व्यवस्था की व्याख्या से तीन बातें स्पष्ट होती हैं जो इस प्रकार है-

(अ) राजनीतिक व्यवस्था का स्थूल घटक है जो पर्यावरण को प्रभावित करता है और स्वयं पर्यावरण से प्रभावित होताहै और विधिसम्मत बल प्रयोग का प्रावधान उसे बनाये रखने का प्रमुख कारण है।

(ब) अन्तःक्रियाएं व्यक्तियों के बीच नहीं किन्तु उनके द्वारा स्वीकृत भूमिकाओं के बीच होती रहती है।

(स) राजनीतिक व्यवस्था एक ऐसी खुली हुई व्यवस्था है जो अपनी सीमाओं से बाहर स्थित घटकों और व्यवस्थाओं के साथ एक अनवरत् संरचारण सम्बन्ध के द्वारा जुड़ी हुई हैं।

ऑमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक व्यवस्था में ईस्टन के समान ही तीन चरण स्वीकार किये हैं-

(1) राजनीतिक व्यवस्था के निवेश

(2) रूपान्तरण प्रक्रिया तथा

(3) राजनीतिक व्यवस्था के निर्गत।

राजनीतिक व्यवस्था का निवेश प्रकार्य राजनीतिक प्रकृति के प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाऐ होती हैं। ये चार वर्गों में रखी गयी हैं, यथा (1)राजनीतिक समाजीकरण एवं भर्ती, (2)हित स्वरूपण, (3)हित समूहन और (4)राजनीतिक संचार। दूसरे शब्दों में राज व्यवस्था के औपचारिक स्वरूप तक पहुँचने के पहले व्यक्तिओं को राजव्यवस्था के मूल्यों एवं लक्ष्यों में शिक्षित व प्रशिक्षित हो जाना चाहिए। राजव्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि, पहले यह लघु स्तर पर विभिन्न मांगों एवं हितों को प्रकट एवं स्पष्ट कर लें। इसके पश्चात व्यापक आधार पर विभिन्न हितों से तालमेल बैठाकर

समूहीकृत किया जाय। इन निवेश प्रकार्यों में राजनीतिक संचरण का महत्वपूर्ण स्थान होता है। संचरण के बिना राजव्यवस्था न बन सकती है और न ही कार्य कर सकती है।

प्रथम निवेश प्रकार्य 'राजनीतिक समाजीकरण' वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक संस्कृति के मूल्य, विश्वास तथा संवेग, प्रमान और आगामी पीढ़ियों को प्रदान किये जाते हैं। व्यक्ति इसके माध्यम से किसी राजनीतिक घटना के प्रति अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त करता है तथा विभिन्न प्रकार के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पर्यावरण का मूल्यांकन करता है। यही प्रक्रिया व्यक्ति या व्यक्ति-समूह की राजनीतिक मनोवृत्तियों तथा मूल्यों का निर्धारण करती है।

समाजीकरण की शैली विशिष्ट या विस्तृत हो सकती हैं। इसका संचार राजनीतिक संरचनाओं की विभिन्नीकृत और विशिष्ट प्रकृति हो सकता है। उसका स्वरूप सार्वभौमिक या एकदेशीय जैसे रक्त सम्बन्ध, हित समूह दल आदि की गतिविधियां हो सकती हैं। ये विभिन्न प्रकार्य, विभिन्न प्रकार तथा मात्रा में निष्ठाएं उत्पन्न करते हैं। विकसित और विकासशील प्रकार्यों में यह द्वितीयक एवं विशिष्ट संरचनाओं द्वारा विशिष्ट एवं अभिव्यक्त व्यक्तिकार्यों ;तवसमद्ध के रूप में हो सकता है।

राजनीतिक समाजीकरण की संधिरेखा पर ही राजनीतिक भर्तीकरण का प्रकार्य अवस्थित है। वह व्यवस्था के सदस्यों को समाजीकरण के आधार पर विभिन्न व्यक्तिकार्यों, पदों निपुणताओं आदि के लिए भर्तीं करता है। वहां से राजनीतिक ज्ञानात्मक मानचित्र मूल्य, प्रत्याशाएं, प्रभाव आदि प्राप्त होते हैं। इस प्रकार राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक संस्कृति के दीक्षा की प्रक्रिया है तथा राजनीतिक भर्तीं राजव्यवस्था के सदस्यों का राजनीति में प्रवेश है।

हित-स्वरूपीकरण मुख्य रूप से किसी व्यवस्था की राजनीतिक सीमाओं को निर्धारित करता है। यह राजनीतिक संस्कृति व राजनीतिक समाजीकरण पर आधारित होता है। इसमें हित अभिव्यक्ति, प्रथम चरण होता है, जिसमें व्यक्ति और समूह अपनी मांगों को राजनीतिक व्यवस्था के ध्यान देने योग्य बनाने के लिए प्रारम्भिक रूप प्रदान करके सत्ताओं को अपने उद्देश्यों के अनुरूप विधियों से संबोधित करते हैं। यह प्रकार्य अभिव्यक्त या अप्रकट, विस्तृत या विशिष्ट, सामान्य या एकदेशीय, साधनात्मक या भावनात्मक शैली से किया जा सकता है।

विभिन्न हितों का स्वरूप स्पष्ट हो जाने पर उन्हें पुनः समूहीकृत करना आवश्यक होता है। राजनीतिक व्यवस्था विभिन्न हितों दावों और मांगों का समूहीकरण करके नीति निर्माण करती है। ऑमण्ड की यह मान्यता है कि, हित समूहीकरण सही अर्थोंमेंनिर्णय के लिए या स्थानान्तरण के लिए मांगों के संयुक्तीकरण के माध्यम से अनेक विकल्प प्रस्तुत करना है। हित समूहीकरण का प्रकार्य दो प्रकार से संचालित किया जा सकता हैः

(1) विभिन्न हितों को संयुक्त अथवा समायोजित करके या

(2) एकदेशी नीति के प्रतिमान के प्रति निष्ठा रखने वाले राजनीतिक व्यक्तियों की भर्ती द्वारा।

हित समूहीकरण से व्यवस्था के निर्गत प्रकार्यों को सरल, कार्य कुशल, मापनीय, दायित्वपूर्ण तथा सीमा संधारण (Boundry Maintenance)मेंसहायक बनाया जा सकता है।

राजनीतिक संरचरण हर प्रकार की राजनीतिक अंतः क्रियाओं में होता है। संचार की संरचनाओं से ही रूपान्तरण प्रक्रिया के लिए मांग और समर्थन राजनीतिक व्यवस्था में आते हैं और इन्हीं के माध्यम से राजनीतिक रूपान्तरण, राजनीतिक व्यवस्था के निर्गतों के रूप में पहुँचते हैं अतः संचार की संरचनाए निवेशों को रूपान्तरण के लिए ले जाने और रूपान्तरणों को निर्गतों के रूप में राजनीतिक व्यवस्था और अन्य व्यवस्थाओं तथा पर्यावरण में पहुँचाने का कार्य करती है। संचार शैली अभिव्यक्त या अप्रकट, विस्तृत या विशिष्ट, व्यापक या एकदेशीय, भावात्मक तटस्थ या भावात्मक हो सकती है। इसे हम चार दृष्टियों से देख सकते हैं (1)सूचनाओं में समरसता (2)गतिशीलता (3)मात्रा तथा (4) दिशा।

निर्गत प्रकार्य:-

राजनीतिक व्यवस्था में मांग और समर्थन के सापेक्ष, रूपांतरण की प्रक्रिया द्वारा नियम, विनियम, विधि, व्यवस्था, वस्तु आदि के रूप में जो भी सरकार द्वारा प्रदत्त किया जाता है, उसे निर्गत कहा जाता है। नियम निर्माण राजव्यवस्थाएं सदा से करती आयी हैं। पहले इनका धार्मिक, राजतंत्रतीय तथा रूढ़िगत आधार होता था। वर्तमान प्रजातंत्रों में यह कार्य विधान मण्डलों, कार्यपालिकाओं, न्यायपालिकाओं तथा उच्च अधिकारी वर्ग द्वारा किया जाता है। इन्हें नियम निर्माण की संरचनाएं बताया गया है। इनकी शक्तिओं को संविधान या ''विधि के शासन'' की धारणा द्वारा नियंत्रित कर दिया जाता है। किन्तु जनतंत्रात्मक शासन में निर्वाचित संरचना जैसे लोकसभा को सर्वोपरि माना जाता है। व्यवहार में ये संरचनाएं भी दलों, गुटों, दबावसमूहों आदि के निर्देशन में कार्य करती हैं।

नियम प्रयुक्ति राजव्यवस्था का बृहद निर्गत है। यह नियम-निर्माण के पश्चात उसके क्रियान्वयन से संबंधित होता है। आधुनिक राजव्यवस्था में इसके निए नौकरशाही का विशाल संगठन खड़ा किया गया है। इसके अतिरिक्त और भी दूसरी संरचनाएं यह कार्य करती हैं। नियम प्रयुक्ति में नियमों को साधारण रूप से सभी पर लागू कर दिया जाता है।

नियम अधिनिर्णयन (Rule- Adjudication) में उन नियमों को विशेष या व्यक्तिगत मामलों में लागू किया जाता है। राजव्यवस्था के उत्तर जीवन के लिए यह आवश्यक है कि इस अधिनिर्णयन प्रकार्यों को कुशल, योग्य, विशेषज्ञ तथा निष्पक्ष संरचनाओं द्वारा सम्पन्न कराया जाय। इससे राजव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों को निष्पादित करने के लिए प्रायः न्यायालयों का गठन किया जाता है।

राजव्यवस्थाओं का वर्गीकरणः-

आमण्ड ने उपर्युक्त प्रकार्य संवर्गों की तुलनात्मक योजना के अनुसार विकासशील देशों का अध्ययन किया है। संरचनात्मक-प्रकार्यवाद की समस्त अवधारणाओं को काम में लेते हुए उन्होंने विकासशील राजव्यवस्थाओं का वर्णन किया है। ऑमण्ड ने विकासशील देशों का अध्ययन करके 5 प्रारूप प्रस्तुत किये हैं जो इस प्रकार है। -

1.पहले प्रारूप को वे राजनीतिक प्रजातंत्र कहते हैं जैसे जापान, भारत, इजराईल आदि।

2.दूसरा प्रारूप घाना, नाईजीरिया आदि देशों में पाया जाता है इसे वह अभिभावक प्रजातन्त्र कहते हैं। इसके लोकतन्त्र की आकारात्मक संरचनाओं के होते हुए भी कार्यपालिकाओं और सेवीवर्गों में शक्ति के गुण होता है। व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका की स्थिति दुर्बल होती है।

3.तीसरा प्रारूप आधुनिकीकरणशील अल्पतन्त्र है, जिसमें प्रजातन्त्रात्मक संविधान स्थगित रहते हैं और सेवीवर्ग या सेना का प्रभुत्व स्थापित रहता है, जैसे- पाकिस्तान, सूडान आदि।

4.चौथा प्रारूप सर्वाधिकार वादी अल्पतन्त्र है, जैसे- उत्तर कोरिया आदि।

5.पांचवां प्रारूप परम्परात्मक अल्पतन्त्र है जो कि प्रायः राजतन्त्रात्मक, वंश परम्परागत होते हैं। भर्ती का आधार प्रास्थिति एवं रक्तवंश होता है। जैसे- भूटान, सउदी अरब आदि।

आमण्ड के अनुसार विकसित एवं विकासशील देशों की संसचनाओं एवं प्रकार्यों में भी अन्तर होता है। अमरीकी और ब्रिटिश व्यवस्थाओं की अनौपचारिक संरचनाएं, औपचारिक, प्राथमिक एवं द्वितीयक संरचनाओं द्वारा अनुप्राणित तथा उत्संस्कारित होती हैं जबकि, अपश्चिमी व्यवस्थाओं में इसका उल्टा होता है। यहां राजनीतिक प्रकार्य भी प्रायः शासनिक संरचनाओं द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। शहरों और ग्रामों का भेद वास्तविकता को छिपा नही सकता। इसमें शासनिक संरचनाओं का अधिक महत्व होता है।

3.5 उपादेयता और सीमाएं

संरचनात्मक प्रकार्यवादी उपागम आलोचना का शिकार रहा है। इस उपागम के सभी समर्थक यथास्थिति, स्थायित्व, संतुलन जैसी अनुदारवादी अवधारणाओं के पक्षधार हैं। इस उपागम में स्थायित्व और व्यवस्था अनुरक्षण की परिस्थितिओं पर अत्यधिक ध्यान दिया गया है। केवल सन्धारणात्मक पक्ष पर जोर देने के कारण उसमें मानकीय तत्वों का समावेश हो जाता है। यह नियन्त्रण, शक्ति, नीति-निर्माण, प्रभाव आदि बलों के विश्लेषण में सक्षम नहीं है। इस उपागम की प्रयुक्ति के पश्चात किसी सामान्य सिद्धान्त के विकास की बात कहना भूतार्थ-निर्णयन (ex post facto jugdement) मात्र है, क्योंकि सिद्धान्त का अधिग्रहण तो पहले ही किया जा चुका है। इससे

सोद्देश्यवादिता (Teleology) साफ-साफ झलकती है। प्रकार्यात्मक अपेक्षाओं की धारणा निगमनात्मक है जिसके कारण आनुभाविक यथार्थ को तोड़-मरोड़ कर प्रतिस्थापित करना पड़ता है।

हॉल्ट एवं रिचर्डसन ने आक्षेप किया है कि, ऑमण्ड संरचनाओं की व्याख्या प्रकार्यों की दृष्टि से करता है जो अनुचित है, क्योंकि इस तरह कभी सम्भावता सिद्धान्त का निर्माण नहीं किया जा सकता है। सरंचनाओं एवं प्रकार्यों में कोई युक्तियुक्त सम्बन्ध स्थापित नहीं किया गया। अनेक धारणाएं वर्तुलाकार ;ब्पतबनसंतद्ध है जो एक दूसरे पर आधारित होने के कारण किसी को भी स्पष्ट नहीं करती जिन्हें स्थापित करना शेष रहता है, उन्हें वह पूर्वधारणा बना लेता है।

ऑमण्ड ने जिन प्रकार्यों का विवेचन किया है, वे प्रकार्य राजनीतिक व्यवस्था के द्वारा पूरी तरह से निष्पादित होते हैं या नही इसको निश्चय करने का कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है। इसके आलावा आलोचकों द्वारा यह कहा जाता है कि, विकासशील देशों में से अनेक देशों में संरचनाएं स्वतः विकसित न होकर आरोपित की गयी है। इसी तरह स्वेच्छाधारी और सर्वाधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्थाओं में संरचनाओं के स्वभाविक होने की परिस्थितियां बहुत कम होती हैं। यद्यपि इन व्यवस्थाओं में यह संरचनाएं संवैधनिक होती हैं फिर भी इनको स्वभाविक नहीं कहा जा सकता। अनेक देश ऐसे हैं जहां पर आरोपित संरचनाओं द्वारा व्यवस्थाओं का स्थायित्व व अनुरक्षण ही नही हो रहा अपितु उनमें विकास भी तेजी से होता पाया गया है, अतः इस दृष्टि से यह दृष्टिकोण दुर्बल पड़ जाता है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम सर्वाधिक लोकप्रिय एवं बृहद् उपलब्धि है। इसी उपागम के कारण तुलनात्मक राजनीति का व्यापक अध्ययन आरम्भ हुआ है। इसने राजनीतिक घटनाओं, आंकड़ों, परिवर्तनों तथा प्रक्रियाओं के अध्ययन के प्रबन्धकीय संवर्ग प्रदान किये हैं। इस उपागम से समाज के विभिन्न तत्वों की अंतर्निर्भरता पर ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसके परिणाम स्वरूप अन्तःनिर्भरता व अन्तःक्रियाओं को नियन्त्रित किये जाने वाले नियमों की खोज की जाने लगी। इस उपागम ने अनेक महत्वपूर्ण अवधारणाएं, मानकीकृत शब्दावली तथा एक आधुनिक विचार बन्ध दिया है। सबसे बढ़कर इसने एक सामान्य सिद्धान्त के प्रति दिशा-निर्देश बनाने का प्रयास किया है। सिद्धान्त, तथ्य एवं शोध के एकीकरण पर जोर देने में यह सर्वथा अग्रणी उपागम रहा है।

अभ्यास प्रश्न

1.संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम किसके द्वारा प्रतिपादित है?

2.संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विश्लेषण किन दो संकल्पनाओं पर आधारित है?

3.आगत कितने प्रकार के होते हैं?

4.ऑमण्ड ने विकासशील देशों के राज्यव्यवस्थाओं कितने प्रकार के प्रारूप बताए हैं?

5.परम्परात्मक अल्पतन्त्र का एक उदाहरण बताइए।

3.6. सारांश

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम के कारण तुलनात्मक राजनीति का व्यापक अध्ययन आरम्भ हुआ है जिसने राजनीतिक व्यवस्थाओं के समझ के लिए एक व्यापक और निरपेक्ष अवधारणा प्रदान किया है। इसने राजनीतिक घटनाओं, आंकड़ों, परिवर्तनों तथा प्रक्रियाओं के अध्ययन को नया परिप्रेक्ष्य प्रदान किया है। इस उपागम से समाज के विभिन्न तत्वों की अंतर्निर्भरता पर ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसके परिणाम स्वरूप अन्तःनिर्भरता व अन्तःक्रियाओं को नियन्त्रित किये जाने वाले नियमों की खोज की जाने लगी। इस उपागम ने अनेक महत्वपूर्ण अवधारणाएं, मानकीकृत शब्दावली तथा एक आधुनिक विचार बन्ध दिया है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम ने राजनीतिक व्यवस्था के कुछ मूलभूत संरचनाओं और प्रकार्यों की पहचान कर राजनीतिक व्यवस्थाओं, विशेष रूप से विकासशील देशों के राजनीतिक विकास के विविध पक्षों की पड़ताल हेतु एक दृष्टि प्रदान करता है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर बल देते हुए संरचनाओं में प्रकार्यात्मक अन्तर्निर्भरता का विश्लेषण करता है।

3.7. शब्दावली

संरचना- हर राजनीतिक व्यवस्था में प्रकार्यों की क्रिया, जिस व्यवस्था के द्वारा की जाती है उस व्यवस्थात्मक संगठन को संरचना का नाम दिया जाता है।

प्रकार्य- वे प्रेक्षित परिणाम हैं जो किसी पद्धति के अनुकूल या पुनः समायोजन की व्याख्या करते हैं, और उन प्रेक्षित परिणामों की अपक्रिया (dysfunction) करते हैं जो व्यवस्था के अनुकूल या समायोजन को कम करतें हैं।

निवेश- राजनीतिक व्यवस्था के अंदर जो मांग और समर्थन विभिन्न माध्यमों/संरचनाओं से आता है, उसे राजनीतिक व्यवस्था का निवेश कहा जाता है।

रूपांतरण- राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत जिस प्रक्रिया द्वारा विविध मांगों को निर्णयन की स्थिति में लाया जाता है उसे रूपांतरण कहा जाता है।

निर्गत- राजनीतिक व्यवस्था में मांग और समर्थन के सापेक्ष, रूपांतरण की प्रक्रिया द्वारा नियम, विनियम, विधि, व्यवस्था, वस्तु आदि के रूप में जो भी सरकार द्वारा प्रदत्त किया जाता है, उसे निर्गत कहा जाता है।

पर्यावरण- जिस राजनीतिक वातावरण और व्यवस्था में समस्त संरचनाएं कार्य करती हैं और मांग,समर्थन, रूपांतरण सहित पुर्ननिवेश की समस्त प्रक्रियाएं सम्पादित होती हैं, उसे राजनीतिक व्यवस्था का पर्यावरण कहा जाता है।

3.8.अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम ऑमण्ड द्वारा प्रतिपादित है।

2.संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विश्लेषण संरचना और प्रकार्य की संकल्पनाओं पर आधारित है।

3.आगत चार प्रकार के होते हैं।

4.ऑमण्ड ने विकासशील देशों के राज्यव्यवस्थाओं के पांच प्रारूप बताए हैं।

5.परम्परात्मक अल्पतन्त्र का उदाहरण भूटान है।

3.9.संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, जैन

2.तुलनात्मक राजनीति, जे0 सी0 जौहरी

3.तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं

3.10.सहायक/ उपयोगी अध्ययन सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

3.11.निबंधात्मक प्रश्न

1.तुलनात्मक राजनीति की अवधारणा को संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम ने एक नवीन आयाम दिया है। इस कथ की विवेचना करें।

2.कृत्य और अपकृत्य को परिभाषित करते हुए, संरचना एवं पर्यावरण पर इसके पड़ने वाले प्रभाव की विवेचना करें।

3.संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम को दर्शाते हुए, इसकी उपादेयता एवं सीमाओं की विवेचना करें।

इकाई 4 राजनीतिक संचार

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 कार्ल डायश तथा संचार सिद्धांत

4.4 राजनीतिक संचार – अर्थ एवं स्वरुप

4.5 राजनीतिक संचार का कार्यकारी दृष्टिकोण

4.6 राजनीतिक संचार संचालन के तत्व

4.7आधुनिक संचार व्यवस्था

4.8 आलोचना

4.9 संचार सिद्धांत की उपयोगिता एवं महत्व

4.10 सारांश

4.11 शब्दावली

4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.13 संदर्भ ग्रंथ

4.14 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

4.15 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

राजनीतिक व्यवस्था में संचार का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे व्यवस्था की गतिशीलता बनी रहती है। राजनीतिक संचार शासकों एवं शासितों के मध्य संपर्क सूत्र है। राजनीतिक संचार की संजीवता किसी भी राजनीति व्यवस्था की स्थिरता का सूचक है। इसके फलस्वरूप व्यवस्था में तनाव की स्थिति पैदा नहीं होती तथा यदि होती भी है तो वह उग्र रूप धारण नहीं कर पाती। वास्तव में मानव के समस्त जीवन में संचार एक ऐसा व्यापाक तत्व हे जो सामाजिक कार्यों के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करता है। राजनीतिक जीवन में संचार के महत्व पर बल देते हुए कार्ल डायश ने अपनी पुस्तक "The Nerves of Government" में सुझाव दिया है कि संचार के दृष्टिकोण से समस्त राजनीति शास्त्र पर पुन: विचार होना चाहिये। राजनीति का उन तत्वों के आधार पर अध्ययन होना चाहिये जो संचार पैदा करते है तथा उनका प्रभाव निश्चित करते हैं |इस इकाई में राजनीतिक संचार के विविध पक्षों का अध्ययन करेंगे |

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

1.कार्ल डायश तथा संचार सिद्धांत के बारे जान सकेंगे

2.राजनीतिक संचार – अर्थ एवं स्वरुप के सम्बन्ध में जान सकेंगे

3.राजनीतिक संचार संचालन के तत्व के सम्बन्ध में जान सकेंगे

4.आधुनिक संचार व्यवस्था ,संचार सिद्धांत की उपयोगिता एवं महत्व के बारे में जान सकेंगे

द्वितीय महायुद्ध के उपरांत सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए। विभिन्न सामाजिक अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सभी सामाजिक विज्ञानों में कुछ आधारभूत एवं व्यवहारगत समानतायें हैं। इस दृष्टि से राजविज्ञान की विषयगत स्थिति में आया परिवर्तन उसके विषय क्षेत्र में आये बहुआयामी सन्दर्भों का सूचक है। इस दृष्टि से वर्तमान समय में यह एक सर्वमान्य तथ्य उभर कर सामने आया है। इस दृष्टि से संचार सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण अवधारणा है जिसने राजविज्ञान को अधिक व्यवहारपरक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक सापेक्ष बनाने में अपना योगदान दिया है। इस सिद्धान्त के विकास में प्रारम्भिक योगदान नोबार्ट वीनर का माना जा सकता है जिसने अपने संचार नियंत्रण विज्ञान की अवधारणा के माध्यम से इसे गतिशीलता प्रदान की। रास एश्बी ने इसका विस्तार किया तथा संचार की दृष्टि से मनुष्य जानवर समाज, राष्ट्र राज्य इत्यादि को महत्वपूर्ण बताया है। राजविज्ञान ने इसके प्रतिनिधि विचारकों में कार्ल डायच, ल्यूसियन पाई, डब्लू श्राम तथा जेम्स बर्टन का नाम सम्मिलित किया जा सकता है।

4.3 कार्ल डायश तथा संचार सिद्धांत

कार्ल डायश राजविज्ञान में संचार क्रांति लाने वाले प्रमुख विद्वान रहे हैं। उन्होंने संचार सिद्धान्त तथा संचार नियंत्रण विज्ञान के माध्यम से राजनैतिक विश्लेषण के लिए एक नये उपागम का प्रयोग किया है। वह संचार नियंत्रण विज्ञान की वैज्ञानिक धारणाओं का प्रयोग करके प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों में एकता स्थापित करना चाहते हैं। वे डेविड ईस्टन के समाज ही राज व्यवस्था की जीवन प्रक्रियाओं ढूँढने तथा उनके लक्ष्य निर्धारित करते हैं। दूसरी ओर उनकी रूचि राजव्यवस्था के संतुलन एवं अस्तित्व निर्धारित तक ही सीमिति नहीं रहती बल्कि उसकी वृद्धि एवं परिवर्तनों की ओर भी उनकी दृष्टि रहती है। उनका लक्ष्य राजनीति में भौतिक बल या शक्ति के महत्व को भी सीमित करना है। यहॉ पर यह बताना पर्याप्त होगा कि संचार सिद्धान्त का लक्ष्य निर्णय प्रक्रिया पर अपना ध्यान केन्द्रित करना है न कि निणयों के वास्तविक परिणामों पर।

संचार नियंत्रण विज्ञान (Cylemetics) डायश के संचार सिद्धान्त का मूलाधार है। इसे एक ऐसा सिद्धान्त एवं तकनीक माना गया है जो विभिन्न व्यवस्थाओं का इस दृष्टि से अध्ययन करता है कि वे अपने जगत का किस प्रकार नियंत्रण करती हैं नोबर्ट वीनर के अनुसार संचार नियंत्रण विज्ञान उन प्रणालियों से सम्बद्ध है जिनके द्वारा कतिपय संयत्र प्रतिसम्भरण के माध्यम से अपने को बनाये रखते हैं। इस विज्ञान का प्रयोग राजनीति में कार्यकुशलता लाने के लिए किया जा सकता है। फ्रेंच विद्वान डी0 डुर्बले ने कहा है कि ये शासक मशीनें हमारी परम्परागत राजनीतिक संस्थाओं तथा राजनीतिज्ञों की कमियों को दूर कर देंगी।

डॉ0 एस0 पी0 वर्मा ने अपनी पुस्तक "Modern Political Theory" में कार्ल डायश के संचार सिद्धान्त की विस्तार से चर्चा की है। उनके अनुसार कार्ल डायश अपने अपने संचार सिद्धान्त

का आरम्भ संचार अभियंत्रण तथा शक्ति अभियंत्रण में अन्तर करते हुए करते हैं। शक्ति अभियंत्रण के अर्न्तगत परिवर्तन संचालित ऊर्जा के समानुपात में होता है। जबकि संचार अभियंत्रण में परिवर्तन सूचनाओं के संप्रेक्षण पर आधारित होता जो संचालित ऊर्जा के समानुपात से पूर्णतया तालमेल नहीं रखता। यह सत्य है शक्ति के माध्यम से परिवर्तन की गति मिलती है परन्तु सूचना के माध्यम से किया गया परिवर्तन निश्चित बिन्दुओं में परिवर्तन करने वाला होता है जिसका लक्ष्य राजनीतिक व्यवस्था में दीर्घकालिक योजनाओं से होता है। यही कारण है कि कार्ल डायश को राजनीतिक शक्ति का आन्तरिक स्त्रोत कहता है। उसके अनुसार सरकार एक प्रकार का मार्ग निर्देशन है न कि शक्ति का प्रयोग।

डायश राजनीति एवं शासन का सार राजनीति विज्ञान का नया स्वरूप कतिपय लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर जाने वाली मानवीय प्रयासों की मार्ग परिवर्तनकारी तथा समन्वयकारी प्रतिक्रियाओं को मानता है। ये समस्त प्रतिक्रियायें विनिश्चय परिधि के दायरे में कार्य करती हैं जिसकी मूल इकाई सूचना प्रवाह है जो दो प्रकार से ज्ञात किया जा सकता हैं –

(अ) समस्त व्यवस्था में वास्तविक सूचनाओं के प्रवाह के रूप में।

(ब) इन सूचना प्रवाहों के रूप को ढालने वाली अनेक संरचनाओं के रूप में। कार्ल डायश के संचार सिद्धान्त के चार भाग हैं –

(1) परिचालनात्मक संरचना

(2) सूचना प्रवाह या सूचना सम्बन्धी प्रतिक्रियायें

(3) विनिश्चय सम्बन्धी प्रतिक्रियायें

(4) प्रतिसम्भरण प्रक्रिया

प्रथम भाग संक्रियात्मक संरचनाओं से सम्बन्धित है। प्रत्येक राजनीतिक संगठन में उसकी संग्राहक व्यवस्था घरेलू तथा विदेशी व्यवस्थाओं से सूचना प्राप्त करती है। सूचना प्राप्ति के अतिरिक्त उसे अन्य कार्य भी करना पड़ता है जैसे सूचना क्षेत्र का निर्धारण, सूचना क चयन तथा प्राप्त सूचना का विश्लेषण। निर्णय निर्माण मशीन की सूचना की देखभाल तथा सूचना के अनुसार कार्य कुछ ऐसी संस्थायें करती हैं जिन्हें कम्प्यूटर में याददाश्त, मूल्य निर्धारण तथा वास्तविक निर्णय केन्द्र करते हैं। मूल्य निर्धारण क्रिया, आवश्यकताओं एवं मान्यताओं के अनुसार वरीयता निर्धारित करती है तथा वास्तविक निर्णय मशीन निर्णय लेने के पश्चात इस सूचना को उस इकाई में पुन: भेज देती है।

दूसरा भाग सूचना के प्रवाहों तथा प्रक्रियाओं से सम्बद्ध है। इसमें मुख्य अवधारणायें मार्ग, भार तथा भार तथा भार क्षमता से सम्बद्ध होती हैं। भार का अर्थ है निर्धारित समय से पूर्व उपलब्ध सूचना, भार क्षमता से तात्पर्य है उपलब्ध सूचना मार्गों की क्षमता तथा प्रकार। मार्ग सूचनाओं को लाने ले जाने वाली संरचनाओं या सूचना प्रक्रियाओं के अनुक्रम को कहते हैं । भार समय एवं मात्रा की दृष्टि से परिवर्तन होता रहता है । भार क्षमता अनुक्रियाशीलत, निष्ठा, पृष्ठ भूमिगत शोर तथा विद्रूपता आदि कारकों से घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती है। यह शुद्धता संचार साधनों में उत्पन्न विभिन्न प्रकार के उपखण्डों एवं ध्वनियों से उत्पन्न होती हैं। इसके उपरान्त अनुसरण क्रिया आरम्भ होती है जिससे तात्पर्य प्राप्त सूचना को भूतकालीन अनुभव के आधार पर विश्लेषित किया जाना है। इन सब क्रियाओं को मिलाकर एक मिली जुली क्षमता कहा जाता है जो राजनीतिक व्यवस्था की कार्यविधि का वर्णन करती है। यंग के अनुसार '' यह एक ऐसी क्षमता है जो विभिन्न प्रकार की असीमित सूचनाओं को सुनिश्चित परिणामों में परिवर्तित कर देती है ताकि राजनीतिक पद्धति के उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।''

तीसरा भाग विभिन्न विनिश्चय प्रक्रियाओं के परिणामों से सम्बन्धित है। इस स्थान पर प्रतिसम्भरण एवं प्रातसम्भरण क्रिया के सम्बन्ध में विचार उत्पन्न हो जाते हैं। डायच के अनुसार यहॉ पर प्रातिसम्भरण से तात्पर्य संचार साधनों का वह जाल है जो किसी सूचना प्राप्ति पर कार्य करना आरम्भ कर देता है तथा इसमें वे परिणाम सम्मिलित हैं जो उस प्राप्त सूचना को तथा उसके आधार पर व्यवहार में परिवर्तन कर देते हैं। परन्तु सिन्डर केवल उन सूचनाओं तथा पद्धति की स्थिति तक ही प्रतिसम्भरण को सीमित करता है जिसके माध्यम से यह सूचनायें पुन: पद्धति में सम्मिलित हो जाती हैं। वे यह भी कहते हैं कि इसमें सूचनायें निरन्तर आती रहती है इसलिए उसके माध्यम से निर्णयकों द्वारा अपने कार्यों के प्रति औचित्यता का ज्ञान प्राप्त होता रहता है।

(4) प्रतिसम्भरण – प्रत्येक राजव्यवस्था में उसके नियंत्रण तथा मार्ग परिवर्तन का अत्यधिक महत्व होता है। यह कार्य संचार की एक विशिष्ट प्रक्रिया के द्वारा किया जाता है जिसे हम प्रतिसम्भरण प्रक्रिया कहते हैं । व्यवस्था में संचार के माध्यम से नियंत्रण तथा मार्ग परिवर्तन करने के लिए प्रतिसम्भरण प्रक्रियाओं का इसी कारण महत्वपूर्ण स्थान होता है । ये प्रक्रियायें दो प्रकार की होती हैं- सकारात्मक एवं नकारात्मक। सकारात्मक अथवा प्रवर्धनशील प्रतिसम्भर उस राजनीतिक क्रिया को कहते हैं जो केवल पूर्व में लिये गये निर्णयों का सूचनाओं के आधार पर विस्तार करें। इससे पद्धति में खिंचाव पैदा हो जाता है और यह सम्भव है कि निर्णय लेने की पद्धति में

क्रान्तिकारी तनाव के कारण कोई गड़बड़ी पैदा हो जाये। 1857 में गाय, सुअर चर्बी के कारतूसों की सूचना इसका एक अच्छा उदाहरण है, यदि ब्रिटिश शासन के सथायित्व को लक्ष्य माना जाये । लक्ष्य ज्ञात होने पर ही किसी सूचना को नकारात्मक या सकारात्मक माना जा सकता है । नकारात्मक प्रातिसम्भरण लिये गये निर्णय के परिणामस्वरूप वे सूचनायें हैं जिनके माध्यम से पद्धति के व्यवहार की दिशा में उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टि से उचित परिवर्तन आ जाये। यह अवधारणा महत्वपूर्ण नियामकीय नियंत्रण से सम्बन्धित है । इससे चार अवधारणा महत्वपूर्ण नियामकीय नियंत्रण से सम्बन्धित है। इससे चार अवधारणायें भार (Lode) पश्चता (Lag) लाभ (Gain) तथा अग्रता जुड़ी हुई है। भार का तात्पर्य है निर्देशित समय पर सूचनाओं के लक्ष्य के संदर्भ में विस्तार एवं गति की दृष्टि से समस्त सूचनाओं का अन्तर्ग्रहण। पाश्चता से तात्पर्य है उस विलम्ब से है जो विनिश्चयों तथा क्रियाओं के परिणामों के विषय में सूचनाओं के प्रतिवेदन या अनुसरण से सम्बन्धित है । लाभ पद्धति की सूचना से सम्बन्धित, सूचना प्राप्ति के तुरन्त पश्चात निर्णय लेने की क्षमता को कहते हैं। अग्रता उस क्षमता को कहते हैं जो भविष्य के परिणामों के सम्बन्ध में निर्णय ले सके ताकि आने वाली कठिनाइयों का मुकाबला किया जा सके। इस उपागम को मानने वाले प्राय: यह मानते हैं कि राजनीतिक व्यवस्था के सभी कार्य संचार साधनों के द्वारा ही किये जाते हैं। आमण्ड ने अपनी 'Politics of the Developing Aveas' नामक पुस्तक में लिखा है कि संचार साधनों की तुलना मानव शरीर में रक्त संचार से की जा सकती है । निस्संदेह खून पद्धति को शक्ति नहीं देता है परन्तु जो खून में है वह पद्धति को शक्ति देता है। खून एक माध्यम है जो नाडियों के माध्यम से हृदय तक पहुचता है तथा निर्गतों के रूप में उन भागों के स्थान पर पुन: पद्धति में शामिल हो जाता है।

डायश के राजनीति के प्रति विचार बड़े नवीन तथा विचित्र प्रतीत होते हैं । उन्होंने न केवल राजनीति को नया अर्थ दिया बल्कि सरकार एवं राजनीतिक व्यवस्था के प्रति भी नया दृष्टिकोण दिया । उसके समस्त राजनीतिक विचार में एक विशिष्ट प्रकार की गतिशीलता है जो संचार सिद्धान्त को अत्यधिक व्यवहारिक एवं संतुलित बना देती है।

4.4 राजनीतिक संचार – अर्थ एवं स्वरुप

संचार शब्द का प्रयोग संकीर्ण अथवा विशिष्ट अथवा व्यापक अथवा सामान्य अर्थों में किया जाता है। वीवर के अनुसार संचार के अर्न्तगत वे सभी प्रक्रियायें शामिल की गई है जिनसे एक मानस अन्यों को प्रभावित करता है।

व्यापक अर्थ में संचार शब्द के अर्न्तगत मौखिक कथन के साथ-साथ मानव व्यवहार सम्मिलित है । व्यापकतम अर्थों में संचार पद को उन तरीकों के सन्दर्भ में प्रयोग किया जा सकता है जिसमें भौतिक पर्यावरण केन्द्रीय स्नायुतंत्र में संकेतों को उत्तेजित करता है । इस अर्थ में जीव तथा पर्यावरण मिलकर एक पद्धति का निर्माण करते हैं- जीव पर्यावरण को प्रभावित करता है तथा पर्यावरण जीव को प्रभावित करता है।

राजनीतिक संचार को राजनीतिक संचार नियंत्रण पद्धति अथवा साइबरनेटिक्स के नाम से भी जाना जाता है । साइबरनेटिक्स मूलत: विभिन्न सादृश्यपूर्ण समष्टियों में सम्भावनाओं के अध्ययन के लिए सिद्धान्त एवं तकनीक का निकाय है तथा इन समष्टियों के नियंत्रण के लिए संदेशों के आदान-प्रदान का तरीका है।

यंग के अनुसार यह संप्रत्यय राजनीति तथा सरकार द्वारा मानवीय प्रयासों को किन्हीं निर्दिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए संचालन तथा समन्वय की प्रक्रिया है।

संचार तथा राजनीतिक संचार दो विभिन्न अर्थ शब्द है जिनका राजनीति समाजशास्त्र में विभिन्न अर्थ होता है। संचार शब्द का सम्बन्ध समाचारों के प्रयास माध्यम से है । राजनीतिक संचार शब्द से आशय प्रेम, रेडियों, टेलीविजन इत्यादि से नहीं है, यद्यपि इनका राजनीतिक संचार के व्यापक अध्ययन से महत्वपूर्ण स्थान है।

राजनीतिक संचार से आशय राजनीतिक व्यवस्था के एक भाग से दूसरे भाग तक मॉगों एवं निर्णयों को पहुचाने की एक गतिशील क्रिया है। संचार व्यवस्था के विभिन्न भागों को परस्पर जोड़ता है तथा वर्तमान को अतीत एवं भविष्य के साथ सम्बन्धित करता है जिससे मॉगों के अनुसार नितियों का निर्माण किया जा सकें वस्तुत: नागरिकों एवं राजनीतिक नेतृत्व के मध्य संचार को राजनीतिक संचार कहते हैं।

राजनीतिक संचार इस बात पर बल देता है कि राजनीतिक व्यवस्था में सभी कार्य संचार के माध्यम से होते हैं। संचार की किसी व्यवस्था को संपोषित एवं विकसित करता है। संचार का वही महत्व है जो शरीर में रक्त संचालन का होता है। राजनीतिक व्यवस्था के सभी निवेश एवं निर्गत प्रकार्यों को संचार द्वारा किया जाता है। उदाहरणार्थ राजनीतिक दल एवं दबाव समूहों के नेता अननी मॉगों एवं नीतियों के सन्दर्भ में कार्य निष्पादन संचार के माध्यम से करते हैं। इस प्रकार संसद सदस्य अपने सहयोगियों तथा सरकारी मंत्रियों कि सूचना के आधार पर ही कानून निर्माण का कार्य संपन्न करते हैं।

4.5 राजनीतिक संचार का कार्यकारी दृष्टिकोण

राजनीतिक व्यवस्था में प्राय: समस्त कार्य संचार माध्यम से किये जाते हैं। इस रूप में प्राय: यह विचार उत्पन्न होता है कि राजनीति संचार एक प्राकर का राजनीतिक कार्य है। परन्तु आमण्ड का विचार है कि राजनीतिक शास्त्रियों को इस विचार से बचना चाहिये क्योंकि ऐसा न किया गया तो विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं आम क्रियाओं में अन्तर करने के बहुत बड़े साधन से हम वंचित रह जायेगें। तुलनात्मक राजनीति के संदर्भ में निवेशों के सम्बन्ध में निर्णयों का प्रभाव ज्ञान प्राप्ति का दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए प्रो यंग राजनीतिक संचार उपागम के चार लक्षणों का वर्णन करते हैं जो निम्नलिखित हैं-

(1) यह उपागम निर्णय निर्माण तथा उसकी प्रक्रिया से सम्बन्धित है उसके परिणामों से नहीं। इसलिए यह उपागम सूचना की प्राप्ति के साधन संस्थाओं से सम्बन्धित है।

(2) यह उपागम विभिन्न प्रक्रियाओं तथा गतिविधियों से सम्बन्धित है। अत: वह इस रूप में निर्णय लेने की पद्धति में तथा उसकी क्रियाओं में व्यवस्था के अनुसार परिवर्तित करने की क्षमता रखता है।

(3) विकासवादी क्रान्तियों की विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में जो राजनीतिक विश्लेषण में सहायक सिद्ध होती है के सुलझाने में यह समर्थ है।

(4) यह व्यवस्था की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने में उचित निर्णय लेने में समर्थ है।

राजनीतिक संचार उपागम विभिन्न प्रकार की पद्धतियों की तुलना करने में एक परिवर्त्य का कार्य करता है। उदाहरण के लिए लोकतांत्रिक पद्धति में विभिन्न संस्थाओं की भूमिका में अन्तर किया जा सकता है। इसमें सूचना के साधनों की विभिन्नता होती है जिसके परिणामस्वरूप राजनीतिक सभ्यता बहुमुखी हो जाती है। इसके विपरीत अधिनायक तंत्र में सत्ता के प्रयोजन के कारण अभिजन लोग संचार साधनों पर पूर्व नियंत्रण रखते है तथा वह एक ही राजनीतिक सभ्यता का प्रचार करता है। आमण्ड के अनुसार आधुनिक राजनीतिक पद्धति तथा परम्परागत राजनीतिक पद्धति में मुख्य अन्तर यह है कि आधुनिक राजनीतिक पद्धति में संचार साधन विशिष्ट रूप से उपलब्ध है जबकि परंपरागत तथा अविकसित समाजों में संचार का कार्य ग्राम, समाज समूह इत्यादि करते हैं तथा विकासशील देशों में दोनों प्रकार के साधन उपलब्ध होते हैं परन्तु महत्व परम्परागत साधनों का ही होता है।

4.6 राजनीतिक संचार संचालन के तत्व

राजनीतिक संचार में चार प्रमुख तत्वों का योगदान होता है –

(1) **राजनीति का विचार भाग-** राजनीति के विचार भाग के अर्न्तगत राजनीति के विचारों, सिद्धान्तों, आदर्शों, लक्ष्यों, उद्देश्यों, नीतियों, योजनाओं इत्यादि के संचार का बोध होता है।

(2) **राजनीति का व्यवहारिक भाग** – इससे राजनीति के व्यवहारिक भाग का बोध होता है। जिसके अर्न्तगत विभिन्न विषयों का समावेश होता है। इससे विभिन्न कार्यो, कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों बोध होता है जिन्हें राजनीतिक पद्धति के आधार भूत तत्व रूप में स्वीकार किया जाता है।

(3) **राजनीति का शिकायत समाधान भाग** – इससे शिकायतों के समाधान अथवा लोगों के विचारों, भवनाओं तथा मॉगों में परिवर्तन का बोध होता है। इससे आम लोगों के विचारों, भावनाओं तथा मॉगों में परिवर्तन के फलस्वरूप अपनी शिकायतों को सम्बन्धित व्यक्तियों तक संचार किया जाता है। नागरिकों द्वारा अपनी मॉगों को आवेदनों, प्रातिवेदनों, स्मरण पत्रों शिकायतों, मतभेदों, प्रतिवादों एवं कलहों के माध्यम से सम्बद्ध पदाधिकारियों को संचालित किया जाता है। जिसके द्वारा सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों में परिवर्तन की मॉग उठाई जाती है तथा समस्याओं का समाधान किया जाता है।

(4) **राजनीति का निर्णयपरक भाग** – इससे उन विषयों में संचार का बोंध होता है जो राजनीति की मूल नीतियों के कुशल कार्य सम्पादक में सहायक है। इसके अर्न्तगत ऐसे प्रभावों का प्रयास किया जाता है जिसे विभिन्न प्रकारों से व्यक्त किया जाता है जैसे सही दृष्टिकोण, सही सम्मोहन, सही वातावरण, हौसला, उमंग पहल, साधन सम्पन्नता, धैर्य, शौर्य इत्यादि। राजनीतिक संरचना के संचालन का शक्ति से घनिष्ट सम्बन्ध है। संचार के उद्देश्यों के लिए शक्ति की प्रकृति एवं मात्रा के उपयोग पर ही संचार की प्रकृति एवं मात्रा के उपयोग पर ही संचार की प्रकृति, शक्ति एवं प्रभाव अवलम्बित है। राजनीतिक संचार राजनीतिक सहभागिता के प्रभाव एवं मात्रा में वृद्धि करता है।यह भी देखा गया है कि राजनीतिक व्यक्तियों में गैर राजनीतिक व्यक्तियों की अपेक्षा राजनीतिक शक्ति एवं प्रभाव अधिक स्पष्ट होता है।

4.7आधुनिक संचार व्यवस्था

परम्परागत समाजों में संचार प्रक्रिया का अन्य सामाजिक प्रक्रियाओं से विभेद नहीं था। उनमें व्यवसायिक संचारकर्ताओं का अभाव था। उनमें लोग समाज में अपनी राजनीतिक सामाजिक स्थिति के आधार पर भाग लेते थे।

आधुनिक संरचना अध्ययन की दो बातें घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। प्रथम एक अत्यन्त संगठित सपष्टतया संरक्षित जन संचार व्यवस्था द्वितीय अनैपचारिक वैचारिक नेतृत्व जो आमने सामने, प्रत्यक्ष, व्यक्तिगत आधार पर विचारों को संचार करता है।

आधुनिक जनसंचार के साधन पेशेवर तथा औद्योगिकी हैं तथा ये देश की शासकीय तथा सामाजिक प्रेक्रियाओं से स्वतंत्र है। जनसंचारों का संचालन निष्पक्ष तथा तटस्थ ढंग से सम्भव है। इसमें व्यवसायी संचारक तथा प्रभावी लोगों के मध्य अतिसंवेदनशील पारस्परिक क्रिया होती है जो एक समान संदशों को विशाल जन श्रोताओं को प्रवाहित करने की क्षमता रखती है।

संचार प्रक्रिया अधिकांशत: ऐसे लोगों पर आश्रित होती है जो अन्य सामाजिक भूमिकाओं में रत होते हैं। यह सामाजिक तथा राजनीतिक प्रक्रियाओं से स्वतंत्र होती है तथा आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से एक भिन्न उद्योग है यही कारण है कि विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं में संचार प्रतिमान अनेक कारणों से प्रभावित होता है जो इस प्रकार हैं –

1.भौतिक तथा प्रौद्योगिक कारक – संचार साधनों का ऐतिहासिक विकास घनिष्ठ रूप से भौतिक एवं प्रौद्योगिक परिस्थितियों से जुड़ा है। आधुनिक प्रौद्योगिक विकास ने न केवल व्यक्तियों तथा वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की प्रक्रिया को सुगम किया है वरन् उसने सूचना तंत्र के विकास में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

2.आर्थिक विकास – आर्थिक विकास का स्तर जितना ऊँचा होगा। आर्थिक दृष्टि से विकसित देशों में संचार का मार्ग अपेक्षाकृत एक समान होता है। विकसित राष्ट्रों में लोग जनमाध्यम पर कम तथा संचार के नियंत्रित तथा अनौपचारिक मार्गों पर अधिक निर्भर करता है।

3.सामाजिक सांस्कृतिक कारक – सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन भी संचार के प्रतिमानों को प्रभावित करता है। उदाहरणार्थ नाजी जर्मनी में संचार के साधन रोडियो तथा समाचार पत्रों पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण था। ऐसी ही स्थिति भारत में 1975 में आपातकाल के दौरान आई थी।

आमण्ड की पॉच प्रकार की संरचनाओं का वर्णन किया हैं।

औपचारिक प्रत्यक्ष सम्पर्क - व्यक्तिगत सम्पर्क से सम्बद्ध।

परम्परागत सामाजिक संरचना - जाति प्रधान, वयोवृद्ध परिवार तथा धार्मिक नेताओं से सम्बद्ध।

राजनीतिक निर्यात संरचनायें – व्यवस्थापिकाओं एवं विभागीय तंत्र से सम्बद्ध।

राजनीतिक निवेश संरचनायें – दबाव समूहों एवं राजनैतिक दलो से सम्बद्ध।

जनसंचार माध्यम- समाचार पत्र, रेडियों, टेलिविजन, पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं से सम्बद्ध।

4.8 आलोचना

संचार सिद्धान्त राजनीतिक विश्लेषण की दृष्टि से अत्यन्त उपयागी सिद्ध हुआ है। संचार नियंत्रण विज्ञान की व्याख्या के माध्यम से इसने राजनीतिक निर्णयों में सूचना तंत्र को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। परन्तु यहॉ पर यह ध्यान देना आवश्यक होगा कि यह उपागम अभी पूर्ण विकासमान अवस्था को प्राप्त नहीं हो सका है। इसका गहन अध्ययन करने पर इसकी सीमायें उभर कर सामने आती हैं। विशेष रूप से इस उपागम की निम्न आधारों पर आलोचना की जाती है :-

सूचना प्रवाहों पर अधिक बल – संचार नियंत्रण विज्ञान पर आधारित होने के कारण यह उपागम गत्यात्मकता की ओर अधिक झुका हुआ प्रतीत होता है। यही कारण है कि इसमें सूचना प्रवाहों पर अधिक ध्यान दिया गया है। डॉ0 एस पी0 वर्मा के अनुसार, ''कार्ल डायच की अपनी योजना में परिणामों या निर्णय की अपेक्षा प्रवाहों पर अधिक बल दिया गया है। यद्यपि यह सत्य है कि राजनीति मे अप प्रवाहों का अधिक महत्व है तथा जिसे निरन्तर स्वीकार भी किया गया है। परन्तु परिणामों एवं निर्णयों का भी अपना महत्व होता है।''

अस्पष्ट उपागम- यद्यपि यह उपागम राजनीतिक संक्रियाओं का सूक्ष्म एवं परिशुद्ध वर्णन करने में सफल हुआ है, परन्तु इस प्रयास में उसकी शब्दावली दुरूह एवं अस्पष्ट प्रतीत होती है। इस उपागम के माध्यम ये शक्ति एवं नियंत्रण को गहराई से नहीं समझा जा सकता है। जैसे शक्ति के विस्तार तथा गहराई की मात्रा में विभिन्नता, शक्ति तथा प्रभाव में अन्तर विशिष्ट शक्ति के स्त्रोत इत्यादि।

यांत्रिकरण पर अधिक बल- इस सिद्धान्त की आलोचना का एक अन्य आधार यह भी है कि इसकी प्रकृति यांत्रिक अधिक हो गयी है तथा मानव स्वभाव का यांत्रिक अभिमुखी करण करने का प्रयास किया है। इस प्रयास में कार्ल डायश के साथ क्लाड शानेन, नोबर्ट वीनर तथा डब्लू आर

ऐयाबाई को सम्मिलित किया जा सकता है जिन्होंने इसके लिए सूचना सिद्धान्त तथा संचार नियंत्रण विज्ञान को आधार बनाया है। परन्तु मानव स्वभाव को आवश्यकता से अधिक यांत्रिक दृष्टि से समझना सर्वथा उपयोगी एवं व्यवहारिक नहीं कहा जा सकता। इसे व्यापक सामाजिक सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। जैसा कि नोबर्ट वीनर का मानना है कि समाज को मात्र उसके संदेशों तथा संचारों से ही भली-भॉति समझा जा सकता है।

प्रतिमानों का मशीनीकरण अनुचित – संचार सिद्धान्त के अर्न्तगत ऐसे प्रतिमानों को राजनीति शास्त्र में अपनाने का प्रयोग किया गया है परन्तु वे उन लक्षणों को पूर्ण करने में सफल नहीं हो सके हैं जिन्हें दृष्टिगत करते हुए उन्हें सामाजिक विज्ञानों में स्थान दिया गया था। यांत्रिक सादृश्यता के कारण राजनीतिक संरचनाओं एवं प्रक्रियाओं का मूर्तिकरण करने का प्रयास किया गया है। डॉ0 एस0 पी0 वर्मा का तो मानना है कि कार्ल डायस के मॉडल की राजनीतिक सीमायें स्पष्ट नहीं हैं तथा राजनीतिक विश्लेषण में अतिबौद्धिकता तथा औपचारिकता को स्थान दिया गया है जिसके कारण संपूर्ण उपागम में असमंजसंपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

वैज्ञानिकता का अभाव – इस उपागम के अर्न्तगत वृद्धि एवं लक्षणों की विवेचना की गयी है, परन्तु यह क्रान्तिकारी परिवर्तनों एवं विभजनों इत्यादि की व्याख्या करने में असमर्थ है। कार्ल डायश की रूचि व्यवस्था नियंत्रणात्मक प्रक्रियाओं तथा एक निश्चित दायरे के भीतर लक्ष्य परिवर्तन तक ही है। इस उपागम का लक्ष्य निर्दिष्ट व्यवस्था है जबकि लक्ष्य निर्धारित तथा उसके परिणाम राजनीति के प्राणधार हैं। इसमें लक्ष्यों के बारे में उद्धेश्यवादी ढंग से परिकल्पना की गई है, अतएवं इसमें वैज्ञानिकता का साफ-साफ अभाव दिखता है।

अव्यवहारिक उपागम – संचार उपागम व्यवहारिक दृष्टि से अनेक कठिनाइयों से घिरा हुआ प्रतीत होता है। यदि हम इसे संचालित करने का प्रयास करें तो इसमें अनेक सीमाये स्वत: स्पष्ट हो जायेंगी। इस उपागम के अर्न्तगत मान्य उच्च स्तर का विशिष्टिकरण वास्तविक जीवन में शायद ही उपलब्ध हो पाता है क्योंकि समय एवं परिस्थिति के अनुसार अपने कार्यकलापों में परिवर्तन करना पड़ता है। अतएव यह कहना सर्वथा उपयोगी होगा कि संचार सिद्धान्त अनुभवजनित अनुसन्धान के लिए अधिक उपयोगी नहीं सिद्ध हो सका है। डा0 एस0 पी0 वर्मा के अनुसार, ''यद्यपि कार्ल डायस ने इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में अपने बौद्धिक विवेक का भरपूर प्रयोग किया है परन्तु दूसरी ओर स्वयं उसने अनुभव जन्य ज्ञान का कम प्रयोग किया है।''

प्रतिसम्भरण मॉडल अस्पष्ट - कार्ल डायस ने प्रतिसम्भरण मॉडल में अबौद्धिक सहसा प्रकट होने वाले व्यवहार तथा नेतृत्व इत्यादि को कोई अधिक महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया है। राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण प्रतिसम्भरण मॉडल की दृष्टि से अधिक उपयोगी नहीं रह जाता। यही कारण है कि न ही सूचना सिद्धान्त और न ही संचार नियंत्रण विज्ञान राजवैज्ञानिकों पर अधिक प्रभाव छोड़ पाते। वस्तुत: यह उपागम सरकारी क्रियाकलापों के सन्दर्भ में अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों को प्रस्तुत अवश्य करता है परन्तु उनका समुचित उत्तर देने में असमर्थ है। यह स्थिति प्रतिसम्भरण मॉडल को अस्पष्ट कर देती है।

4.9 संचार सिद्धांत की उपयोगिता एवं महत्व

संचार सिद्धान्त राजनीतिक विज्ञान के परिवर्तित अध्ययन क्षेत्र के प्रतीक के रूप में सामने आया है। इस दृष्टि से उसकी उपयोगिता तथा व्याख्या शक्ति के बारे में जानना जरूरी है। जिससे उसका सही ढ़ग से मूल्यांकन किया जा सके। कार्ल डायश के अनुसार संचार सिद्धान्त राजनीतिक विश्लेषण के लिए एक उपयोगी एवं व्याख्या शक्ति से परिपूर्ण सिद्धान्त है।उसकी केन्द्रीय धारणा सूचनाओं का संचारण है। इसके आधार पर राजव्यवस्थाओं की सम्बद्धता, एकता, वृद्धि, इत्यादि का पता लगाया जा सकता है –

राजनीति की नयी परिभाषा- इस सिद्धान्त ने राजनीति को नयी परिभाषा एवं दृष्टिकोण प्रदान किया है। इसके माध्यम से राजनीति में सत्ता का महत्व कम हुआ है तथा अन्य अवधारणाओं जैसे राजनीति सामाजिकरण विकास तथा निर्णय निर्माण इत्यादि का महत्व बढ़ा है। यह सिद्धान्त राजनीतिक गतिविधियों को सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के रूप में परिभाषित करता है। इस दृष्टि से राजनीति का मुख्य क्षेत्र वह है जहॉ लागू करने योग्य निर्णय लिये जाते हैं तथा राजनीति का लक्ष्य मनुष्य के कार्य को समाज के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए समन्वित रूप प्रदान करना है।

राजनीतिक व्यवस्था का यांत्रिकरण – यह उपागम राजनीतिक व्यवस्था का यांत्रिकरण कर देता है। इसका लक्ष्य सूचनाओं के माध्यम से उचित ढंग से राजनीतिक व्यवस्था के अर्न्तगत मान्यताओं तथा सिद्धान्तों का विकास करना है। इस दृष्टि से राजनीतिक सत्ता के आधार एवं स्त्रोत संचार साधनों की उपलब्धि माने जाते हैं। इस उपागम के आधार पर राजनीतिक व्यवस्था की गतिशीलता को सरलता से समझा जा सकता है। राजनीतिक संचार में राजनीतिशास्त्र तथा विज्ञान एवं तकनीकि को एक दूसरे के निकट लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सरकार के सम्बन्ध में नया दृष्टिकोण- यह उपागम सरकार के सन्दर्भ में विचार करते हुए यह स्वीकार करता है कि सरकार का मुख्य कार्य विशिष्ट सूचनाओं को संचार साधनों के अर्न्तगत स्थापित करना है। इस रूप में मार्गदर्शन करना है न कि सत्ता का प्रयोग करना। यहॉ पर सत्ता का आधार संचार साधनों के माध्यम से अधिक प्रभावशाली होता प्रतीत होता है।

लघु संचार पद्धति – हर राजनीतिक पद्धति में उप पद्धतियॉ विद्यमान होती हैं। तथा उनका संचालन भी उसी प्रकार होता है जिस प्रकार पद्धति का यह सिद्धान्त विभिन्न उप पद्धतियों के मध्य होने वाले संघर्षों तथा सम्बन्धित विवादों को संचार माध्यम से सुलझाने में सहायक होता है।

संतुलन के स्थान पर मानवता पर बल – यह सिद्धान्त राजनीतिक व्यवस्था के संतुलन में विश्वास नहीं करता क्योकि इससे व्यवस्था मशीनीकरण का शिकार हो जाती है। यह सिद्धान्त राजनीति को अत्यन्त गतिशील मानता है तथा उसकी मान्यता यह है कि राजनीतिक व्यवस्था वातावरण के अनुसार उचित परिवर्तन लाने के योग्य होती है। राजनीतिक व्यवस्था में सूचनायें नियंत्रण के रूप में आती रहती हैं। अतएव उसे अपने आपको परिवर्तनशील बनाना चाहिए।

प्रतिसम्भरण का सिद्धान्त – संचार सिद्धान्त के अर्न्तगत प्रतिसम्भरण के सिद्धान्त पर अधिक बल दिया गया है जिसको कार्ल डायश ने नाड़ी राजनीति सिद्धान्त का नाम दिया (Neero Politics) है। प्रतिसम्भरण वह प्रक्रिया है जो सूचना प्राप्ति पर उचित निर्णय लेने के लिए राजनीतिक व्यवस्था को वाध्य करती है। इसका सर्वधिक महत्वपूर्ण पक्ष तो यह है कि किसी निर्णय के सन्दर्भ में प्रति सूचना प्राप्त होने पर उसमें उचित परिवर्तन करके राजनीतिक व्यवस्था को अधिक प्रभावशाली बनाने का प्रयास किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न:

1."Modern Political Theory"पुस्तक के लेखन कौन है ?

2.कार्ल डायश ने **प्रतिसम्भरण के सिद्धान्त को किस नाम से बताया ?**

4.10 सारांश

अतएव यह कहना सर्वथा उपयोगी होगा कि संचार सिद्धान्त ने राजनीति शास्त्र में एक क्रांन्ति को जन्म दिया है जिसके सहारे न केवल राजनीतिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों को समझा जा सकता है बल्कि राजनीति शास्त्र को एक विषय के रूप में क्रमबद्ध औचित्यपूर्ण तथा तर्कपूर्ण ढंग से

देखा जा सकता है । राजनीतिशास्त्र को विज्ञान बनाने तथा व्यवहारवादी अध्ययन के मार्ग पर अग्रसर करने में इस

उपागम की उपयोगिता को नजरन्दाज करना अनुचित होगा । नार्थ के अनुसार इस सिद्धान्त के माध्यम से राजनीतिक गतिविधियों को परिभाषित किया जा सकता है।

सूचना प्रौद्योगिकी में क्रान्तिकारी विकास के परिणाम स्वरूप राजनीतिक संचार के स्वरूप में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। उनके स्वरूप एवं प्रभाव का निरन्तर अध्ययन किया जा रहा है। कोई आश्चर्य नहीं होगा यदि भविष्य में राजनीतिक संचार राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं उनकी कार्यप्रणाली के स्वरूप के निर्धारण मेंनिर्णायक भूमिका निभाये।

4.11 शब्दावली

प्रतिसम्भरण- यह वह प्रक्रिया है जो सूचना प्राप्ति पर उचित निर्णय लेने के लिए राजनीतिक व्यवस्था को वाध्य करती है।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१.डॉ0 एस0 पी0 वर्मा , २.नाड़ी राजनीति सिद्धान्त

4.13 संदर्भ ग्रंथ

1.See Karl W. Deutsch, The Nerves of Government : Module of Political Communication and Control Free Press New Yurk 1963

2.Dr. S. P. Verma : Modern Political Theory.

3.Coubiation capability is a mearure of alility to idea with a wide range of information inputs in such a way to make and implement action with position consequences for the attainment of goods to the political system O. R. Young, Systems of political Science New Jeray

4.Karl Deutsch, The nerves of Government, New York 1968 P. 88

5.Richard C. Synder, Decision Making as an Approach to the study of International Politics, Princeten 1954 P. 82-89

6.Counmuniotion includes all the procedures by which one mind may affect another- W. Weaver

7.Political and Government appear in essence as hrocesses of steeing and coordinating human efferts towards the attainment of some set of goods-O.P. young, systems of Political science, p.50

8.What distinguishes a modern political system from a traditional or primitive one is the fact that in modern system, the specialized communication structure is more elaborate and that it penetrates the unspecialized or intermittent structuse of political communications Traditional or prinutive communication is performed by kinship, lineage, status and village groups. Specialised media of communication are present only to a limited degree if they arepresent at all Almond, Politics of the Devcloping Areas, Princeton, 1960 Pp. 47-48

9.In Deutsch's own scheme there is a far greater emphasis on process than on consequences or outcomes. Now processes are undoubtedly inpotrtant in politics and this is being realised. But the consequences and outcomes are far more important.

10.Dr S. P. Verma : Modern Political Theory, Pp.274-275

11."Society can only be under tood through a study of the massages and Communications facilities which belong to it" Nobert weiner The Human use Human Beings, Cyberneties and Society Doubleday and Co The 1950.

12.Dr S. P. Verma, Modern Political Theory P.275

13."Even the case of Deutsch we can say that he has expounded and advocated the theory with all intellectual brilliance that he commands but has himself not made much empirical use of it."

14.Dr S. P. Verma: Modern Political Theory 276

15.North, The Analytical Prospects of Communication Theory P. 315-316

4.14 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

4.ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस, डेविड ईस्टन

5.ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ, डेविड ईस्टन

4.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. राजनीतिक संचार के अर्थ और उपयोगिता की विवेचना कीजिए |

2. राजनीतिक संचार संचालन के तत्वों को स्पष्ट कीजिए |

इकाई 5 : राजनीतिक विकास

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 राजनीतिक विकास उपागम का अर्थ एवं व्याख्या

5.4 राजनीतिक विकास के लक्षण

5.5 राजनीतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

5.6 राजनीतिक विकास की विशेषताएं

5.7 राजनीतिक विकास के चरण

5.8 राजनीतिक विकास के संकट एवं चुनौतियां

5.9 राजनीतिक विकास के अभिकरण

5.10 आलोचना

5.11 सारांश

5.12 शब्दावली

5.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.14 संदर्भ ग्रंथ

5.15 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

5.16 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

राजनीतिक शास्त्र के विषय क्षेत्र में हुए परिवर्तनों तथा नवीन विकास के परिणामस्वरूप नये उपागमों का सृजन किया गया जिन्होंने राजनीति के अध्ययन को अधिक तर्कमूलक एवं व्यवहार संगत बनाया । परन्तु उन अध्ययनों की एक कमी यह जरूर थी कि उनके द्वारा मात्र विकसित एवं पश्चिमी देशों कि राजनीतिक व्यवस्था का ही अध्ययन किया जा सकता था, विकासशील एवं समस्याग्रस्त राजनीतिक व्यवस्थाओं का नहीं ।

इसी समस्या ने राजनीति शास्त्रियों को ऐसी दिशा में सोचने के लिए विवश कर दिया जिससे पिछड़े एवं विकासशील देशों एवं समाजों की व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जा सके । द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् **अन्तर्राष्ट्रीय** स्तर पर अनेक स्वतंत्र सम्प्रभु राष्ट्रों का उदय हुआ था । राजनैतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के उपरान्त भी इन राष्ट्रों के समक्ष राष्ट्र निर्माण से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ थीं । इन समस्याओं का अध्ययन एवं उनका निराकरण वास्तव में राजनीतिशास्त्रियों के लिए एक चुनौती थी । इसी कारण से राजनीतिशास्त्र में विकास उपागम का सृजन किया गया ।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

1.राजनीतिक विकास उपागम के अर्थ को जान सकेंगे

2.राजनीतिक विकास के लक्षण उसको प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में जान सकेंगे

3.राजनीतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

4.राजनीतिक विकास की विशेषताएं उसके विभिन्न चरण के बारे में जान सकेंगे

5.राजनीतिक विकास के अभिकरण उसके संकट और चुनौतियों के बारे में जान सकेंगे

5.3 राजनीतिक विकास उपागम का अर्थ एवं व्याख्या

राजनीतिक विकास की व्याख्या करना सरल कार्य नहीं है वस्तुत: विभिन्न विद्वानों ने इसका अर्थ अपने-अपने ढंग से निकालनेका प्रयत्न किया है । हटिंग्टन के अनुसार राजनीतिक विकास को विभिन्न ढंग से परिवर्तन के एक प्रतिरूप में परिभाषित किया गया है जो एक विशिष्ट प्रकार के समाज में विशिष्ट कारणों से विशिष्ट लक्ष्यों की ओर निर्दिष्ट है अथवा जो विशिष्ट प्रकार की सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थाओं में प्रकार्य के लिए आवश्यक है।

इजनस्टेड के अनुसार राजनीतिक विकास सम्बन्धी परिभाषा का अध्ययन करने से इसकी चार विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं :-

1.राजनीतिक विकास सम्बन्धी तथ्यों का आधार विवेकीकरण होता है इसमें विभिन्नीकरण तथा उपलब्धि का मापदण्ड विशिष्ट महत्व रखता है।

2.राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीय एकता से सम्बद्ध प्रश्नों को भी राजनीतिक विकास के साथ जोड़ा जाता है। राष्ट्रीय व्यक्तिव के संकट तथा राजनैतिक समुदाय के जातीय आधार को राष्ट्रीयता से सम्बद्ध करके देखा जाता है।

3.बहुलवाद, प्रतिद्वन्दिता, सत्ता की समानता इत्यादि लोकतांत्रिक मान्यतायें भी राजनीतिक विकास का आधार लेकर चलती है।

4.विकेन्द्रीकरण, एकीकरण तथा जनतंत्रीकरण को राजनीतिक विकास की परिभाषाओं का सार काहा जाता है।

रोस्टोव ने राजनीतिक विकास के सम्बन्ध में दो स्थितियॉ बतलाई हैं-

1.बढ़ती हुई राजनीतिक राष्ट्रीय एकता।

2.राजनीतिक सहभागिता का व्यापक आधार।

राजनीतिक विकास के दो दृष्टिकोण से स्पष्ट किया जा सकता हे :-

1.एकमार्गी दृष्टिकोण के अनुसार राज्यों के विकास का केवल एक मार्ग है। सभी राष्ट्र इस मार्ग पर चलते हुए अपना राजनीतिक विकास कर सकते हैं। राजनीतिक विकास के लिए प्रयत्नशील राष्ट्रों के समक्ष विकसित राज्यों – पश्चिमी राष्ट्र, सोवियत संघ तथा चीन का आदर्श है। इन्हीं के आधार पर विभिन्न राज्यों की विकास अवस्थाओं का मापन किया जा सकता है।

2.बहुमार्गी दृष्टिकोण के अनुसार राजनीतिक विकास बहुआयामी होता है तथा वह अनेक दिशाओं में प्रयत्नशील होता है। राजनीतिक विकास बहुगार्मी ही होता है क्योंकि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था के विकास एवं लक्ष्य निर्धारण में ऐतिहासिक, आर्थिक , सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का योगदान होता है।

वास्तव में राजनीतिक विकास की इतनी अधिक परिभाषायें मिलती हैं कि लूसियन डब्ल्यू पाई ने इसे अर्थ-भ्रांन्ति कहा है जो सिद्धान्त के विकास में अवरोध है। परन्तु पाई ने इस भ्रम के पीछे ठोस आधार ढूंढने का भी प्रयत्न किया है। एस0 पी0 वर्मा के विचार से लूसियन पाई ने ही सर्वप्रथम राजनीतिक विकास संप्रत्यय पर गहराई से विचार किया है तथा राजनीतिक विकास के समस्त साहित्य पर उनकी अमिट छाप है।

लूसियन डब्ल्यू पाई ने अपने ग्रन्थ Aspect of Political Development में व्यापक रूप से राजनीतिक विकास की संकल्पना का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। पाई ने अपने विचारों का वर्णन करने से पूर्व विभिन्न विद्वानों के विचारों को दस शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया है जो इस प्रकार है :-

आर्थिक विकास की राजनीतिक पूर्वपेक्षाओं के रूप में राजनीतिक विकास

वेशन, बुशमैन इत्यादि विद्वानों ने इस बात पर बल दिया है कि आर्थिक विकास को राजनीतिक विकास को पूर्व अपेक्षा के रूप में देखा जा सकता है। राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियॉ, आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण निभा सकती है। पाई के मतानुसार यह एक नकारात्मक दृष्टिकोण है क्योंकि प्रत्येक देश की राजनीतिक एवं आर्थिक समस्यायें अलग-अलग होती हैं। अतएव दोनों के विकास को मिलाना तर्कसंगत नहीं है।

औद्योगिक समाजों के लिए विशिष्ट राजनीति के रूप में राजनीतिक विकास

यह धारणा आर्थिक हितों से घनिष्ट सम्बन्ध रखती है। रोस्टोव राजनीतिक विकास को औद्योगिक विकास से सम्बन्धित मानता है। यह धारणा भी राजनीतिक विकास एवं आर्थिक विकास को सम्मिलित रूप से देखती है, अतएव लूसियन पाई इसे स्वीकार नहीं करते।

राजनीतिक आधुनीकरण के रूप में राजनीतिक विकास

अनेक विद्वान जैसे कोलमैन डायस एवं लिपसेट पश्चिम व्यवहार एवं व्यवस्था को आधुनिक मानते हैं तथा उसे ही राजनितिक विकास का मानदण्ड मानते हैं। पाई के मत से पश्चिमी एवं आधुनिक शब्दों में भेद का कुछ अतिरिक्त आधार होना अनिवार्य है।

राजनीतिक विकास राष्ट्र राज्य के विकास के रूप में

सिलवर्ट, शिल्स तथा विलियम मैम्फोर्ड आदि विद्वानों ने रानीतिक विकास को राष्ट्र निर्माण से जोड़ने का प्रयास किया है। आधुनिक राष्ट्र राज्य के राजनीतिक जीवन का संगठन तथा राजनीतिक विकास के लिए अपरिहार्य समझे जाते हैं। इसके विपरीत पाई का यह मानना है कि राष्ट्रवाद राष्ट्रीय विकास को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक तो है परन्तु यह एक अनिवार्य शर्त नहीं है। राजनीतिक विकास को राष्ट्र निर्माण के अनुरूप समझा जाता है। परन्तु मात्र राष्ट्रवाद राजनीतिक विकास के लिए पर्याप्त नहीं है।

प्रशासनिक एवं कानूनी विकास के रूप में राजनीतिक विकास

पारसन्स तथा बेबर ने राजनीतिक विकास को प्रशासनिक एवं कानूनी विकास से सम्बद्ध करने का प्रयास किया है। उनकी राय के अनुसार आधुनिक राज्य के विकास के लिए कुशल प्रशासनिक व्यवस्था तथा प्रभावशाली नौकरशाही आवश्यक है। यहॉ पाई का मानना है कि प्रशासनिक व्यवस्था अधिक चुस्त करने से राजनीतिक विकास का मार्ग अवरूद्ध हो सकता है। प्रशासनिक व्यवस्था के साथ-साथ नागरिक प्रशिक्षण एवं सहभागिता भी राजनीतिक विकास के लिए अनिवार्य है।

1.बहुसंख्यक सहभागिता के रूप में राजनीतिक विकास

यदि जनता राजनीतिक कार्य में अधिक से अधिक भाग ले तो राजनीतिक विकास सम्भव है। पश्चिमी देशों के विकास में इस तत्व का विशिष्ट योगदान है। इस दृष्टि से नये राष्ट्रों के विकास में राजनीतिक चेतना, राजनीतिक सहभागिता तथा मताधिकार के विस्तार इत्यादि को आवश्यक समझा जाता है। लूसियन डब्ल्यू पाई जन सहभागिता से इंकार नहीं करते परन्तु इससे भ्रष्ट्राचार पनपने का खतरा जिससे समाज की शक्तियों को नष्ट हो जाने का भय है।

2.लोकतंत्र के निर्माण के रूप में राजनीतिक विकास

लापारोम्बारा तथा रोनाल्ड पेनोक ने लोकतंत्र के निर्माण को ही राजनीतिक विकास का मार्ग माना है। लोकातांत्रिक संस्थाओं एवं व्यवहारों की स्थापना से ही राजनीतिक विकास सम्भव है। लूसियन डब्ल्यू पाई ने इससे असहमति प्रकट की है। उनके अनुसार लोकतंत्र एक मूल्य परक संप्रत्यय है जबकि विकास मूल्य से स्वतंत्र संप्रत्यय हे अतएव दोनों को परस्पर जोड़ना अनुचित है क्योंकि ऐसी स्थिति में विकास को पश्चिमी एवं अमेरिकी मूल्यों के रूप में देखा जायेगा जाक किसी भी दृष्टि से औचित्यपूर्ण नहीं होगा।

3.स्थायित्व एवं व्यवस्थित परिवर्तन के रूप में राजनीतिक विकास

अनेक विद्वानों के अनुसार विकास सामाजिक एवं आर्थिक विकास से सम्बन्धित होता है, अतएव उन्होंने स्थायित्व के होने पर ही उद्देश्यपूर्ण एवं व्यवस्थित परिवर्तन सम्भव है। पाई का मानना है कि व्यवस्था की मात्रा एवं उद्देश्य की अनिश्चितता के कारण यह दृष्टिकोण व्यवहारिक दृष्टि से वांछनीय नहीं है।

4.परियोजना एवं शान्ति के रूप में राजनीतिक विकास

कोलमैन, आमंड, परसन्स आदि विद्वानों ने राजनीतिक विकास को व्यवस्था की निर्बाध शान्ति की मात्रा एवं स्तर पर भी परियोजना की क्षमता के रूप में विचार किया है। पाई का मानना है कि इस प्रकार की व्याख्या को लोकतांत्रिक व्यवस्था पर ही लागू किया जा सकता है।

5.सामाजिक परिवर्तन की बहुस्तरीय प्रक्रिया के रूप में राजनीतिक विकास

इस दृष्टिकोण के अनुसार राजनीतिक विकास, सामाजिक, आर्थिक, परिवर्तन की प्रक्रिया का ही घटक है जो अन्य प्रकार के विकासों से सम्बन्धित है। इस दृष्टिकोण से सभी प्रकार के विकास यथा सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक को परस्पर सम्बन्धित माना जाता है । पाई इस आधार पर इस विचार की प्रशंसा करता है कि यहॉ विकास के रूप में ये एक दूसरे से सम्बद्ध है, विकास कार्य आधुनीकीकरण ही है।

5.4 राजनीतिक विकास के लक्षण

राजनीतिक विकास के उपर्युक्त विभिन्न अर्थों से यह स्पष्ट है कि इस अवधारणा की व्याख्या के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद एवं भ्रम है तथा इस भ्रम के पीछे भी कुछ ठोस सहमति का आधार है। पाई ने राजनीतिक विकास संप्रत्यय के तीन प्रमुख लक्षण बताये हैं । इन्हें वह समानता, क्षमता तथा विभिन्नीकरण कहता है। पाई की इस संकल्पना कों 'विकास संलक्षण' का नाम भी दिया जाता है। पाई ने अपने विश्लेषण को इस प्रकार प्रस्तुत किया है :-

1.समानता

इसका अर्थ राजनीतिक गतिविधियों में जन-सहभगिता तथा जन-अन्तर्ग्रस्तता है । राजनीतिक विकास इस बात की अपेक्षा करता है कि लोग राजनीतिक क्रिया-कलापों में भाग लें और इन गतिविधियों से सम्बन्ध हो। यह भागीदारी लोकतांत्रिक अथवा सर्वाधिकारवादी हो सकती है परन्तु लोग सक्रिय नागरिक बन जाये तथा एक लोकप्रिय शासन का आधार प्रस्तुत किया जा सके । समानता का दूसरा अर्थ कानूनों का सार्वदेशिक स्वरूप होना आवश्यक है जो राज्य के सभी सदस्यों

पर समान रूप से लागू होता है। समानता का तीसरा अर्थ यह है कि राज्य के विभिन्न पदों के लिए भर्ती करते समय सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति करते समय योग्यता तथा कार्य सम्पादन का मापदण्ड लागू होना चाहिये। इन तीन मापदण्डों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी राजनीतिक व्यवस्था में समानता का सिद्धान्त किसी सीमा तक लागू किया जा सकता है।

क्षमता

इससे राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता का बोध होता है। यह राजनीतिक व्यवस्था के निर्गत कार्यों से सम्बन्धित है तथा यह एक सीमा तक समाज एवं अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर सकती है। इसका सम्बन्ध सरकारी निष्पादन तथा उन परिस्थितियों से है जो इस प्रकार के निष्पादन को प्रभावित करते हैं। इसका अर्थ सार्वजनिक नीति के क्रियान्वयन में प्रभावपूर्ण तथा कुशलता से भी हैं। इससे प्रशासन में विवेकपूर्णता नीतियों कि विवेकी अभिमुखताओं का भी बोध होता है।

विभेदीकरण तथा विशिष्टीकरण

इससे राज्य की संरचनाओं में विभेदीकरण एवं विशिष्टिकरण के तत्वों का बोध होता है। विभेदीकरण का तात्पर्य है समाज तथा राज्य के विभिन्न अंगों, पदों एवं विभागों का स्पष्ट होना तथा उनके कार्य निश्चित करना। व्यवस्था के विभिन्न राजनीतिक कार्यों की सुस्पष्टता होनी चाहिए जिससे विभिन्न अंगों की जटिल प्रक्रियाओं का एकीकरण हो सके तथा व्यवस्था का विघटन न हो।

पाई ने आगे कहा है कि राजनीतिक विकास के ये तीनों तत्व आसानी से एक दूसरे के साथ समाविष्ट हो या नहीं हो सकते तथा इसलिए समानता की मांग क्षमाताओं की अपेक्षा तथा अधिकरण विभेदीकरण की प्रक्रिया के लिए अधिक तनाव हो अथवा नहीं हो सकता। अधिक समानता के लिए दबाव व्यवस्था की क्षमता के लिए एक चुनौती हो सकता है तथा गुणात्मकता तथा विशेष ज्ञान पर अधिक बल देकर विभेदीकरण समानता को कम कर सकता है।

विकास की प्रक्रिया स्पष्टत: एकरेखीय नहीं है, न ही तीव्र एवं विशिष्ट अवस्थायें इस पर लागू होती हैं बल्कि ऐसी समस्यायें इसका विनिमय करती हैं जो अलग-अलग अथवा एक साथ पैदा हो सकती हैं। वास्तविकता यह है कि अन्तिम विश्लेषण में राजनीतिक विकास की समस्यायें राजनीतिक संस्कृति, प्रभावीकरण, संरचनाओं तथा सामान्य राजनीतिक प्रक्रिया के सम्बन्धों के मध्य घूमती रहती हैं। अल्फ्रेड डायमेन्ट के शब्दों में राजनीतिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक राजनीतिक व्यवस्था के नये प्रकार के लक्ष्यों को निरन्तर सफल रूप से प्राप्त करने की क्षमता बनी रहती है।

आमण्ड के अनुसार, राजनीतिक विकास राजनीतिक संरचनाओं की अभिवृद्धि विभिन्नीकरण एवं विशेषीकरण तथा राजनीतिक संस्कृति का बढ़ा हुआ लौकिकीकरण है।

सी0 एस0 डाक ने विकास के दो अर्थ बतलाये हैं :-

1.केवल परिवर्तन के अर्थ में

2.किसी निश्चित लक्ष्य की ओर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में।

लूसियन डब्लयू पाई के विचारों को आगे बढ़ाते हुए ल्योनार्ड वाइन्डर ने राजनीतिक विकास की विस्तार से व्यख्या प्रस्तुत की है। अमेरिका की तुलनात्मक राजनीतिक समिति द्वारा इसकी सराहना की गई जिसके तत्वावधान में एक और महत्वपूर्ण रचना प्रकाशित हुई जिसमें बाइन्डर ने निम्नलिखित निहितार्थ बताये हैं :-

1.धार्मिक से जातीय एवं संकीर्ण से सामाजिक पहचान में परिवर्तन।

2.वैधता में इन्द्रियातीत से अतिर्भूत स्त्रोतों में परिवर्तन।

3.राजनीतिक सहभागिता में सम्भ्रान्त से जन तथा परिवार से समूह में परिवर्तन।

4.क्षमता एवं विशेषधिकार से वितरण का उपलब्धि में परिवर्तन।

5.सामाजिक संरचना तथा देश के दूरस्थ क्षेत्रों में प्रशासनिक व वैध अन्तर्वेषण की मात्रा में परिवर्तन।

नि:संन्देह राजनीतिक विकास की महत्वपूर्ण कसौटी कार्य कुशलता है । वास्तव में राजनीतिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे एक राजनीतिक व्यवस्था एवं प्रभावी ढंग से व्यवस्था के अर्न्तगत अथवा पर्यावरण से उत्पन्न तनावों, चुनौतियों एवं मांगों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है।

5.5 राजनीतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

परम्परागत राजनीतिक व्यवस्थाओं कि आधुनिक व्यवस्था में रूपान्तरण की प्रक्रिया विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं में भिन्न-भिन्न होती है । किसी राजनीतिक व्यवस्था में विकास तीव्र मतभेदों तथा हिंसक घटनाओं के माध्यम से होता है । कोई समाज बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने आपको सरलता से ढाल लेता है जबकि किसी समाज में बदलती हुई परिस्थितियॉ स्वयं समाज के अस्तित्व के लिए चुनौती प्रस्तुत करती हैं।

किसी समाज के राजनीतिक विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नांकित हैं :-

1.औद्योगिकरण (2) शहरीकरण (3) शिक्षा का प्रसार (4) जनसंचार प्रसारण के साधनों में अभिवृद्धि (5) धर्मनिरपेक्षता का विस्तार (6) आधुनिक नौकरशाही का विस्तार (7) राष्ट्रवाद की भावना (8) राजनैतिक दलों का स्वस्थ विकास (9) जनसहभागिता का

विस्तार (10) लक्ष्यों संसाधनों तथा स्रोत्रों के सम्बन्ध में राजव्यवस्था की क्षमता में अिभवृद्धि।

किसी भी राजनीतिक समाज में विकास प्रक्रिया विभिन्न चरों से प्रभावित होती है। इन विभिन्न चरों को छ: भागों में विभक्त किया जा सकता है।

अवस्था परिवर्तन -इससे राजनीतिक विकास का पारम्परिक संक्रमणकालीन तथा आधुनिक अवस्था का अभिज्ञान होता है। संक्रमणकालीन तथा आधुनिक अवस्थाओं की राजनीतिक विकास की प्रक्रिया तथा इन अवस्थाओं में राजनीतिक विकास की प्रकृति का निर्माण पारम्परिक समाज एवं राजनीतिक अवस्था की प्रकृति से प्रभावित होता है।

तत्व -राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं तथा परिणामों में सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक तत्वों का क्या प्रभाव होता है इस दृष्टि से भी राजनीतिक विकास की व्यवस्था की जा सकती है। उदाहरण के लिए साम्यवादी सिद्धान्त में आर्थिक तत्वों पर बल दिया जाता है तो कुछ गैरमार्क्सवादी दृष्टिकोणों में आर्थिक विकास के अन्य पहलुओं पर बल दिया जाता है।

पर्यावरण -किसी समाज का राजनीतिक विकास उसके बाहरी तथा आन्तरिक पर्यावरण से प्रभावित होता है। पर्यावरण राजनीतिक विकास की रीति तथा प्रक्रिया का नियमन करता है।

समय मापन-समय सीमा का भी राजनीतिक विकास से गहरा सम्बन्ध है, उदाहरणार्थ विकसित राज्यों की अपेक्षा विकसित राज्यों में औद्योगिकरण की प्रक्रिया में पूंजीवादी वर्ग कमजोर होता है। इसी प्रकार सामाजिक गतिशीलता की स्थिति में सामाजिक तनाव के अधिक होने की सम्भावना रहती है।

अनुक्रम-जिस क्रम में राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रक्रियाएं होती हैं उससे राजनीतिक विकास गम्भीरतापूर्वक प्रभावित होता है। एक राजनीतिक व्यवस्था में अहिंसक स्थायी लोकतांत्रिक रूप में विकसित होने की अधिक सम्भावना होती है।

दर -सामाजिक और सांस्कृतिक तथा राजनीतिक अवयवों में परिवर्तन की दरों का राजनीतिक संस्थाओं, प्रक्रियाओं तथा सहभागिता पर प्रभाव पड़ता है। सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन की तीव्र गति में, मन्द गति की अपेक्षा सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन की तीव्र गति में, मन्द गति की अपेक्षा सामाजिक संघर्ष तथा राजनीतिक उपद्रव अधिक होते हैं।

5.6 राजनीतिक विकास की विशेषताएं

डोड के अनुसार राजनीतिक विकास की चार प्रमुख विशेषताएँ होती हैं :-

समानता के प्रति ऐसी सामान्य भावना जिससे राजनीति में भाग लेने तथा सरकारी पदों के लिए प्रतियोगिता करने के सामान अवसरों की अनुमति रहे।

राजनीतिक व्यवस्था में नीतियों के निर्धारण तथा उनको क्रियान्वित करने क्षमता हो।

राजनीतिक कार्यों का ऐसा विभिन्नीकरण तथा विशेषीकरण हो जो उनकी समग्र एकता की कीमत पर न हो।

राजनीतिक प्रेक्रियाओं का ऐसा लौकिकीकरण हो जिससे राजनीति को धार्मिक प्रभावों एवं उद्देश्यों से पृथक रखा जा सके।

आमण्ड तथा पावेल ने राजनीतिक विकास की तीन विशेषताओं को प्रमुख माना है :-

1.भूमिका विभिन्नीकरण -पाई के विपरीत आमण्ड एवं पावेल का मानना है कि राजनीतिक व्यवस्थाओं में संरचनाओं का विभिन्नीकरण इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि भूमिकाओं का विभिन्नीकरण। उदाहरणके लिए राजनीतिक व्यवस्था में कार्यपालिका, कार्यपालिका की ही भूमिका का निष्पादन करे तथा व्यवस्थापिका या न्यायपालिका की भूमिका का निष्पादन नहीं करे तो इसको भूमिका का निष्पादन नहीं करे तो इसको भूमिका विभिन्नीकरण माना जायेगा।

2.उप व्यवस्था स्वायतत्ता -आमण्ड राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता के लिए उप व्यवस्था की स्वायत्ता शब्द का प्रयोग करते हैं। आमण्ड एवं पावेल मतानुसार भूमिका विभिन्नीकरण तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक राजनीतिक व्यवस्था की उप व्यवस्थाओं को स्वायत्ता न प्राप्त हो सकता जब तक राजनीतिक व्यवस्था की उप व्यवस्थाओं को स्वायत्ता न प्राप्त हो। उप व्यवस्था की स्वायत्ता शक्ति के एक स्थान पर विकेन्द्रीकरण का संकेत है। इसका परिणाम यह होता है कि मांगों की रूपान्तरण प्रक्रिया तथा निर्माण की प्रक्रिया अनेक स्तरों पर पाई जाती है।

3.लौकिकीकरण -आमण्ड तथा पावेल ने लौकिकीकरण को परम्परागत मूल्यों से तथा धर्मनिरपेक्षता को वैधानिक स्तर से जोड़ा है। किसी समाज में लौकिकीकरण का सम्बन्ध लोगों की अभिवृत्तियों में परिवर्तन आने से है।

5.7 राजनीतिक विकास के चरण

राजनीतिक विकास का अध्ययन करते समय इस बात का ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि राजनीतिक व्यवस्था के विकास में किन कारणों का योगदान होता है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के विकास में किन कारकों का योगदान होता है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को विकास करते समय अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो उसके विभिन्न चरणों से सम्बद्ध होती है । आमण्ड तथा पावेल ने राजनीतिक विकास को चार चरणों से सम्बद्ध होती है। आमण्ड तथा पावेल ने राजनीतिक विकास को चार चरणों में सम्बद्ध किया है।

(1) राज्य निर्माण का स्तर अर्थात् केन्द्रिय सत्ता का निर्माण तथा विभिन्न समूहों का केन्द्रीय सत्ता के अधिकार क्षेत्र में एकीकरण होना।

(2) राष्ट्र निर्माण का स्तर अर्थात् छोटे-छोटे समूहों ग्रामों एवं नगरों से निष्ठा तथा प्रतिबद्धता को राष्ट्र भक्ति एवं निष्ठा से सम्बद्ध करना।

(3) सहभागिता का स्तर अर्थात् व्यक्तिएवं समूहों का राजनीतिक प्रेक्रिया में व्यापक रूप से भागीदार होना।

(4) वितरण का स्तर अर्थात् सामाजिक लाभों के लिए धर्म, जाति, गुट, रंग आदि के भेद-भाव के बिना राष्ट्रीय आय या सम्पत्ति का वितरण किया जाना।

आमण्ड एवं पावेल अपने राजनीतिक लाभों की दशा में उन पॉच कारकों की ओर करते हैं जिनका विश्लेषण में अवश्य ध्यान रखना चाहिए :-

1.राजनीतिक व्यवस्था का सामना करने वाली समस्याओं की प्रकृति क्या है ?

2.राजनीतिक व्यवस्था के पास अपनी मांगों को पूर्ण करने के लिए कहॉ तक किस सीमा तक संसाधन उपलब्ध हैं ?

3.वह राजनीतिक व्यवस्था किस सीमा तक विदेशी सामाजिक व्यवस्थाओं से प्रभावित होती है ?

4.उस राजनीतिक व्यवस्था के प्रकार्यात्मक प्रतिमान क्या हैं ?

5.राजनीतिक दृष्टि से सम्भ्रान्त व्यक्तियों अथवा अभिजनों की भूमिका कहॉ तक प्रभावशाली है ?

6.हंटिग्टन के अनुसार राजनीतिक के तीन चरण या अवस्थायें मानी जाती हैं।

7.सत्ता कि बुद्धि संगततता का स्तर अर्थात् समाज के विभिन्न समूहों एवं भागों को केन्द्रिय सत्ता का निर्माण।

8.नये राजनीतिक कार्यो का विभिन्नीकरण तथा उनके लिए विशिष्ट संरचनाओं का विकास।

9.सहभागिता का बढ़ा हुआ स्तर अर्थात् समाज के विभिन्न समूहों एवं भागों को केन्द्रिय सत्ता में सहभागी बनाना।

हैटिंग्टन का मानना है कि विकास की यह प्रकिया तभी सम्भव है जब ये तीनों क्रिया स्तर क्रमिक रूप से उपलब्ध किये जाएँ अर्थात् प्रथम के बाद दूसरा तथा फिर तीसरा स्तर का एक दूसरे के ऊपर या नीचे साथ-साथ प्रचालन घातक हो सकता है तथा उससे राजनीतिक विकास नहीं बल्कि राजनीतिक पतन आ जाता है। आरगेन्सकी ने अपनी पुस्तक "Stages of Political Development" में राजनीतिक विकास को राष्ट्र के मानवीय एवं भौतिक स्रोत्रों का उपयोग करने में सरकार की बढ़ती हुई कार्य दक्षता के आधार पर समझने का प्रयत्न किया है। राजनीतिक विकास के हर स्तर पर अपनी विशिष्टतायें होती हैं जो अन्य स्तर पर अधिक से अधिक आंशिक रूप में ही पाई जा सकती है। राजनीतिक विकास का एक स्तर पूर्ण रूप से प्राप्त होने के उपरान्त उसके आगे के स्तर पर जाना सम्भव है।

आरगेन्सकी ने राजनीतिक विकास के चार स्तर माने हैं :-

1.आदिम एकीकरण का राजनीतिक -यह राजनीतिक विकास का प्रथम चरण है। इस अवस्था में राष्ट्रीय सरकारें अपनी जनसंख्या पर प्रभावशाली राजनीतिक नियंत्रण स्थापित करती हैं। वस्तुत: यह चरण राज्य की सुस्थिरता का चरण है।

2.औद्योगिकरण की राजनीति -राजनीति विकास का यह चरण औद्योगीकरण की प्रक्रियाओं तथा सामाजिक राजनीतिक दृष्टि से ऐसे परिवर्तनों से सम्बन्धित है जिसमें नये वर्ग निर्मित होते हैं। सहभागिता का विस्तार तथा अभिवृद्धि राष्ट्रीय एकीकरण होता है। इसके तीन माडल हैं। बुर्जुआ माडेल, स्टालिन का माडेल तथा समन्वयी माडेल।

3.राष्ट्रीय लोककल्याण की राजनीति -यह विकास का अगला चरण है इसमें जनता को शोषण से मुक्त रखा जाता है तथा पूंजी साधनों को व्यापक स्तर पर जनता में वितररित कर दिया जाता है।

4.समृद्धि की राजनीति -यह राजनीतिक स्तर अमेरिकी राजनीति की ओर इशारा करता है। यह स्तर वैज्ञानिक तकनीकों तथा अत्यधिक परिष्कृत उपकरणों से अत्यधिक उत्पादकता है जिसमें प्रत्येक के लिए वस्तुओं की सामान्य उपलब्धि रहती है। रह राजनीतिक विकास की चरम एवं जटिल अवस्था है।

राजनीतिक आधुनिकीकरण का अध्ययन करने वाले राजनीतिक शास्त्रियों ने राजनीतिक विकास को एक निर्भर परिवर्त्य माना है तथा इसीलिए औद्योगीकरण नगरीय विस्तार, शिक्षा एवं साक्षरता का फैलाव, जनसंचार साधनों का विकास, लौकिक संस्कृति के विस्तार को अध्ययन का आधार माना है। इस हेतु प्रत्ययी माडेल प्रस्तुत किये जाते हैं एक को निरन्तरता वाला माडेल कहा जाता है तथा दूसरे को विभिन्न चरणों पर आधारित रहने वाला माडेल। प्रथम माडेल विकासात्मक प्रक्रिया को पृथक परिवत्वों के रूप में देखता है जैसे जनसंख्या में शिक्षित व्यक्तियों का प्रतिशत, चुनाव में सहभागिता का स्तर इत्यादि। परन्तु यह माडेल अध्ययन के लिए अधिक उपयोगी एवं व्यवहारिक नहीं सिद्ध हुआ है क्योंकि इसमें विस्तृत सिद्धान्त का अभाव है। इस दृष्टि से दूसरा माडेल जो तीन चरणों पर आधारित है अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके तीन चरण इस प्रकार हैं :-

1.परम्परागत चरण जिसकी मुख्य विशेषता ग्रामीण समाज एवं कृषि अर्थव्यवस्था है।

2संक्रमणकालीन चरण जिसमें मिश्रित अर्थव्यवस्था एवं राजनीतिक संस्कृति पायी जाती है। क्योंकि इसमें यद्यपि औद्योगीकरण का प्रारम्भिक स्तर पद्धति में प्रवेश करता है परन्तु ग्रामीण समाज एवं संस्कृति की प्रधानता बनी रहती है।

3.आधुनिक चरण जो राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से एक विकसित चरण है।

5.8 राजनीतिक विकास के संकट एवं चुनौतियां

लूसियन डब्लू पाई ने राजनीतिक विकास के क्रम में छ: प्रकार के संकटों का भी उल्लेख किया है जो विभिन्न क्रम में उपस्थित होते हैं :-

1.तादात्म्य का संकट -लोगों को अपनी राजनीतिक व्यवस्था से तादात्म्य होना चाहिए। नवीन राज्य के लोगों में राष्ट्रीय प्रदेश के साथ आत्मीयता जोड़ना तथा सभी व्यक्तियों की पहचान को देश के प्रादेशिक क्षेत्र के साथ अभिन्न बनाना एक कठिन कार्य है – अधिकांश नवीन राष्ट्रों में जाति, भाषा कबीला समूह की भावना अत्यधिक प्रबल रहती है जो तादाम्य का संकट उत्पन्न करती है। तादाम्य के व्यवहारों की समस्या का समाधान अनिवार्य है।

2.औचित्यपूर्णता का संकट -इसका आशय सत्ता के औचित्य तथा सरकारके उचित दायित्वों की समस्याओं के समाधान से हे। अधिकांश नवीन राष्ट्रों का वैधता का संकट स्पष्ट रूप से संवैधानिक समस्या है। केन्द्र एवं राज्यों का संकट स्पष्ट रूप से संवैधानिक समस्या है। केन्द्र एवं राज्यों का क्षेत्राधिकार राजनीतिक जीवन में विभागीय तंत्र तथा सैन्य बल की सीमायें संवैधानिक समस्याओं के प्रमुख उदाहरण हैं। औचित्यपूर्णता का संकट पिछड़े समाज में अधिक पाया जाता है जहॉ धार्मिक मूल्यों की जड़ें अधिक गहरी है तथा लोग अभी भी ऐसे विचारों से जुड़े हुए हैं कि राजनीतिक संरचना उनके धार्मिक विश्वासों के अनुकूल होनी चाहिए।

3.प्रवेशन संकट -नवीन राष्ट्रों में प्रशासन की नाजुक समस्यायें प्रवेशन संकट की जन्मदाता है। इनक अर्न्तगत सरकार का समाज की निचले तह तक पहुॅचने तथा उनकी उसकी मूल नीतियों का प्रभावित करने की समस्या अर्न्तनिहित हैं। संक्रमणकालीन समाज में सरकार प्रभावी ढ़ग से परम्परागत नियंत्रण के प्रतिमानों को भंग करने में सफल होती है। अतएव महत्वपूर्ण विकास सम्बन्धी नीतियों को कार्यान्वित करने के लिए सरकार को ग्राम स्तर एक आवश्य पहुॅचने में सक्षम होना चाहिए। यदि सरकार प्रभावी ढंग से परम्परागत नियंत्रण के प्रतिमानों को भंग करने में सफल होती है तो सरकारी नीतियों को व्यापक ढंग से प्रभावित करने की मांग भी उठती है जिससे एक अन्य प्रकार के संकट का जन्म होता है।

4.सहभागिता का संकट -राजनीतिक विकास में राजनीतिक सहभागिता में अभिवृद्धि अनिवार्य है। सहभागिता के विस्तार की दर में अनिश्चितता तथा विद्यमान संस्थानों में नये लोगों को शामिल किये जाने से तनाव की स्थिति पैदा होती है तथा सहभागिता संकट उत्पन्न हो जाता है। राजनीतिक सहभागिता के लिए सबसे बड़ी चुनौती नवीन हितों एवं नवीन मूल्यों के उदय से होती है जिनका समन्वय राजनीतिक संरचनाओं, राजनीतिक दलों एवं विभिन्न हित समहों की कार्यप्रणाली के साथ होना आवश्यक माना जाता है।

5.एकीकरण संकट-इसका सम्बन्ध उस सीमा से है जहॉ तक समस्त राज्य व्यवस्था संगठन अंतर्क्रियात्मक सम्बन्धों की व्यवस्था के रूप में किया गया है। चूॅकि समाज में विभिन्न समूहों के विभिन्न हित होते हैं, अतएव सरकार को यहॉ एकीकरण की चुनौतीका सामना करना पड़ता है। सर्वप्रथम इसमें सरकार के कार्यालयों एवं अभिकरणों, तत्पश्चात् विभिन्न समूहों एवं हितों द्वारा व्यवस्था पर रखी जाने वाली मांगों तथा अंत में सरकार एवं प्रगतिशील नागरिकों के मध्य सम्बन्धों की स्थापना द्वारा समाधान किया गया है। यदि सरकार इसमें समन्वय नहीं स्थापित कर पाती तो एकीकरण का संकट उत्पन्न हो जाता है।

6.वितरण संकट-विकास प्रक्रिया के अर्न्तगत सरकारी शक्तियों का प्रयोग किस प्रकार से किया जाय जिससे सम्पूर्ण समाज में मूल्यों सेवाओं एवं पदार्थों का वितरण प्रभावित हो, इन प्रश्नों से सम्बन्धित संकटों को वितरण संकट कहते हैं। सरकार से कौन लाभान्वित हो तथा समाज के विभिन्न खण्डों को अधिक लाभान्वित करने के लिए सरकार को क्या करना चाहिए, ये वितरण संकट की समस्यायें हैं।

लूसियन डब्ल्यू पाई का मानना है कि किसी देश में विकास का विशेष प्रतिमान काफी सीमा तक उपर्युक्त संकटों के क्रम तथा उनके समाधान पर निर्भर करता है। इग्लैंड में प्रजातंत्र के विकास के संकटों की उत्पत्ति उपर्युक्त क्रम में हुई थी तथा ये संकट पृथक ढंग से उत्पन्न हुए थे। इसके विपरीत यूरोप के अन्य देशों एशिया तथा अफ्रिका के देशों में विकास अस्त-व्यस्त ढंग से विकास सम्भव हुआ। अधिकांश विकासशील देशों ने सभी संकट एक साथ उत्पन्न हो रहे हैं तथा सरकार को वितरण संकट के समाधान के फलस्वरूप अन्य प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ा रहा है। अत: आवश्यकता इस बात कि है कि राजनीतिक विकास के किसी भी उपयोगी सिद्धान्त को उन समस्याओं का मुकाबला करने की स्थिति में अवश्य होना चाहिए जिन्हें संकट की कोटि के अर्न्तगत रखा जा सकता है।

5.9राजनीतिक विकास के अभिकरण

राजनीतिक विकास के प्रमुख अभिकरण इस प्रकार हैं :-

क्रान्तिकारी राजनीतिक नेता -क्रान्तिकारी नेता किसी संकट की स्थिति में सत्ता में आते हैं तथा उन्हें सत्ता में आने के साथ ही अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। क्रान्तिकारी नेताओं के कुछ विशिष्ट गुणों का होना आवश्यक है और वे अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण देश के राजनीतिक विकास को गति देते हैं। इस दृष्टि से उसे संतुलित एवं मध्यम मार्ग का अनुसरण करना पड़ता है।

राजनीतिक दल -राजनीतिक दल भी विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान करते हैं। राजनैतिक दलों का महत्व लोकतांत्रिक व्यवस्था तथा साम्यवादी व्यवस्था दोनों में ही पाया जाता है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया में राजनीतिक दल मतदान का विस्तार करके राजनीतिक सहभागिता के अवसर प्रदान करते हैं। भारत के राजनीतिक विकास में स्वतंत्रता के पूर्व तथा बाद में कांग्रेस पार्टी का योगदान अत्यन्त उपयोगी रहा है। साम्यवादी व्यवस्था में भी साम्यवादी दल का प्रयोग जनता में साम्यवादी विचारों की प्रतिष्ठा तथा उन्हें साम्यवादी विचारों के अनुरूप संगठित करने के लिए किया जा रहा है।

सेना-जब विशिष्ट वर्ग तथा राजनीतिक दल राजनीतिक विकास को नेतृत्व प्रदान करने में असफल रहते हैं तो विकासशील देशों में सेना समस्त शक्तियों को अपने हाथ में लेकर राजनीतिक विकास की प्रक्रिया में अपना योगदान देती हैं। सेना का उद्देश्य राजनीतिक तंत्र को अधिक कार्यकुशल तथा अधिक सक्षम बनाना होता है। विकासशील देशों के शासन को स्थायित्व प्रदान करने का कार्य सेना करती है। एशिया, अफ्रिका तथा लैटिन अमेरिका के अनेक देशों के राजनीतिक विकास में सेना का योगदान रहा है।

आधुनिक नौकरशाही -आधुनिक नौकरशाही भी राजनीतिक विकास में परिवर्तन की भूमिका अदा करती है। नौकरशाही शासन को स्थिरता प्रदान करती है। परम्परागत समाज को आधुनिक परिवेश में लाने का प्रयत्न करती है तथा सुदृढ़ एवं कुशल नीतियों के माध्यम से राजनीतिक विकास का पथ प्रशस्त करती है। स्वतंत्र भारत के राजनीतिक विकास में नौकरशाही का योगदान अतिमहत्वपूर्ण रहा है।

राष्ट्रभावना -राष्ट्रीयता की भावना के विकास तथा एक राष्ट्रीय राज्य के निर्माण में भी राजनीतिक विकास होता है। जापान के राजनीतिक विकास में यह तत्व सर्वप्रमुख रहा है।

राजनीतिक सहभागिता-राजनीतिक सहभागिता के विस्तार में भी राजनीतिक विकास को बल मिलता है इससे देश की जनता भी राजनीतिक सक्रियता एवं मनोदशा का पता चलता है। पिछले दो दशकों में भारत, पाकिस्तान तथा बांगलादेश में जन सक्रियता के परिणामस्वरूप राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि हुई है जिससे इन तीनों देशों में राजनीतिक विकास तीव्र गति से हुआ है।

5.10 आलोचना

राजनीतिक विकास अवधारणाओं की अनेक आधारों पर आलोचना की जाती है :-

1.सर्वप्रथम यह अवधारणा अपने आप में स्पष्ट नहीं हो पायी है। यही कारण है कि इसका क्षेत्र स्पष्ट नहीं हो सका है। परिणामस्वरूप राजनीतिक विकास का अर्थ स्पष्ट न हो सका है। वह राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक विकास के बिन्दुओं पर ही उलछ गया है। फ्रेड डब्लू रिग्स ने उचित ही कहा है कि न तो विकास न ही राजनीतिक शब्द के अभिप्राय के बारे में कोई सर्वसम्मति राय बन सकी है अतएव यह संकल्पना अपना निहित अर्थ बतलाने में असफल रही है।
2.डेविड एम0 बुड का मानना है कि राजनीतिक विकास का सिद्धान्त निश्चित राजनीतिक प्रतिमान बनाने में असफल रहा है। इस दृष्टि से अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि राजनीतिक विज्ञान के विषय कोअर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञानों के समुद्रों में ढकेल दिया गया है।

प्रो0 एन0 पी0 वर्मा का भी मानना है 'राजनीतिक विकास को आकार प्रदान करने में सामाजिक आर्थिक प्रशासनिक राजनीतिक तथा सांस्कृतिक चरों की संगतता से इनकार नहीं किया जा सकता लेकिन यह निर्धारण करना कठिन है कि किसी विशेष कारण का कितना महत्व है।'

3.राजनीतिक विकास की संकल्पना किसी ऐसे प्रतिमान को प्रस्तुत नहीं करती जिसे एक ही रूप में विश्व के सभी देशों पर लागू किया जा सके। वास्तव में यह संकल्पना साम्यवादी विद्वानों की वर्गहीन समाज की स्थापना के सिद्धान्त से मेल नहीं खाती। अमेरिकी लेखकों ने राजनीतिक विकास में जो विभिन्न विश्लेषण प्रस्तुत किये हैं वे एक दूसरे को आलोचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। डॉ0 एस0 पी0 वर्मा के अनुसार, ''राजनीतिक विकास के सिद्धान्तशास्त्री तीसरे विश्व के देशों की राजनीतिक वास्तविकताओं को समझने में असमर्थ रहे हैं क्योंकि उन्होंने अफ्रो एशियाई क्षेत्रो के गरीब एवं पिछड़े लोगों को शिकागों एवं हारवर्ड विश्वविद्यालयों से समृद्ध चश्मों से देखने का प्रयास किया है। यही कारण है कि आज तक राजनीतिक विकास के बारे में जिन सिद्धान्तों का विकास हुआ है, वे अब ध्वस्त पड़े हैं।''

4.राजनीतिक विकास की धारणा का तालमेल मार्क्सवादी उपागम से सम्भव नहीं प्रतीत होता। मार्क्सवादी सिद्धान्त जिस सर्वहारी वर्ग की तानाशाही का समर्थन करता है उससे एक बन्द समाज एवं एकलवादी व्यवस्था का ही आभास मिलता है ऐसे में इसे राजनीतिक विकास का प्रतीक माना जाय अथवा राजनीतिक ह्रास का इसे स्पष्ट नहीं किया जा सका है।

5.11 सारांश-राजनीतिक विकास के सिद्धान्त के इन गम्भीर दोषों के बावजूद यह सत्य है कि इस उपागम ने तुलनात्मक राजनीतिक तथा अन्य सदृश विज्ञानों की सीमाओं का रेखाकंन किया है तथा राजनीतिशास्त्रियों का ध्यान तीसरे विश्व के विकास और उससे सम्बन्धित समस्याओं कि ओर आकृष्ट किया है। आमण्ड तथा पावेल ने इस उपागम को निम्न दृष्टियों से उपयोगी माना है।

1.इससे राजनीतिक व्यवस्था का विवेचन, तुलना, स्पष्टीकरण तथा उनके बारे में भविष्यवाणी करने का आधार स्थापित करने में सहायता मिलती है।

2.इससे राजनीतिक व्यवस्थाओं का उनके राजनीतिक अतीत और भविष्य के सम्बन्ध में वर्गीकरण करने में सहायता मिलती है।

3.इससे राजनीतिक व्यवस्था के अर्थपूर्ण मानदण्डों के आधार पर तुलना करना सम्भव होता है।

4.राजनीतिक व्यवस्थाओं के बारे में सामान्यीकरण करने में सहायता मिलती है।

5.12 शब्दावली

राजनीतिक विकास का एक मार्गी दृष्टिकोण – इसके अनुसार राज्यों के विकास का केवल एक मार्ग है,

राजनीतिक विकास का बहुमार्गी दृष्टिकोण - इसके अनुसार राजनीतिक विकास बहुआयामी होता है

5.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.14 संदर्भ ग्रंथ

1.Lucian W. Pye (Ed) Communication and Political Development, Princeton, 1963, P. 29

2.Lucian W. Pye : Aspects of Political Development (Boston) little Power 1966) P. 63

3.Lucian W. Pye – P. 48

4.Approaches to Development Politics, Administration and Change, 1966, Alfred Diament, P. 15

5.G. A. Almond and G. B. Powell , Jr Comparative Politics a Development Approach, 1966, P. 25

6.Fre. W. Riggs: The Theory of Political Development In Tames C. Charles with, Contemhoray Political Analysis (New York Macmillan Free Press 1967) P. 318

7.David M. Wood : Comparative Government and Politics P. 506

8.Dr. S. P. Verma : Modern Political Theory (Delhi VPH) P 279 80

9.Dr. S. P. Verma lbid P. 290

5.15 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

4.ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस, डेविड ईस्टन

5.ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ, डेविड ईस्टन

5.16 निबंधात्मक प्रश्न

१.राजनीतिक विकास के विविध पक्षों की विवेचना कीजिये |

इकाई 06 : राजनीतिक आधुनिकीकरण

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण

6.4 कार्ल डायश एवं आमण्ड पावेल के अनुसार राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेंषतायें

6.5 राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख लक्षण

6.6 राजनैतिक आधुनिकीकरण डेविड ऐप्टर का दृष्टिकोण

6.7 राजनीतिक आधुनिकीकरण के अभिकरण

6.8 राजनैतिक विकास एवं राजनैतिक आधुनिकीकरण में अन्तर

6.9 सारांश

6.10 शब्दावली

6.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.12 संदर्भ ग्रंथ

6.13 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

6.14 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना:

आधुनिकीकरण विश्व के नये उदित राष्ट्रों तथा विकासशील समाजों की उस परिवर्तन प्रक्रिया का नाम है जो उन्हें आधुनिक मूल्यों, मान्यताओं एवं विश्वासों से जोड़ती है। क्लाउड वेल्स के मतानुसार इसमें संसाधनों का विवेकपूर्ण रूप से उपयोग होता है तथा इसका उद्देश्य एक आधुनिक समाज की स्थापना करना होता है। हंटिगटन इसे मानव चिंतन तथा गतिविधि के समस्त क्षेत्रों में परिवर्तन लाने वाली बहुमुखी प्रक्रिया मानता है। बेन्जामिन स्वार्टज की दृष्टि में ''विभिन्न मानवीय प्रयोजनों की सिद्धि हेतु मानव की शक्ति सामर्थ्य एवं क्षमता के व्यवस्थित तथा निरंतर मुक्ति युक्त कार्यान्वयन के द्वारा मानव के भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण को नियंत्रित करने का प्रयास ही आधुनिकीकरण है।''

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप निम्नलिखित विषयों में जानने में सक्षम होंगे

1.राजनीतिक आधुनिकीकरण

2. कार्ल डायश एवं आमण्ड पावेल के अनुसार राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेंषतायें

3. राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख लक्षण

4. राजनैतिक आधुनिकीकरण डेविड ऐप्टर का दृष्टिकोण

5. राजनीतिक आधुनिकीकरण के अभिकरण

6. राजनैतिक विकास एवं राजनैतिक आधुनिकीकरण में अन्तर

6.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण

डेविड ऐप्टर ने अपनी पुस्तक "दि पालिटिक्स आफ मार्डनाइजेशन" में आधुनिकीकरण को चयन करने की योग्यता एवं अनवेषण तथा प्रश्नात्मक धारणाओं से जोड़ा है साइरल ब्लैक ने भी आधुनिकीकरण का प्रमुख तत्व प्राकृतिक शक्तियों पर व्यक्ति के तीव्र गति से बढ़ते हुए नियंत्रण को माना है। विलियम फीडलैंड की दृष्टि मे यह समाज की वह योग्यता है एवं क्षमता है जो उसे परिवर्तन की आवश्यकता के प्रति जागरूक बनाती है। इसके अर्न्तगत ऐसी अनेक गतिविधियाँ है जिन्हें आधुनिकीकरण की विशेषताओं के रूप में देखा जा सकता है।

(1) पर्यावरण एवं प्रकृति पर बढ़ता हुआ नियंत्रण

(2) प्राकृतिक एवं भौतिक साधनों का अधिकतम उपयोग

(3) औद्योगीकरण

(4) नगरीकरण

(5) व्यापक साक्षरता

(6) बढ़ती हुई राष्ट्रीयता एवं व्यक्तिगत आय

(7) शासन के कार्यों में बढ़ती हुई सहभागिता

(8) जनसंचार की तकनीकी तथा साधनों का विकास एवं विस्तार

(9) सामाजिक गतिशीलता

(10) राष्ट्रीय एकता के प्रति निष्ठा

(11) समानता के सिद्धान्त के प्रति आस्था में वृद्धि।

आधुनिकीकरण का स्वरूप एकरस नहीं होता उसके अनेक पक्ष, क्षेत्र स्मर या रूप होते हैं। आधुनिकीकरण का अवलोकन निम्न स्तर पर किया जा सकता है:-

(1) मनोवैज्ञानिक स्तर

इस स्तर पर व्यक्ति के मूल्यों, अभिवृत्तियों प्रत्याशाओं, आकांक्षाओं आदि में परिवर्तन आने लगता है।

(2) राजनैतिक स्तर

इस स्तर में लोगों में आधुनिकमूल्यों, मान्यताओं तथा अभिवृत्तियों के प्रति झुकाव बढ़ता है।

(3) बौद्धिक स्तर

इस स्थिति में व्यक्ति का अपने पर्यावरण के विषय में ज्ञान बढ़ जाता है। उसकी रूचि, शिक्षा, संगठन, सहयोग, विचार विनियम आदि की ओर बढ़ने लगती है।

(4) आर्थिक स्तर

इसमें आर्थिक गतिविधियों का विस्तार हो जाता है तथा समाज में व्यापारिक एवं औद्योगिक गतिविधियां बढ़ने लगती हैं।

(5) सामाजिक स्तर

इस स्तर पर व्यक्तिका निष्ठा, परिवार, जन-जाति वर्ग या ग्राम के प्रति न रहकर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर परिलक्षित होने लगती है।

(6) जन सांख्यकीय स्तर

इस स्तर पर शहरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है लोग भौगोलिक दृष्टि से गतिशील हो जाते हैं तथा व्यक्तियों के स्वास्थ्य, आयु, व्यवसाय के प्रकार आदि में परिवर्तन देखा जा सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से आइजन्रटेड ने अपनी पुस्तक ''मार्डनाइजेशन प्रोटेस्ट एण्ड चेंज'' में बतलाया है कि पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका में सत्रहवीं से उन्नीशवीं शताब्दी तक होने वाले सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं में हुए परिवर्तन की प्रक्रिया को आइजनस्टेड के अनुसार आधुनिकीकरण कहा जाता है। इनके अनुसार राजनीतकि आधुनिकारण के लिए निम्न तीन बातें महत्वपूर्ण हैं:-

(1) राजनैतिक व्यक्ति कार्यों एवं संस्थाओं में उच्च मात्रा का विभिन्नीकरण तथा केन्द्रीयकृत तथा एकीकृत शासन व्यवस्था का विकास।

(2) केन्द्रीय प्रशासनिक एवं राजनीतिक संगठनों की गतिविधियों का विस्तार तथा उनकी समस्त सामाजिक क्षेत्रों में क्रमिक व्यापकता।

(3) समाज की अन्तर्निहित शक्ति का अधिक से अधिक समूहों तथा वयस्क नागरिकों तक विस्तार होना।

6.4 कार्ल डायश एवं आमण्ड पावेल के अनुसार राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेंषतायें इस प्रकार हैं:-

(1) राज्य की लौकिक राजनीतिक सत्ता की वृद्धि तथा शक्ति का बढ़ता हुआ केन्द्रीयकरण।

(2) विशिष्ट एवं स्वशासी उपव्यवस्थाओं संरचनाओं तथा व्यक्ति के अधिकाधिक संरचना अर्थात संरचनात्मक विभिन्नीकरण।

(3) राजनीति में नागरिकों की बढ़ती हुआ सहभागिता तथा सम्पूर्ण राजव्यवस्था में आस्था।

(4) नवीन सामाजिक संगठन जिसमें पुरानी निष्ठायें मिलती जाती हैं। तथा मनुष्य शिक्षा, निवास, नगर, व्यवसाय, आय आदि के आधुनिक प्रतीकों के प्रति आकर्षित हो जाता है।

(5) विशिष्ट कार्यों से सम्बद्ध अनेक संगठनों का निर्माण ये प्रायः गुण उपलब्धि, स्वेच्छा, तकनीकी ज्ञान विषयों आदि के आधार पर कार्य करते हैं।

(6) आधुनिकीकरणक में अभिरूचि रखने वाले अनेक अभिजनों की उपस्थिति।

(7) समान राजनीतिक सहभागिता

(8) हित समूहों राजनीतिक दलों, प्रेस सम्मेलनों आदि के माध्यम से राजनीतिक मार्गों तथा गतिविधियों का हित स्वरूपण।

सभी नवीन विकासशील राज्य आधुनिकीकरण की बाधाओं से जूझते हुए इस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। इसमें एक प्रमुख प्रवृत्ति आद्योगीकरण की है और वे इसके सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक मनोवैज्ञानिक तथा राजनैतिक परिणामों का भी सामना कर रहे हैं,। पुराने मूल्यों रीति-रिवाजों, मानकों आदि का स्थान नवीन मूल्यों एवं आदर्शो द्वारा ले लिया जाता है इससे समस्त समाज एवं उसकी इकाइयों में उथल पुथल, अस्थायित्व तथा असन्तुलन आ जाता है। परन्तु जापान जैसे देश अपने परम्परागत मूल्यों को बनाये रखते हुए उनके साथ आधुनिक मूल्यों की स्थापना करने में सफल हो गये।

6.5 राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख लक्षण

सामान्य रूप से राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार है:-

(1) राजनीतिक आधुनिकीकरण का प्रमुख लक्षण यह है कि मानव जीवन की गतिविधियों से सम्बन्धित सभी प्रकार की शक्तियों का राज्य या राजनीतिक व्यवस्था में केन्द्रीयकरण होने लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि शक्ति की महत्ता बढ़ने लगती है।

(2) राजनीतिक आधुनिकीकरण के लिए सरकारी जनता तक पहुँच बुद्धिपरक होनी चाहिये। इसका अर्थ राज्य एवं सरकार की समाज में बढ़ती हुई सक्रियता एवं सम्पर्कों से है। यह तभी सम्भव होता है जब सरकारें सकारात्मक कार्यों के निष्पादन में आगें बढ़े।

(3) आधुनिक राजनीतिक समाजों में राजनीतिक व्यवस्था एवं समाज में सक्रियता बढ़ जाती है। राजनीतिक दल, हित एवं दबाव समूह नौकरशाही एवं निर्वाचनों के माध्यम से यह सम्पर्कता बढ़ती है तथा संचार के साधनों द्वारा इसमें निरन्तर अर्न्तक्रिया बनी रहती है।

(4) आधुनिक राजनीतिक समाजों में धार्मिक, परम्परागत, पारिवारिक तथा जातीय सत्ताओं का स्थान एक लौकिकीकृत तथा राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता के द्वारा ले लिया जाता है। सत्ता के परम्परागत

स्त्रोतों के निर्बल होने तथा उनके स्थान पर राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता की स्थापना राजनीतिक आधुनिकीकरण की सबसे अधिक

एवं चुनौतियाँ अनेक हैं - राष्ट्रीय एकीकरण को चुनौती, प्रजाति परम्परा भाषा इत्यादि के प्रति विषय प्रतिबद्धता नये पुराने मूल्यों का संघर्ष, प्रतिरोधी समाजीकरण की प्रक्रियायें, राजनीतिक क्षय इत्यादि। सी0ई0 एप्टर आर्गेन्सकी, रार्बट सिनाई, रिग्स, आइजन्स्टैड, पालोम्बारा, पाई लर्नर, वर्बा, वीनर इत्यादि विद्वानों ने इस समस्याओं का अध्ययन किया है।

6.6 राजनैतिक आधुनिकीकरण डेविड ऐप्टर का दृष्टिकोण

वस्तुतः राजनैतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया जटिल है। इसमें अनेक अभिकरणों, माध्यमों एवं बलों का योगदान शामिल है परन्तु इनका मुख्य स्वरूप आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक होता है। इस दृष्टि से डेविड ऐप्टर का अध्ययन विचारणीय है।

डेविड ऐप्टर ने नवीन देशों की उभरती हुई शासन व्यवस्थाओं को अपने वैज्ञानिक अध्ययन की विषय सामग्री बनाया है। उनकी रूचि, उनकी ठोस समस्याओं तथा उनके समुचित अध्ययन के लिए विश्लेषणात्मक पद्धतियों तथा प्रविधियों के विकास की ओर रही है। वह केवल व्यवस्था उपागम का ही प्रयोग नहीं करता परन्तु उसके साथ साथ विभिन्न व्यवस्थाओं का वर्गीकरण तथा प्रकारों को भी प्रस्तुत करता है। इनका अध्ययन करने के लिए वह व्यापक सामाजिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करता है। उसके अध्ययन का विषय है आधुनिकीकरण की राजनीति जिसके लिए यह नियंत्रण विचार को विश्लेषणात्मक तथा नैतिक रीतियों की एकता को आवश्यक मानता है।

ऐप्टर के अनुसार राजनीति प्रमुखतः मानकीय तथा गौण रूप से अनुभवात्मक प्ररूपों के साथ आरम्भ होती है।

उसकी केन्द्रीय चयन विषय है चयन या निर्णय के साथ नैतिक धारणायें जुड़ी होती है। आधुनिकीकरण हो जाने से सामाजिक संस्कृति व्यक्ति को प्रकृति तथा समाज के सम्बन्ध में आलोचनात्मक दृष्टि अपना सकने का अवसर देती है उस व्यवस्था में मनुष्य विभिन्न प्रकार के विकल्प तथा चयन व्यक्तिगत सामाजिक या संरचनात्मक तथा नैतिक उपनाने लगता है। समाज में किये जाने वाले चयन शासकों के सामान्यीकृत चयनों से भिन्न होते हैं। उसके द्वारा किये गये चयन दीर्घकाल तक अस्तित्व में रहकर समाज के नैतिक उद्देश्य बन जाते हैं। इस प्रकार ऐप्टर अपने समाज विज्ञान के आधुनिकरण के उपकरणों के द्वारा परम्परागत सिद्धान्त शास्त्रियों की रूचि के विषयों का विश्लेषण करता है।

ऐप्टर की दृष्टि में शासन के कतिपय विशिष्ट प्रकार विशेष सामाजिक उद्देश्यों को उपलब्ध करने के लिए अधिक श्रेष्ठ होते हैं। सरकारों के प्रकार समाज की संरचनात्मक दशाओं के स्वाभाविक परिणाम न होकर व्यक्तियों के इच्छित चयनों के परिणाम होते हैं। ये चयन समाज में मनुष्य के अन्तिम लक्ष्य

सम्बन्धी विचारों से सम्बन्धित होते हैं। इन नैतिक प्रवृतियों के आधार पर राज व्यवस्थाओं को दो वर्गो धर्म निरपेक्ष, उदारतापूर्ण तथा पवित्त समूहवादी में विभक्त किया जा सकता है।

उसने अफ्रीका के जिन स्वशासी क्षेत्रों का विश्लेषण किया उनमें गोल्ड कोस्ट तथा युगाण्डा का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। वहाँ की परम्परागत सामाजिक राजनैतिक व्यवस्थाओं में नवीन एवं आधुनिक राजनैतिक संस्थाओं के स्थानान्तरण का प्रश्न था। उनकी मुख्य समस्याओं में से एक नवीन परिवर्तन को सुव्यवस्थित ढंग से कार्यान्वित करने तथा दूसरी शासकीय सत्ता के उत्तराधिकार को शान्तिपूर्ण बनाने से सम्बन्धित थी। इस प्रकार ये औपनिवेशिक क्षेत्र सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों की रंगस्थली बन गया था जिसका वैज्ञानिक विश्लेषण की प्रयोगशाला के रूप में उपयोग किया था।

ऐप्टर प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों के विश्लेषणों को एक दूसरे से भिन्न मानताह। यह भिन्नता प्रविधियों के अतिरिक्त नैतिक दृष्टिकोण के कारण भी है। राजनैतिकविश्लेषणात्मक अपने कार्यों को अपना अर्थ प्रदान करते हैं तथा इस स्थिति का बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसी कारण राजनीतिक विश्लेषणकर्ता में वैज्ञानिक ज्ञान के अतिरिक्त नैतिक अन्तप्रर्ज्ञा भी होनी चाहिए। मूलतः ऐप्टर सामाजिक संरचना के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तथा सरकार के रूपों के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव से सम्बन्ध रखता है उसमें वह यह देखना चाहता है कि सत्ता किस सीमा तक चयन एवं निर्णय करने में सक्षम होती है।

ऐप्टर आधुनिकीकरण को सामान्यतः विकास तथा औद्योगीकरण दोनों से भिन्न मानता है। आधुनिकीकरण विकास की प्रक्रिया का एक पक्ष है। विकास समाज में प्रकार्यात्मक व्यक्ति कार्यो का प्रबुद्ध विशेषीकरण है। उसमें समाज का लौकिकीकरण हो जाता है। औद्योगीकरण आधुनिकीकरण का एक भाग है जिसमें उत्पादन क्रिया से सम्बन्धित व्यक्ति कार्यो का विशेषीकरण हो जाता है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया पूर्व औद्योगीकृत समाजों में परिचालित होती है। उसका सम्बन्ध व्यवसायिक तकनीकी प प्रशासनिक व्यक्ति कार्यो तथा उन्हें सहारा देने वाली संस्थाओं, अस्पताल विद्यालय, विश्वविद्यालय, नौकरशाही आदि से होता है। इनसे नवीनीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। तथा राजनैतिक नवीन समस्यायें उत्पन्न होती है। यह आधुनिकीकरण की राजनीति स्वतः एक महत्वपूर्ण तथा आकर्षक विषय है। इससे नवीनता के भय का अन्तहीन एवं अज्ञात क्रम आरम्भ हो जाता है। ऐप्टर की विचारधारा का क्रम इस प्रकार है।

इसके विश्लेषण के लिए वह आमण्ड की तरह संरचनात्मक प्रकार्यवादी विश्लेषण के पक्ष में है। क्योंकि व्यक्ति कार्य प्रकार्यो द्वारा परिभाषित व्यवहार के संस्थापक रूपों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। परन्तु यह व्यवहार में अन्तर्निहित अभिप्रायों का भी विश्लेषण करता है। उसके राजनीतिक विश्लेषण में (1) चयन (2) चयन का परिवेश या सन्दर्भ, दोनों शामिल है। उनका विश्लेषण संरचनात्मक होने के साथ-साथ व्यवहारवादी भी है।

वह आधुनिकीकरण की अवस्था में सरकार द्वारा सत्ता बनाये रखने की दशाओं का विश्लेषण करता है। उसे औचित्यपूर्वता की समस्या कहा जा सकता है। वह खुले तौर पर सरकार की संस्थाओं तथा उनके व्यवस्थागत आधारों का विश्लेषण करता है।

(1) सत्ता-व्यवस्था में केन्द्रीकरण की मात्रा या पदसोपान की मात्रा।

(2) सत्ता द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त मूल्य व्यवस्था।

कहने का तात्पर्य यह है कि ऐप्टर नैतिक संरचनात्मक तथा व्यवहारवादी सिद्धान्त का विकास करना चाहता है।

राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया इतनी जटिल है कि उसके सुनिश्चित प्रतिमान नहीं बना पाया है परन्तु एडवर्ड शिल्स ने अपनी पुस्तक पोलिटिकल मार्डनाइजेशन में यह बताने का प्रयत्न किया है कि आधुनिकीकरण के आधार पर यदि समस्त राजनीतिक व्यवस्थाओं को देखा जाय तो उन्हें पाँच प्रतिमानों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। उनके अनुसार सभी राजनीतिक व्यवस्थायें राजनीतिक आधुनिकीकरण की निश्चित रेखा पर कहीं न कहीं अंकित की जा सकती है। ये प्रतिमान इस प्रकार हैं।:-

(1) राजनीतिक लोकतंत्र -राजनीतिक लोकतंत्र से तात्पर्य उस शासन व्यवस्था से है जिसको अपनाने का प्रयत्न आधुनिकीकरणशील राष्ट्र कर रहे हैं जिनमें नागरिकों को स्वतंत्रतायें प्राप्त होती हैं। इस प्रकार की शासन व्यवस्था में वयस्क मताधिकार, चुनाव व्यवस्था, राजनीतिक दल स्वतंत्र न्यायपालिका, लोकतंत्रीय अधिकार इत्यादि वे सब व्यवस्थायें पायी जाती हैं जो कि लोकतंत्रीय व्यवस्था के लिए आवश्यक मानी जाती है। अमेरिका, ब्रिटेन तथा पश्चिमी यूरोपीय देशों के लोकतंत्र इसका उदाहरण हैं।

(2) अभिभावक लोकतंत्र-अनेक समाजों में कुछ लोग राजनीतिक लोकतंत्र के सिद्धान्तों तथा प्रक्रियाओं में आस्था तो रखते हैं परन्तु उसकी स्थापना की परिस्थितियों के आभाव में लोकतंत्र लाने के लिए प्रयत्नशील ही हो सकते हैं। वास्तव में लोकतंत्रीय व्यवहार की असम्भावना के कारण ऐसे लोग लोकतंत्र के रक्षक या अभिभावक बन जाते हैं। ये लोग व्यवस्थापिका तथा राजनीतिक दलों की शक्ति को सीमित रखकर कार्यपालिका में शक्तियों का केन्द्रीकरण कर लेते हैं जिससे देश में राजनैतिक लोकतंत्र की स्थापना की परिस्थितियों को पैदा किया जा सके। इस नामात्र के लोकतंत्र की सफलता उस बात पर निर्भर है कि शासक वर्ग किस सीमा तक राजनीतिक लाकतंत्र की स्थापना करने के लिए तैयार हैं। अभिभावक लोकतंत्र उसी रूप में अपनाया जाता है जबकि उस राज्य में राजनीतिक लोकतंत्र के लिए स्वस्थ दशायें मौजूद न हो तथा जनता में उन दशाओं का विकास करने का प्रयत्न किया जा रहा हो। ऐसे लोकतंत्र एक प्रकार से राजनीतिक लोकतंत्र का मार्ग प्रशस्त करता है। भारत में लोकतंत्र की यही अवस्था है।

(3) आधुनिकीकरणशील वर्गतंत्र-कई बार लोकतांत्रिक संरचनाओं का विद्यमान रहना अपने आप में राजनीतिक आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधा बनने लगता है। ऐसे में राजनेतागण सामाजिक तथ आर्थिक आधुनिकता प्राप्त करने के लिए अधिक अधिकारवादी राज्य की स्थापना करते हैं जिसका उद्देश्य एक शक्तिशाली स्थायी तथा ईमानदार शासन स्थापित करना होता है। ऐसे शासन को आधुनिकीकरणशील वर्गतंत्र कहा जाता है। इस व्यवस्था में सारी शासन सत्ता कार्यपालिका में निहित होती है। संसद के हाथों में कोई अधिकार नहीं होता । एक को छोड़कर समस्त राजनीतिक दल गैर कानूनी घोषित कर दिये जाते हैं तथा नौकरशाही का बोलबाला हो जाता हैं। अतः ऐसे शासन में एक अधिकारवादी राज्य की ओर उन्मुखता होती हैं। यहद किसी राजनीतिक व्यवस्था को सौभाग्य से ऐसा नेतृत्व समाज में तेजी से आधुनिकता ला पायेगा। जूलियस न्येरेरे, केनेथ कौण्डा, सुकर्ण आदि नेताओं को ऐसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

(4) सर्वाधिकारी वर्गतंत्र-यह शासन का वह स्वरूप है जो राजनीतिक आधुनिकीकरण की अपेक्षा आर्थिक एवं सामाजिक लोकतंत्र को प्राथमिकता देता है ऐसे गुटतंत्र में एक विचारधारा के आधार पर संगठित एकाधिकरवादी राजनीतिक दल के नेतृत्व में आधुनिकीकरण के सभी पक्षों को एक साथ आगे लाने का प्रयत्न किया जाता है। उसमें साम्यवादी या फासिस्टवादी विचारधारा के अनुसार शासन चलाया जाता है। पूरी तरह एकदलीय व्यवस्था के आधार पर तानाशाही सरकार की स्थापना होती है। लोकतंत्रीय संस्थाओं जैसे मौलिक अधिकार, स्वतंत्र चुनाव आदि का इस व्यवस्था में कोई स्थान नहीं होता । जनता को दल या सरकार द्वारा निश्चित की गयी नीति के अनुसार अपने को ढालना पड़ता है। चीन का उदाहरण यहाँ सर्वोचित है।

(5) परम्परागत वर्गतंत्र -परम्परागत वर्गतंत्रीय व्यवस्था सही अर्थों में राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का खुला विरोधी है। क्योंकि आधुनिकता तथा परम्परागत साथ-साथ नहीं चल सकते। परम्परागत वर्गतंत्रीय व्यवस्था चलते आ रहे धार्मिक विश्वासों से सम्बन्धित शक्तिशाली राजतंत्रीय सिद्धान्तों पर आधारित होती है। ऐसी व्यवस्था में शासक रक्तवंश के आधार पर नियुक्त किये जाते हैं। ऐसी शासन व्यवस्था में कोई विधानमंडल नहीं होता। कानून बनाने का कार्य शासक अपने सलाहकारों की सहायता से करते हैं। जनसेवा के कार्यो को कोई महत्व नहीं दिया जाता। सम्पूर्ण शासन व्यवस्था का आधार सामन्तवादी व्यवस्था होती है जिसके कारण केन्द्र अधिकशक्तिशाली नहीं हो पाता नेपाल, भूटान तथा पश्चिम एशिया के देशों में ऐसी प्रणाली पायी जाती है।

शिल्स की मान्यता है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण का यह प्रतिमान राजनीतिक व्यवस्थाओं को आधुनिकता के स्तर तक पहुँचाने का संकेतक है। राजनीतिक आधुनिकीकरण का श्रेष्ठतम रूप लोकतंत्र का है। जान काटस्की ने भी अपनी पुस्तक ''पॉलिटिकल चेंज इन अन्डरडेवेलप्ड कन्ट्रीज नेशनलिज्म एण्ड कम्यूनिज्म (1962)'' में भी रजनीतिक आधुनिकीकरण को पाँच श्रेणी में रखा है।

1.परम्परागत कुलीनतंत्रात्मक अधिकारवादी व्यवस्था।

2.राष्ट्रीय बुद्धिजीवियों के प्रभुत्व की संक्रान्तिकालीन व्यवस्था।

3.कुलीनतंत्रों की सर्वाधिकारवादी व्यवस्था।

4.बुद्धिजीवियों की सर्वाधिकारवादी व्यवस्था।

5.प्रजातंत्रातात्मक व्यवस्था।

6.7 राजनीतिक आधुनिकीकरण के अभिकरण

राजनीतिक आधुनीकीकरण एक पेचीदा परिवर्तन प्रक्रिया है जिसमें कई अभिकरणों एवं माध्यमों की भूमिका रहती है। डॉ0 एस0पी0 शर्मा ने स्पष्ट रूप से कहा है कि ''सामाजिक संचारण एवं आर्थिक विकास दोनों ही राजनीतिक आधुनिकीकरण के निर्णायक तत्व माने जाते हैं तथा इनसे विकासशील देशों के लिए घातक परिणाम निकले हैं।'' मुख्य तौर से राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख अभिकरण इस प्रकार हैं:-

1. बुद्धिजीवी -बुद्धिजीवी द्वारा राजनीतिक व्यवस्था के साध्यों, गन्तव्यों तथा उद्देश्यों के विकल्प सुझाये जाते हैं इन विकल्पों में से कुछ का चयन करके राजनीतिक शक्ति को संरचनात्मक रूप प्रदान किया जाता है। इसमें अभिजनों द्वारा सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया जाता है। उनकी विचारधाराएँ, विशेष प्रकार की मान्यतायें एवं आकांक्षायें राजनीतिक आधुनिकीकरण का परिप्रेक्ष्य तैयार करती है इन्हीं के द्वारा राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सक्रिय एवं शिथिलि होती है।

2. राजनीतिक दल -राजनीतिक दल भी राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख अभिकरण होते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में इनकी भूमिका सर्वविदित है। सर्वाधिकारी शासनों में तो एकाधिकारवादी राजनीतकि दल ही राजनीति का संचालन माना जाता है और वह अपनी विचारधारा से आधुनिकीकरण में योगदान करता है। भारत में स्वतंत्रा आन्दोलन में निरन्तर कांग्रेस पार्टी की भूमिका उल्लेखनीय रही है।

3. सरकारें-आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में सरकारों के माध्यम से ही अधिकांश कार्यो की पहल होती है इसीलिए वे राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में सक्रिय होकर राजनीतिक आधुनिकीकरण की अभिप्रेरक बन जाती है। भारत में इन्दिरा गांधी का शासनकाल (1966-1977) इसका उदाहरण प्रस्तुत करता है।

6.8 राजनैतिक विकास एवं राजनैतिक आधुनिकीकरण में अन्तर

राजनीतिक विकास एवं राजनीतिक आधुनिकीकरण दोनों ही धारणायें विकासशील समाजों समस्याओं से सम्बन्धित का अध्ययन करती है। यह भी सत्य है कि दोनों में अन्तर करना सरल कार्य नहीं है। यह अन्तर भी मात्रा की अपेक्षा प्रभाव से सम्बद्ध है। इस सम्बन्ध में निम्न बातें महत्वपूर्ण हैं:-

1.राजनीतिक विकास की धारणा से आधुनिकीकरण की धारणा अपेक्षाकृत अधिक संकुचित मानी जाती है। वस्तुतः राजनीतिक विकास आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का एक भाग है परन्तु उसका क्षेत्र केवल राजनीतिक है।

2.रजनीतिक विकास एक लक्ष्योन्मुख प्रक्रिया है जिसे अपनी दिशा या गन्तव्य ज्ञात है परन्तु आधुनिकीकरण विभित्र दिशाओं एवं क्षेत्रों में लाया जाने वाला व्यापक परिवर्तन है तथा एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यद्यपि राजनीतिक आधुनिकीकरण की धारणा राजनीतिक विकास के अधिक समीप है फिर भी समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र से सम्बद्ध होने के कारण राजविज्ञान के लिए उपयोगी नहीं है। आधुनिकीकरण की धारणा में राजनीतिक विकास एक आश्रित चर बनकर रह जाता है परन्तु बिना आधुनिकीकरण के राजनीतिक विकास आरम्भ किया जा सकता है।

3.राजनीतिक विकास कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर परिवर्तन करता तथा दिशाओं का आंकलन करता है जबकि आधुनिकीकरण का सम्बन्ध आधुनिक मूल्यों मान्यताओं तथा विश्वासों से है जिसके माध्यम से राजनैतिक संरचनाओं संस्थाओं तथा अर्थतंत्र के समय के अनुरूप बनाया जाता है।

4.राजनीतिक आधुनिकीकरण की मान्यता प्रतिमानों पर अधिक आश्रित है। कहीं इसे पश्चिमीकरण से जोड़ा जाता है तो कहीं इसे लोकतंत्र से या फिर इसे औद्योगीकरण से। इस प्रकार यह दुष्टिकोण कुछ पाक्षपातपूर्ण हो जाता है क्योंकि यह परम्परा और आधुनिकता को एक दूसरे का विरोधी मानता है। दूसरी ओर राजनीतिक विकास परम्परा तथा आधुनिकता में अन्तर करते हुए भी दोनों को विरोधी नहीं मानता बल्कि दोनों में सामंजस्य स्थापित करता है।

5.कुछ विश्लेषणों के अनुसार राजनीतिक विकास आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का परिणाम है। आधुनिकीकरण का सम्बन्ध प्रायः विकासशील समाजों से किया जाता है। राजनीतिक विकास का समस्त राजनीतिक व्यवस्थाओं चाहें वे विकसित हों या विकासशील या अविकसित के संदर्भ में प्रयोग किया जा सकता है। दूसरी ओर आधुनिकीकरण सामाजिक परिवर्तनों की सम्पूर्ण प्रकृति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। वह एक परम्परागत समाज द्वारा विकसित या आधुनिक समाजों की विशेषताएँ धारण करने के प्रयासों तथा प्रक्रियाओं का नाम है। डेविड ऐप्टर ने Tha politics of modernization 1965 तथा conceptual approaches to the study of modernization 1968 1968 धारणा का उपयोग किया है।

6.राजनीतिक विकास केवल राजनैतिक विन्यास संरचनाओं प्रक्रियाओं पर पड़ने वाले तीव्र सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों के प्रभावों से सम्बद्ध है। वह केवल उन राजनीतिक संस्थाओं तथा बलों में रूचि रखता है जो विकासात्मक परिवर्तनों को कार्यान्वित करने में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं।

राजनीतिक आधुनिकीकरण से सम्बन्धित विचारक भी इन्हीं पक्षों के अध्ययन में रूचि रखते हैं परन्तु अनेक विचारकों ने सामान्य रूप से आधुनिकीकरण के कुछ मापदण्ड तैयार किये हैं तथा उन्हीं के आधार वे आधुनिकीकरण का निर्धारण करते हैं।

7.राजनीतिक विकास चूंकी निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो निश्चित परिवर्तन को विकास से सम्बद्ध मानकर चलती है परन्तु जैसा कि हंटिग्टन की मान्यता है कि यदि वे परिवर्तन सकारात्मक न सिद्ध हुए तो राजनैमिक विकास की अपेक्षा राजनैतिक क्षय या विनाश की ओर ले जाते हैं। जहाँ तक आधुनिकीकरण की प्रश्न है वह मूल्यों से आबद्ध बहुमुखी धारणा है और एक बार यदि किसी व्यवस्था द्वारा सकारात्मक रूप से इनको अपना लिया जाता है तो उसमें पीछे हटने या क्षय होने की सम्भावना नहीं रह जाती।

अभ्यास प्रश्न १. Tha politics of modernization पुस्तक किसने लिखा है ?

२. पॉलिटिकल चेंज इन अन्डरडेवेलप्ड कन्ट्रीज नेशनलिज्म एण्ड कम्यूनिज्म प्स्तका के लेखक कौन है ?

6.9 सारांश

सम्पूर्ण विश्लेषण के उपरान्त यह कहना सर्वोचित है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण उपागम आधुनिक राज व्यवस्था का अध्ययन करने वाला यथार्थवादी उपागम है। राजनीतिक विकास उपागम की अपेक्षा यह जीवन के राजनीतिक पहलू को अधिक समग्रता के साथ जोड़ने का प्रयत्न करता है। परन्तु इसमें सबसे बड़ी कमी तुलनात्मक पद्धति को लेकर है। जब तक आधुनिकीकरण की सामान्य प्रक्रिया से राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को अलग एवं स्वायत्त प्रक्रिया के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया जाता इस उपागम का प्रयोग राजनीतिक तुलनाओं में नहीं किया जाता। पुनः यह अवधारणा समाजशास्त्रीय तथा आर्थिक विकास से सम्बन्धित है जिससे राजवैज्ञानिकों कोयह आशंका प्रतीत होती है कि राजनीति को समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र के अधीन बना दिया गया है, जिससे राजनीतिक के एक स्वायत्त विषय के रूप में अध्ययन में बाधा उत्पत्र होती है। परन्तु उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद राजनीतिक आधुनिकीकरण की संकल्पना व्यवहारिक तथा यथार्थवादी अध्ययन का उपर्युक्त उदाहरण प्रस्तुत करती है इस अवधारणा के सहारे राजनीतिक विश्लेषणों में तर्कसंगतता एवं औचित्य का समावेश किया जा सकता है।

6.10 शब्दावली

आधुनिकीकरण – यह विश्व के नये उदित राष्ट्रों तथा विकासशील समाजों की उस परिवर्तन प्रक्रिया का नाम है जो उन्हें आधुनिक मूल्यों, मान्यताओं एवं विश्वासों से जोड़ती है।

6.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. डेविड ऐप्टर ने , २. जान काटस्की ने

6.12 संदर्भ ग्रंथ

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

6.13 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

4.ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस, डेविड ईस्टन

5.ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ, डेविड ईस्टन

6.14 निबंधात्मक प्रश्न

१.आधुनिकीकरण को परिभाषित कीजिए | इसके विविध अभिकरणों की विवेचना कीजिए |

इकाई 7 : राजनीतिक समाजीकरण

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 राजनीतिक समाजीकरण: अर्थ एवं व्याख्या

7.4 राजनीतिक सामाजीकरण के प्रत्यय

7.5 राजनीतिक सामाजीकरण के दो स्वरूप होते हैं- व्यक्त तथा अव्यक्त।

7.6 राजनीतिक सामाजीकरण के निर्माणकारी तत्व

7.7 राजनीतिक सामाजीकरण के अभिकरण

7.8 सारांश

7.9 शब्दावली

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.11 संदर्भ ग्रंथ

7.12 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

7.13 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

आधुनिक राजनीति शास्त्र में व्यवहारपरक अध्ययन की प्रधानता बढ़ी है और यह व्यवहारपरक अध्ययन मनोवैज्ञानिक दुष्टिकोण से प्रभावित होता है और इसी दुष्टिकोण ने एक नई प्रकार की अवधारणा को जन्म दिया जिसे हम राजनीतिक समाजीकरण की संज्ञा देते हैं।

राजनीतिक समाजीकरण वास्तव में राजनैतिक संस्कृति का विस्तारीकरण है जिसके द्वारा किसी व्यवस्था के मूल्यों एवं विश्वासों को न केवल बनाये रखा जाता है बल्कि उन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित भी किसा जाता है। वास्तव में इस संकल्पना का उद्देश्य व्यक्तियों को इस तरह से प्रशिक्षित एवं उनका विकास करना है कि वे राजनीतिक समुदाय के सुकार्यकारी सदस्य बन सकें।

रार्बट सीगल के अनुसार इसके विशिष्ट अर्थ में यह मनोवैज्ञानिक आयाम निहित है कि यह संचालनशील राजनीतिक व्यवस्था के स्वीकार्य मानकों, अभिवृत्तियों तथा व्यवहार को क्रमिक ढंग से सीखना है। इससे यह स्पष्ट है कि राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया बचपन एवं किशोरावस्थ के माध्यम से निरन्तर प्रक्रिया में रहती है और जिसके दौरान नई पीढ़ी वयस्क जनता के बीच विद्यमान नियमों को ग्रहण करती है। राजनैतिक सामाजहकरण को पहले नागरिकता, नागरिक प्रशिक्षण तथा नागरिक समाजीकरण राजनीति एवं राजनीतिक व्यवहार के क्षेत्र में समाजीकरण की प्रक्रिया का परिसीमन है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त निम्नलिखित के बारे में जान सकेंगे

1.राजनीतिक समाजीकरण: अर्थ एवं व्याख्या

2.राजनीतिक सामाजीकरण के प्रत्यय

3.राजनीतिक सामाजीकरण के दो स्वरूप होते हैं- व्यक्त तथा अव्यक्त।

4.राजनीतिक सामाजीकरण के निर्माणकारी तत्व

5.राजनीतिक सामाजीकरण के अभिकरण

6.राजनीतिक सामाजीकरण एक सतत् प्रक्रिया

7.3 राजनीतिक समाजीकरण: अर्थ एवं व्याख्या

राजनैतिक सामाजीकरण एक मनौवैज्ञानिक अवधारणा है। इस अवधारणा का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति को राजनीतिक समुदाय का सफल संचालनकर्ता बनाना है। चूँकि किसी भी सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का स्थायित्व उसके सदस्यों के सामाजीकरण पर निर्भर है अतएव इसके लिए विशेष ढंग से उसका प्रशिक्षण एवं विकास आवश्यक है। अतएव राजनीतिक सामाजीककरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनैतिक संस्कृतियों का अनुरक्षण एवं उसमें नागरिकों का प्रशिक्षण इस प्रकार होता है जिससे वे संवैधानिक व्यवस्था द्वारा राजनैतिक परिवर्तन की कला सीखते हैं। उन्हें समस्या के समाधारन हेतु बल प्रयोग, प्रदर्शन, हिंसक उपद्रवों इत्यादि का सहारा नहीं लेना पड़ता है।

सामाजीकरण विकास की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति ज्ञान, निपुणता, विश्वासों, मूल्यों मनोवृत्तियों एवं वृत्तियों को प्राप्त करता है तथा ये उसे समाज के एक प्रभावशाली व्यक्ति के रूप में कार्य करने के योग्य बनाते हैं।

राजनीतिक समाजीकरण का विषय क्षेत्र व प्रक्रिया है जिससे नागरिक राजनीतिक मूल्यों को सीखते हैं तथा उसे पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करते रहते हैं तथा राजव्यवस्था में स्थापित्व एवं संतुलन बना रहता है। अतः यह कहा जा सकता है कि सामाजीकरण सीख व अभ्यास की वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति अपनी समूह संस्कृति के प्रशिक्षण एवं समूह में अपनी भूमिका के माध्यम से सामाजिक समूह का अभिन्न अंग बनता है।

राजनीतिक सामाजीकरण का प्रयोग विभिन्न प्रकार से किया गया है। विभिन्न विद्वानों के दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में इस प्रकार है सीगल के अनुसार, "राजनीतिक समाजीकरण सीख की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था द्वारा स्वीकृत आदर्शो धारणाओं एवं व्यवहारों की क्रमशः सीख मिलती है।"

लेंगटन के अनुसार, ''राजनैतिक सामाजीकरण वह तरीका है जिसके द्वारा समाज राजनीतिक संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करता है। यह प्रक्रिया एक तरफ तो परम्परागत राजनीतिक आदर्शो एवं धारणाओं को बनाये रखने में सहायक है तथा दूसरी ओर यह राजनीतिक तथा मानसिक परिवर्तन के एक साधन के रूप में कार्य करती है।''

आई0 एल0 चाइल्ड के अनुसार, ''सामाजीकरण वह सम्पूर्ण प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति में विशाल व्यावहारिक सम्भावना के रहते हुए भी उसमें ऐसे वास्तविक व्यवहार कोउत्पन्न किया जाता है जिसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित होता है। यह क्षेत्र उसके समूह के प्रचलित एवं स्वीकृत मानदण्डों के अनुसार होता है।"

आमण्ड एवं पावेल के शब्दों में, ''राजनैतिक समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा राजनीतिक संस्कृतियों का अनुरक्षण एवं उनमें परिवर्तन किया जाता है। इस कार्य के निष्पादन के माध्यम से व्यक्तियों को राजनीतिक संस्कृतियों में सम्मिलित किया जाता है तभी राजनैतिक वस्तुओं के प्रति उनके अभिविन्यास का निर्माण किया जाता है।''5

ग्रीन स्टेन के अनुसार, ''राजनीतिक सामाजीकरण को सीमित तथा व्यापक अर्थों मे परिभाषित किया जा सकता है। सीमित अर्थ में राजनीतिक सामाजीकरण सांस्थनिक एजेण्टों के माध्यम द्वारा, जिन्हें औपचारिक रूप से यह दायित्व सौंपा गया है। राजनीतिक सूचना मूल्यों एवं व्यवहारों का विमर्शपूर्वक अन्तर्निवेशन है। व्यापकतम अर्थों में इसमें जीवन चक्र की प्रत्येक अवस्था में औपचारिक एवं अनौपचारिक तथा नियोजित तथा सभी प्रकार की राजनीतिक सीख सम्मिलित है। इसके अन्तर्गत केवल सुस्पष्ट राजनीतिक सीख ही नहीं बल्कि राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करने वाली सभी अराजनीतिक सीख भी सम्मिलित है।''6

राजनीतिक सामाजीकरण की अविरल प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है। किसी समूह अथवा पीढ़ी के अवसान से इसकी समाप्ति नहीं होती। धारणाओं विश्वासों, मूल्यों तथा ज्ञान का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तातंरण होता रहता है। व्यक्ति के जीवन चक्र की सभी अवस्थाओं में सामाजीकरण की प्रक्रिया सक्रिय रहती है।

राजनीतिक सामाजीकरण उस समय आरम्भ होता है जब एक बच्चा पर्यावरण में प्रवेश करता है। वह अनेक प्रकार की परिस्थितियों के सम्पर्क में आता है जिनके माध्यम से वह ज्ञान प्राप्त करता है। ईस्टन एवं डेनिंग बच्चे के जीवन में चार सत्रों का वर्णन करते हैं जिसके द्वारा बच्चा राजनीतिक संस्कृति एवं सामाजीकरण में प्रवेश करता है:-

1.विशेष व्यक्तियों के माध्यम से सत्ता को मान्यता।

2.सार्वजनिक एवं निजी सत्ता में अन्तर।

3.राजनीतिक संस्थाओं एवं व्यवहार के सम्बन्ध में ज्ञान,

4.राजनीतिक संस्थाओं तथा व्यक्ति विशेष के मध्य अन्तर

राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया मनुष्य के जीवन पर्यन्त चलती रहती है। आमण्ड एवं वर्बा का विचार है कि जो मनुष्य के राजनीतिक जीवन आरम्भ करने से पूर्व प्रभावी होते है, वे अधिक महत्व रखते हैं। व्यक्ति जीन प्रभावों को बाद में ग्रहण करता है उन्हीं के आधार पर वह अपने आरम्भिक मूल्यों एवं व्यवहार को संशोधित करता रहता है। अतएव अनुभवी प्रभावों का सामाजीकरण की

प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजीकरण की प्रक्रिया राजनीतिक व्यवस्था में न केवल स्थायित्व लाती है बल्कि आवश्यकता पड़ने पर परिवर्तन को भी सरल बना देती है।

7.4 राजनीतिक सामाजीकरण के प्रत्यय

राजनीतिक सामाजीकरण के दो प्रत्यय हैं:- 1. एकरस, 2. खण्डित।

एकरस प्रत्यय से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति एक दूसरे से मिलकर विश्वास के वातावरण में कार्य करते हैं तथा अपने राजनीतिक विचार ग्रहण करते हैं। यह पद्धति के स्थायित्व का वर्णन करता है। इसके विपरीत खण्डित प्रत्यय में व्यक्तियों के मध्य घृणा एवं अविश्वास का वातावरण होता है और उनमें व्यवस्था के प्रति निष्ठा एवं श्रद्धा का आभाव होता है। वस्तुतः यह अवधारणा अत्यन्त धीमी गति से परिवर्तन में विश्वास करती है। इसके अनुसार सामाजीकरण की प्रक्रिया में परिवर्तन के साथ राजनीतिक संस्कृति में भी सन्तुलित ढंग से परिवर्तन होना चाहिए।

राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया राजनीतिक व्यवस्था तथा नागरिकों के व्यवहार पर निर्भर करती है। राजनीतिक व्यवस्था जितनी स्थायी होगी उतने ही सामाजीकरण के तत्व स्थायी होंगे। यह तत्व अधिनायकवादी एवं गैर अधिनायकवादी दोनों ही व्यवस्थाओं में सक्रिय रहते हैं। राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया स्वतंत्र नहीं छोड़ी जा सकती क्योंकि इसी प्रक्रिया के माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था में विचारों, आदर्शों दृष्टिकोणों, व्यवहारों, सिद्धान्तों, इत्यादि का निर्माण किया जाता है। राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया का राजनीमिक व्यवस्था के संतुलन बने रहना चाहिए अन्यथा व्यवस्था की स्थायित्व के लिए संकट उत्पन्न हो जायेगा।

7.5 राजनीतिक सामाजीकरण के दो स्वरूप होते हैं- व्यक्त तथा अव्यक्त

व्यक्त सामाजीकरण प्रत्यक्ष सामाजीकरण है। अव्यक्त सामाजीकरण अप्रत्यक्ष होता है। जब राजनीतिक विषयों के सम्बन्ध में स्पष्ट मूल्यों, संवेदनाओं तथा सूचनाओं का संचार होता है तो उसे व्यक्त सामाजीकरण कहते हैं। व्यक्ति जब परिवार शिक्षक, यहयोगियों तथा अन्य माध्यमों से राजनीतिक विचारों का निर्माण करता है तो यह व्यक्त सामाजीकरण की प्रक्रिया बन जाती हैं।

प्रत्यक्ष सामाजीकरण की प्रक्रिया जब गैर राजनीतिक विषयों के सम्पर्क में आती है तब उसका राजनीतिक अभिमुखीकरण होता है। राजनीतिक अभिमुखीकरण के माध्यम से ही व्यक्ति राजनीतिक सत्ता एवं क्रियाकलापों के प्रति अपने दृष्टिकोण का विकास करता है। इसी दृष्टिकोण को अप्रत्यक्ष सामाजीकरण कहते हैं।

7.6 राजनीतिक सामाजीकरण के निर्माणकारी तत्व

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजनैतिक सामाजीकरण वास्तव में एक प्रकार की शिक्षा है जिसके माध्यम से व्यक्ति राजनीतिक वस्तुओं के प्रति ज्ञान प्राप्त करता है तथा अपने व्यवहार का निर्माण करता है। मैन्नहीम ने राजनीतिक सामाजीकरण की चार विशेषताओं का उल्लेख किया है।

1.राजनीतिक सामाजीकरण आधारभूत रूप से शिक्षण की प्रक्रिया का ही भाग है। इस प्रकार व्यक्ति उस प्रक्रिया से केवल उन्हीं तत्वों को ग्रहण करता है जिनकी राजनीतिक वस्तुओं, मूल्यों या गतिविधियों से संगमता व उपयोगिता हो।

2.राजनीतिक सामाजीकरण के फल योगात्मक एवं अन्तक्रियात्मक हैं। दूसरे शब्दों में राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया सदा ही बनी रहती है।

3.राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया अति विस्तारपूर्ण है। इनमें वे सभी बातें आ जाती हैं जिनमें राजनीति को सीखने के कुछ भी अथवा दूरी का भी सम्बन्ध हो।

4.प्रत्येक व्यक्ति सामाजीकरण के अनुभवों के न्यूनाधिक अनोखे मेल का प्रतिनिधित्व करता है। चूँकि पारिवारिक जीवन, सामूहिक संघों शैक्षिक अनुभवों तथा जीवन शैलीयों के प्रकार अनगिनत हैं तथा राजनीतिक सामाजीकरण में अन्य शक्तियाँ अर्न्तग्रस्त रहती है। अतः ऐसे सामाजीकरण के सम्भावित उत्पाद भी अनगिनत एवं विविध प्रकार के हैं।

7.7 राजनीतिक सामाजीकरण के अभिकरण

राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है और जीवन के विभिन्न चरणों में इसकी प्रक्रिया विभिन्न अभिकरणों से प्रभावित होती रहती है। सामाजीकरण के प्रमुख अभिकरण इस प्रकार हैं:- 1. परिवार या कुटुम्ब, 2. औपचारिक शिक्षा संस्थाएँ, 3. अनौपचारिक संस्थायें, 4. जनसंचार के साधन, 5. राजनीतिक दल।

1.परिवार या कुटुम्ब

सामाजीकरण की संस्थाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान या कुटुम्ब को प्राप्त होता है। अरस्तू का मानना है कि परिवार मानव जीवन की प्रथम पाठशाला है। परिवार से ही मनुष्य संतोष, विरोध, आज्ञा, आदेश, श्रद्धा, ज्ञान इत्यादि भावनायें ग्रहण करता है तथा इन्हीं के आधार पर अपने राजनीतिक मूल्यों एवं विश्वासों का निर्माण करता है। राबर्ट लेन कुटुम्ब में तीन रीतियों का वर्णन करते हैं जिनके द्वारा बच्चा ज्ञान प्राप्त करता है।

1.प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सिद्धान्तीकरण.

2.बच्चे का एक विशेष सामाजीकरण परिस्थिति से सम्पर्क।

3.बच्चे की मनोवृत्ति का उद्देश्य पूर्ण निर्माण।

2.औपचारिक शिक्षा संस्थायें

व्यक्ति को राजनीतिक शिक्षा में दूसरा स्थान औपचारिक शिक्षा संस्थाओं का है। आमण्ड एव वर्बा की मान्यता यह है कि जितनी अधिक एक व्यक्ति की शिक्षा होगी उतना ही अधिक उसे राजनीतिक ज्ञान होगा और वह राजनीतिक तथा सरकारी प्रक्रिया को समझ पायेगा तथा राजनीतिक वस्तुओं के सम्बन्ध में उसके विचार उतने ही सुलझे होंगे। यही कारण है कि स्कूलों के पाठयक्रमों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उच्च शिक्षा संस्थायें व्यक्ति को राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में परोक्ष अनुभव प्रदान करके विशेष सहायता पहुँचाती है जिनके माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था में वह सरलता से अपना स्थान ग्रहण कर लेता है। मायरन वीनर के शब्दों में, ''यदि विश्वविद्यालयों के अधिकारी विद्यार्थियों की शिकायतें दूर करने का सन्तोषजनक मार्ग निकाल लें तो विश्वविद्यालयों में अनुशासनहीनता की समस्या दूर हो ही जायेगी, वह देश को ऐसे अभिजन भी देंगे जो व्यवस्था के स्थायित्व को प्रभावित करेंगे तथा देश को उन्नति की ओर ले जायेंगे''।

3.अनौपचारिक संस्थायें

राजनीतिक सामाजीकरण में तीसरा महत्वपूर्ण स्थान अनौपचारिक संस्थाओं का है, जहाँ व्यक्ति कार्य करता है, मनोरंजन के लिए जाता है या सामूहिक रूप से राजनीतिक क्रियाओं में भाग लेता है। ये संस्थायें भी मनुष्य के राजनीतिक मूल्यों, भावनाओं एवं विचारों को परिष्कृत करके उन्हें औचित्यपूर्ण बनाती हैं।

4.जनसंचार के साधन

राजनीतिक सामाजीकरण में चौथा महत्वपूर्ण स्थान जनसंचार साधनों का है। इन साधनों से मनुष्यों को विभित्र सूचनाओं की प्राप्ति होती है जो उसके राजनीतिक विचारों के निर्माण में सहयोग देती हैं। यही माध्यम उनके राजनीति में गतिशील होने के आधार तैयार करता है।

5.राजनीतिक दल

राजनीतिक दल भी राजनीतिक सामाजीकरण का एक सफल साधन हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में व्यक्तियों को राजनीतिक शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य राजनीतिक दलों द्वारा ही किया जाता है। लोकमत से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार एवं उसके निर्माण में राजनैतिक दलों का योगदान अप्रतिम होता है। जहाँ तक विकासशील देशों तथा समाजों का प्रश्न है, वहाँ पर राजनैतिक दल व्यवस्था के विकास एवं आधुनिकीकरण में सहयोग देते हैं। भारत में स्वतंत्रा के उपरान्त राजनैतिक विकास में क्रांग्रेस पार्टी का अद्वितीय योगदान रहा है। सामान्य रूप से राजनैतिक दलों के निम्न कार्य हैं:-

1.मतदाताओं को निर्वाचन प्रक्रिया के प्रति जागरूक बनाना एवं आकृष्ट करना।

2.जनता एवं शासन के मध्य सम्बन्ध स्थापित करना।

3.राजनैतिक सूचनाओं का प्रसार करना।

4.विभिन्न समुदायों के मध्य एकीकरण करना।

5.राष्ट्रीयता का प्रचार करके सामाजीकरण के अभिकर्ता के रूप में कार्य करना।

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि अभी तक राजनीतिक सामाजीकरण के सर्वमान्य प्रतिमान विकसित नहीं किये जा सके हैं। आधिकतर अध्ययन अमेरिका एवं यूरोपीय देशों तक ही सीमित रहे हैं। विभिन्न देशों में हुए अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि 3, 4 वर्ष को आयु में बच्चों में प्रजातीय की आयु तक बच्चे अन्य समूहों के लिए प्रयुक्त शब्दों एवं संप्रत्ययों को सीख जाते हैं। 12, 13 वर्ष की आयु में विकसित देशों में बच्चे राट्रीय एवं प्रजातीय भावनाओं के अतिरिक्त वर्ग संचरना का ज्ञान, शक्ति एवं बल , राजनैतिक दलों, निर्वाचन प्रणाली तथा सरकार के महत्व के बारे में काफी जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। किशोरावस्था में सरकार की संरचना एवं कार्यों, विधि, राजनैतिक दलों, समुदायों की आवश्यकताओं, व्यतिक्तगत स्वतंत्रता तथा राजनैतिक विनिश्चयों एवं निर्णयों के प्रति जागरूकता आने लगती है। वयस्क होने पर व्यक्ति राजनैतिक प्रक्रियाओं में स्वयं भाग लेना आरम्भ कर देता है तथा राजनीतिक सीख के रूप में यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

अभ्यास प्रश्न

१. राजनीतिक सामाजीकरण के कितने स्वरुप है ?

२.राजनीतिक सामाजीकरण के के कितने प्रत्यय हैं ?

7.8 सारांश

राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया मानव जीवन में निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है अधिकांश विद्वान राजनीतिक सामाजीकरण को परिवर्तन की एक प्रक्रिया मानते हैं परन्तु इसके द्वारा प्रचलित मूल्यों एवं प्रतिमानों का आभ्यन्तरीकरण होता है जिसका उद्देश्य परिवर्तन की अपेक्षा स्थिरता लाना होता है।

आमण्ड एवं पावेल ने राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया को विशेष महत्व प्रदान किया है तथा उसे किसी भी समाज के राजनीतिक स्थायित्व तथा राजनैतिक विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए इसे बहुत उपयोगी बताया है। वर्तमान विश्व के राजनैतिक समाजों में तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों का राजनैतिक व्यवस्थाओं के साथ आवश्यक सामंजस्य स्थापित करने में राजनैतिक सामाजीकरण का विशेष महत्व स्थापित हो गया है। मनुष्य को नयी परिस्थितियों के अनुरूप तैयार करने में सामाजीकरण का विशेष योगदान है। उदाहरण के लिए जब कोई राजनीतिक व्यवस्था अधिनायकतंत्र से उदारवादी प्रजातंत्र में परिवर्तित होती है अथवा राजतंत्र से प्रजातंत्र में परिणत होती है तब निश्चय ही पुराने सामाजीकरण को निरस्त कर उसके स्थान पर नवीन प्रकार के सामाजीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है।

अतएव यह कहा जा सकता है कि राजनैतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया सामाजिक मूल्यों एवं विश्वासों को मानव जीवन में स्थापित करके उन्हें राजनैतिक व्यवस्था के अनुकूल बनाने में सहायक एवं निर्णायक सिद्ध होती है।

7.9 शब्दावली

राजनीतिक सामाजीकरण – यह वह प्रक्रिया है मानव जीवन में निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है अधिकांश विद्वान राजनीतिक सामाजीकरण को परिवर्तन की एक प्रक्रिया मानते हैं परन्तु इसके द्वारा प्रचलित मूल्यों एवं प्रतिमानों का आभ्यन्तरीकरण होता है जिसका उद्देश्य परिवर्तन की अपेक्षा स्थिरता लाना होता है।

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. दो २. दो

7.11 संदर्भ ग्रंथ

1. R.Sigel, Assumptions about the learning of political values in the annels of the American Academy of political and social science Vol.361, Sept. 1965, p.1

2. Ibid. p.1

3. K. P. Longton, Political Socialization, 1969, pp. 19-20

4. Irwin L. Child , Socialization, in G. Lindzey (ed) Handbook of Psychology Vol. 2 , 1954, P.655

5. Almond & Powel, Op. Cit. P.64

6. Cited by R. Singel, op. Cit.p.2

7. Almond & Powel, Op. Cit. pp. 65-69

8. R.E. Lene, Fathers and Sons, Foundations of Political Beliefs, in A.S.R. Vol. 24, 1959, pp. 502-11

9. Myron Weiner the politics of Scarcity, 1962,p. 185

7.12 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

4.ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस, डेविड ईस्टन

5.ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ, डेविड ईस्टन

7.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.राजनीतिक समाजीकरण को परिभाषित कीजिए | इसके विभिन्न अभिकरणों की विवेचना कीजिए |

इकाई 8 : राजनीतिक संस्कृति

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 राजनीतिक संस्कृति उपागम

8.4 राजनीतिक संस्कृति अर्थ एवं व्याख्या

8.5 संस्कृति एवं राजनीतिक संस्कृति

8.6 राजनीतिक संस्कृति के आधार

8.7 राजनीतिक संस्कृति के आयाम

8.8 राजनीतिक संस्कृति का वर्गीकरण

8.9 आमण्ड एवं वर्बा का राजनीतिक संस्कृति का विश्लेषण

8.10 सारांश

8.11 शब्दावली

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.13 संदर्भ ग्रंथ

8.14 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

8.5 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

आधुनिक राजनीति विज्ञान व्यवस्था के समग्र रूप में राजनीति का अध्ययन करता है और इस अध्ययन में राजनीति में समाहित मूल्यों, विश्वासों मान्यताओं एवं मानकों का विश्लेषण महत्वपूर्ण है। ये सभी तत्व मिलकर राजनीतिक संस्कृति का निर्माण करते हैं। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की जानकारी बिना उसकी राजनीतिक संस्कृति के नहीं की जा सकती। प्रत्येक व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार पर उसके सांस्कृतिक व्यवहार का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अतएव आधुनिक विचारकों में राजनीतिक व्यवस्था को जानने के लिए राजनीतिक संस्कृति नामक नवीन अवधारणा का सहारा लिया है जिसके आधार पर एक नया उपागम विकसित किया गया है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त निम्नलिखित के सन्दर्भ में जान सकेंगे

1.राजनीतिक संस्कृति उपागम

2.राजनीतिक संस्कृति अर्थ एवं व्याख्या

3.संस्कृति एवं राजनीतिक संस्कृति

4.राजनीतिक संस्कृति के आधार

5.राजनीतिक संस्कृति के आयाम

6.राजनीतिक संस्कृति का वर्गीकरण

7.आमण्ड एवं वर्बा का राजनीतिक संस्कृति का विश्लेषण

8.3 राजनीतिक संस्कृति उपागम

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त विश्व में नये-नये राज्य स्वाधीन होने लगे। इन स्वाधीन राज्यों की विकासशील प्रकृति आधुनिक राजनीति वैज्ञानिकों के लिए चुनौती का विषय बन गई। अब राजनीतिक व्यवस्थाओं को संविधानों, संरचनाओं तथा संस्थाओं के आधार पर समझना कठिन हो गया क्योंकि पश्चिमी देशों को विकसित एवं स्थिर राजनीतिक व्यवस्थाओं तथा विकासशील देशों को अस्थिर राजनीतिक व्यवस्थाओं में सिद्धान्त एवं व्यवहार की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर दिखाई देने लगा। अतएव धीरे-धीरे यह अनुभव किया गया कि मानव व्यवहार से सम्बद्ध अध्ययन ही विकासशील एवं विकसित देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं के अन्तर को नष्ट कर सकते हैं।

राजनीतिक संस्कृतिक इस दृष्टिकोण से उपयोगी है कि उसके अध्ययन से किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के मूल्यों, विश्वासों, मान्यताओं में व्याप्त प्रवृत्तियों को समझा जा सकता है तथा इसी के माध्यम से विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं को गतिशीलता तथा सक्रियता का भी पता लगाया जा सकता है।

8.4 राजनीतिक संस्कृति अर्थ एवं व्याख्या

राजनीतिक संस्कृति एक नवीन मनोसमाज शास्त्री शब्द है जिसमें अनेक अवधारणायें शामिल हैं जैसे राजनीतिक विचारवाद, राष्ट्रीय लोकाचार, राष्ट्रीय मनोविज्ञान तथा जनता के आधारभूत नैतिक मूल्य इत्यादि। इस अवधारणा का विकास राजनीतिक विश्लेषण के व्यवहारवादी उपागम के साथ हुआ है।

राजव्यवस्था के प्रति अभिमुखन को राजनीतिक संस्कृति कहा जाता है। इस धारणा को सबसे पहले जी0ए0 आमण्ड ने तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के लिए रखा था। इस सम्बन्ध में उसने 1956 में अपने एक लेख में विचार रखे थे। परन्तु राजसंस्कृति की अवधारणा सर्वथा नवीन या मौलिक नहीं है। प्राचीनकाल में हीरोडोटस प्लेटो, अरस्तू आदि ने तथा आधुनिक काल में डी टाम्बिल, ब्राइस, इमरसन, बेनेडिक्ट, मीड, फ्रोम आदि ने इस दिशा में अपने-अपने ढंग से चिन्तन किया है। उन्होंने मनोविश्लेषण तथा सांस्कृतिक मानवशास्त्र की दिशा में कार्य किया है। राजनैतिक क्षेत्र में कार्य पिछले दशकों में ही सम्पन्न हुआ है। राजनीतिक क्षेत्र की अपनी अलग संस्कृति है। उसके आचरण के लिए अलग नियम तथा सामाजीकरण की प्रक्रियायें हैं। उदाहरण के लिए उदारवादी लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में स्वतंत्रता, समानता, विधि शासन संविधानवाद, स्वतंत्र निर्वाचन, औचित्वपूर्ण सम्प्रभुता, राष्ट्रवाद, विरोधी दल इत्यादि राजसंस्कृति के अंग बन चुके हैं। आमण्ड तथा पावेल के अनुसार यह गुणों तथा अभिवृतियों का समूह होती है ।

राजनीतिक सस्कृति कि परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से की गई हैं:-

ए0 आर0 बाल के शब्दों में, ‘‘राजनीतिक संस्कृति उन मनोवृत्तियों , विश्वासों, मनोभावों तथा मूल्यों का संकलन है जिनका सम्बन्ध राजनीतिक व्यवस्था एवं समस्या से है।‘‘1

आमण्ड तथा पावेल के शब्दों में, ''यह किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के सदस्यों में राजनीति के प्रति पाई जाने वाली व्यक्तिगत मनोवृत्तियों तथा अभिमुखीकरण का स्वरूप है।''[2]

लूसियन डब्यू पाई के अनुसार, ''यह उन मनोवृत्तियों, विश्वासों तथा मनोभावों का संकलन है जो किसी राजनीतिक व्यवस्था को व्यवस्थित करता है तथा अर्थ प्रदान करता है तथा जो राजनीतिक व्यवस्था में व्यवहार को संचालित करने वाली मान्यतायें तथा नियम प्रदान करता है।''[3]

हींज यूलाऊ के शब्दों में, ''राजनीतिक संस्कृति उन रूपों की ओर इशारा करती है जिनका पूर्वानुमान समूहों के राजनीतिक व्यवहार से तथा एक समूह के सदस्यों के सामान्य विश्वासों, नियामक सिद्धान्तों, उद्देश्यों एवं मूल्यों से लगाया जा सकता है, चाहे उस समूह का आकार कुछ भी क्यों न हो।''[4]

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि किसी भी समाज के लोगों में एक सामान्य स्वभाव पाया जाता है। यह सामान्य मानव स्वभाव कुछ मूल्यों विश्वासों तथा मनोंभावों के रूप में अपने को अवगत कराते हैं। ये मूल्य विश्वास ताकि मनोभाव पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहते हैं। उनमें केवल थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहता है। उसे ही हम साधारण शब्दों में हम समाज की सामान्य संस्कृति कहते हैं। इस सामान्य संस्कृति के कुछ पहलू केवल सरकार की संरचना तथा उसके उद्देश्य से सम्बन्धित रहते हैं। संस्कृति के इसी भाग को हम राजनीतिक संस्कृति कहते हैं जो राजनीतिक क्रियाओं को सार्थकता प्रदान करता है। इसके प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं:-

1.राजनीतिक संस्कृति का मूल आधार व्यक्ति एवं समाज के राजनीतिक मूल्य एवं विश्वास होते है जो अमूर्त नैतिक धारणा से सम्बद्ध होते हैं। इन्हें तो मात्र समझा एवं अनुभव किया जा सकता है।

2.राजनीतिक संस्कृतिसामान्य संस्कृति के ही समान अनेक तत्वों का सामूहिक एवं समन्वित रूप है।

3.राजनीतिक संस्कृति के तत्व निरन्तर गतिशील एवं विकासशील होते हैं तथा समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तनशील होते हैं।

8.5 संस्कृति एवं राजनीतिक संस्कृति

राजनीतिक संस्कृति का अर्थ जानने के लिए सामान्य संस्कृति में उसका अन्तर जानना आवश्यक है। राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का अभिन्न अंग है। सामान्य संस्कृति के अन्तर्गत मानव के सभी दृष्टिकोण उसके राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित नहीं करते, केवल व्यक्तिगत मूल्य विश्वास तथा मनोवृत्ति ही इस अर्थ में संगत है। अतएव राजनीतिक संस्कृति का अध्ययन करते समय हमें राजनीति से सम्बन्धित अन्य तत्वों की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

संस्कृति को स्थायी बनने, प्रसारित तथा उत्तरजीवित रहने के लिए राजनीतिक एवं प्रशासनिक संरचनाओं का सहारा लेना पड़ता है। सिडनी वर्बा ने ठीक ही लिखा है कि आधुनिक शताब्दी में राजनीतिक जगत तथा उसके अध्ययन क्षेत्र दोनों में ही तीव्र परिवर्तन हुए है। नये राष्ट्र पैदा हूए हैं, पुरानों में परिवर्तन हुआ है तथा ऐसी समस्यायें उठी हैं जो राजनीतिज्ञों एवं वर्तमान संस्थाओं की क्षमता को चुनौती है। इन समस्याओं पर विचार करने के लिए आज राजनीतिक संस्कृति नामक

दृष्टिकोण की अध्ययन किया जाता है। सामान्य संस्कृति की अपेक्षा राजनीतिक संस्कृति प्रगतिशील अथवा रूढ़िवादी हो सकती है। उदाहरण के लिए भारतीय राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति के अपेक्षा अधिक गतिशील एवं प्रगतिशील मानी जा सकती है जबकि बर्मा, नेपाल तथा इण्डोनेशिया की संस्कृति इसके विपरीत कही जायेगी। पाई के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वयं के ऐतिहासिक प्रसंग, अपने समाज तथा उसके लोगों की राजनीतिक के बारे में ज्ञान तथा भावनाओं को जानना तथा व्यक्तित्व में संयुक्त करना चाहिए।[5]

राजनीतिक संस्कृति राजनीति को व्यक्तिनिष्ठ अभिमुखन प्रदान करती है। इसी दृष्टिकोण के सहारे आज राजनीतिक व्यवस्थाओं की व्याख्या की जा रही है। राजसंस्कृति के विश्लेषण में विभिन्न वर्गों, दबावों, समूहों, संघों, साम्प्रदायिक दलों से सम्बन्धित अराजनीतिक संस्कृति की अवहेलना नहीं की जा सकती। प्रत्येक पीढ़ी सामाजीकरण के माध्यम से राजसंस्कृति को प्राप्त करके, उसे आत्मसात करने के उपरान्त उसमें संशोधन परिवर्तन आदि करती रहती है। इस प्रकार नये पुरानों का, परम्परा एवं आधुनिकता का संघर्ष चलता रहता है।

अतएवं विभिन्न दृष्टिकोणों से राजनीतिक संस्कृति महत्वपूर्ण है तथा इसके बिना किसी राजनीतिक व्यवस्था का पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता है। राजनीतिक संस्कृति के दृष्टिकोण में यह देखना महत्वपूर्ण है कि कौन से पहलू किस घटना के निर्धारक है। यहाँ पर हम ल्यूसियन डब्ल्यू पाई तथा सिडनी वर्बा को ले सकते हैं। जिन्होंने जापान, इंग्लैण्ड, टर्की, भारत, सोवियत, रूस आदि देशों के रजनीतिक परिवर्तन के साथ सांस्कृतिक पहलू को जोड़ा हैं राजनीतिक संस्कृति के निम्नलिखित विशिष्ट पहलू हैं:-

1.राजनीति के अध्ययन के अधिकांश दृष्टिकोण राजनीतिक अन्तः क्रियाओं तथा राजनीतिक संस्थाओं के प्रतिरूपों से सम्बन्धित हैं जबकि राजनीतिक संस्कृति इन प्रतिरूपों के सम्बन्ध में विश्वासों की व्यवस्था करती है।

2. राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक घटनाओं तथा उन घटनाओं की प्रतिक्रियाओं में लोगों के व्यवहार के बीच महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करती है।

3.राजनीतिक संस्कृति नियंत्रण की व्यवस्था बनाम राजनीतिक, अन्तः क्रिया की व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। यह इस बात का पता लगाती है कि किसने किससे बात को तथा किसने किसको प्रभावित किया है।

इस प्रकार राजव्यवस्था राजनीतिक संस्कृति से व्याप्त एवं प्रभावित रहती है। राजविश्लेषण को राजसंस्कृति की प्रकृति तथा उसके राजव्यवस्था तता राजनेताओं पर प्रभाव की मात्रा, दिशा आदि का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। इससे राजनीतिक एव अराजनीतिक तत्वों की प्रक्रियाओं के तारतम्य का पता चल जाता है।

राजनीतिक विकास का मार्ग भी राजसंस्कृति की अनुकूलता को ढूँढता है। ऐसा न हो पाने पर वह स्वयं राजसंस्कृति को ही बदलने का प्रयास करता है। वर्तमान समय में पाकिस्तानी राजनीतिक व्यवस्था में हुआ परिवर्तन इसका ज्वलंत उदाहरण है।

8.6 राजनीतिक संस्कृति के आधार

प्रत्येक समाज की अपनी एक विशिष्ट राजनीतिक संस्कृति होती है। इसके अन्तर्गत राजनीतिक आदर्श एवं राज्य व्यवस्था के प्रचलित मानकों का समावेश है। इसलिए लूसियन डब्ल्यू पाई का कहना है कि राजनीतिक संस्कृति राजनीति के मनोवैज्ञानिक एवं आत्मनैष्ठिक आयामों की समष्टिगत अभिव्यक्ति है।[6] अतः सार्वजनिक घटनाओं, अनुभवों, मानकों तथा सामाजिक मूल्यों में राजनीतिक संस्कृति की नींव होती है। इसके प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं:-

1.ऐतिहासिक विकास

राजनीतिक संस्कृति का सर्वप्रथम आधार समाज का ऐतिहासिक विकास होता है। विभिन्न देशों के ऐतिहासिक अनुभव इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। ब्रिटेन में आधुनिक राजनीतिक संस्कृति का विकास रक्त विहीन क्रांति से हुआ है, अतएव वहाँ सत्ता परिवर्तन होने पर भी राजनीतिक निरन्तरता एवं स्थिरता बनी रहती है। फ्रांस की सूनी क्रांति (1789) ने वहाँ राजनीतिक दृष्टिकोण से नये मूल्यों का सृजन किया है।[7] इसी प्रकार उत्रीसवीं शताब्दी से जर्मनी के एकीकरण तथा राष्ट्रवादी भावनाओं ने एक विस्तृत संस्कृति को जन्म दिया। प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हिटलर के उदय ने इस दिशा मे नया मापदण्ड स्थापित किया। इसी प्रकार अफ्रीका, एशिया एवं लैटिन अमेरिकी देशों में राजनीतिक विकास के पीछे औपनिवेशक शासन एक प्रमुख आधार रहा है।

2.भौगोलिक संरचना

राजनीतिक संस्कृति के निर्माण का दूसरा महत्वपूर्ण आधार किसी राष्ट्र की भौगोलिक स्थिति होती है। ब्रिटेन तथा जापान की भौगोलिक स्थिति ने उन्हें वाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखा है। अमेरिकी संस्कृति में सजातीय विभित्रताओं के बावजूद प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता एवं वाह्य आक्रमण से सुरक्षा ने स्वतंत्रतावादी राजनीतिक मूल्यों का आत्मसात करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय राजव्यवस्था में पूर्वोत्तर राज्यों एवं कश्मीर का सामरिक महत्व हमें इन क्षेत्रों के भौगोलिक राजनैतिक महत्व पर विचार करने का उत्प्रेरित करता है। ब्रिटेन की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति ने ही वहाँ अन्य यूरोपीय राज्यों से भिन्न राजनीतिक संस्कृति को जन्म दिया है।[8]

3.सामाजिक आर्थिक संरचना

किसी भी राष्ट्र के सामाजिक आर्थिक विकास का उसकी राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। औद्योगीकृत तथा नागरीकृत सामाजों में राजनीतिक विकास की मात्रा एवं साधनों की प्रचुरता होती है, अतएव वहां की राजनीतिक संस्कृति अधिक सहभागी एवं व्यापक होती है। यहां पर संघों एवं समुदायों की अधिकता राजनीतिक संस्कृति को नया आयाम देती है। इसी प्रकार ग्रामीण समाजों में रूढ़िवादी एवं संकीर्ण संस्कृति के दर्शन होते हैं जो परिवर्तन एवं नवीनता के

प्रति उदासीन होती है। इसी प्रकार वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास संचार तथा यातायात इत्यादि का भी राजनैतिक मूल्यों, विश्वासों तथा मान्यताओं पर प्रभाव पड़ता है।

4.समाज एवं सामान्य संस्कृति का आधार

राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति से प्रभावित रहती है तथा किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक संस्कृति तभी प्रभावकारी सिद्ध हो सकती है जब वह सामान्य संस्कृति के मूल्यों एवं मान्यताओं से अपने आपको ढाल लेती है। अधिकांश विकासशील देशों में राजनीतिक अशान्ति का वातावरण मात्र इसलिए विद्यमान है क्योंकि वहां की आधुनिक राजनीतिक संस्कृति का सामान्य संस्कृति से तादात्म्य न ही स्थापित हो सका है तथा यही कारण है कि वहां राजनीतिक व्यवहार के निश्चित प्रतिमान विकसित नहीं हो पाये हैं। रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक भारत की राजनीति में भारतीय राजनीतिक संस्कृति पर सामान्य संस्कृति के प्रभाव की चर्चा की है।

5.धार्मिक विश्वास

राजनीतिक संस्कृति के ऊपर धार्मिक विश्वासों का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जिन राज्यों में इस्लाम धर्म, ईसाई मिशनरियों तथा अन्य धार्मिक संगठनों की प्रबलता है वहां यह प्रभाव नितान्त स्पष्ट है। धीरे-धीरे यह प्रभाव कम हो रहा है क्योंकि आधुनिक राजनीतिक संस्कृति में धर्मनिरपेक्षता के तत्व परिलक्षित होते हैं।

6.विचारधाराओं का आधार

वर्तमान समय में विचारधारा प्रमुखतया राजनीतिक विचारधारा राजनीतिक संस्कृति की एक नियामक शक्ति बन गई है। नाजीवादएन फासीवाद ने क्रमशः जर्मनी एवं इटली की राजनैतिक संस्कृति को प्रभावित किया था। साम्यवाद ने भी रूस, चीन तथा पूर्वी यूरोपीय देशों की राजनैतिक संस्कृति को प्रभावित किया था। लोकतंत्र के बढ़ते प्रभाव ने भी राजनीतिक संस्कृति के स्वरूप में विश्वव्यापी परिवर्तन किया था।

इसके अतिरिक्त जातीय नस्लीय सदस्यता आदि भी राजनीतिक संस्कृति के निर्माणकारी तत्व का कार्य करते हैं।

राजनीतिक संस्कृति के कुछ महत्वपूर्ण चिह्न भी हैं तथा राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गान, राष्ट्रीय पक्षी, पशु आदि। ब्रिटेन, जापान, नेपाल आदि देशों में राजतंत्र भी राजनीतिक संस्कृति का प्रतीक है। कुछ राज्यों की राजनीतिक संस्कृति में पौराणिक या कल्पित कथाओं का भी महत्व होता है।

8.7 राजनीतिक संस्कृति के आयाम

राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक व्यवस्था के भीतर वस्तुओं के प्रति व्यक्तियों की मनोवृत्तियों एवं अभिमुखों से निर्मित होती है। इनके तीन भिन्न आयाम होते हैं:-

1.ज्ञानात्मक अभिमुखीकरण

राजनीतिक व्यवस्था के भीतर वस्तुओं के प्रति व्यक्तियों के ज्ञान को ज्ञानात्मक अभिमुखीकरण कहते हैं। इसके द्वारा व्यवस्था के नियमों, भूमिकाओं तथा निर्गत कार्यो का बोध होता है। कोई

राजनीतिक व्यवस्था किस प्रकार कार्य कर रही है, इसके प्रमुख एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों की जानकारी, नीति, सम्बन्धी प्रमुख समस्यायें इत्यादि के उच्चस्तरीय ज्ञान को ज्ञानात्मक अभिमुखीकरण कहते हैं।

2.भावात्मक अभिमुखीकरण

इसके अन्तर्गत व्यवस्था की वस्तुओं के प्रति व्यक्तियों को भावनाओं का बोध होता है। यह भावनायें सम्बद्ध या असम्बद्ध स्वीकृत या अस्वीकृत रूप में हो सकती है।

3.मूल्यात्मक अभिमुखीकरण

मूल्यात्मक अभिमुखीकरण का आशय व्यवस्था के नैतिक मूल्यांकन से है। व्यक्ति अपने मूल्यों भावनाओं, मान्यताओं तथा सूचनाओं के आधार पर व्यवस्था सम्बन्धी तथ्यों का मूल्यांकन करता है।

आमण्ड के मत में उपर्युक्त तीनों आयाम अन्तः सम्बन्धित है। इन तीनों आयामों के द्वारा ही किसी राजनीतिक व्यवस्था की राजनीतिक संस्कृति की जानकारी मिलती है। किसी भी राजनीतिक विषय व वस्तु के प्रति व्यक्ति की संवेदनाओं एवं अभिमुखताओं का उपर्युक्त तीनों आयामों के अन्तर्गत देखा एवं विश्लेषण किया जा सकता है। इनकी प्रकृति एवं मात्रा भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न होती हैं। इसलिए राजनीतिक संस्कृति में भी विभिन्नता होती है।

8.8 राजनीतिक संस्कृति का वर्गीकरण

आमण्ड तथा वर्बा ने अपनी पुस्तक में पश्चिमी देशों की राजनीतिक संस्कृतियों का अध्ययन कर उसे वर्गीकृत किया है।[9]

1.संकीर्ण राजनीतिक संस्कृति

यह संस्कृति पर मरावादी समाजों में पाई जाती है जहां विशेषीकरण कम होता है और वहां संचालकों को राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक भूमिकाओं का एक साथ निर्वाह करना पड़ता है।[10] वे राष्ट्रीय राजनीतिक संस्थाओं एवं राष्ट्रीय प्रश्नों एवं नीतियों के प्रति अनभिज्ञ रहते हैं तथा अपने आपको इन्हें प्रभावित करने योग्य नहीं समझते हैं।

संकुचित राजनीतिक संस्कृति का प्रमुख लथ्तव यह है कि इसके अन्तर्गत व्यक्तियों को अपनी राजनीतिक व्यवस्था और उसकी प्रकृति के बार में सम्पूर्ण ज्ञान नहीं होता। इसमें व्यक्ति का दृष्टिकोण अपने परिवार ग्राम अथवा जातिगत सीमाओं तक ही आबद्ध रहता है। उसके लिए अपनी ही आवश्यकतायें महत्वपूर्ण होती हैं तथा उसे अपने परिवार एवं जातिगत समुदाय की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में अधिक आनन्द मिलता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं के प्रयत्नों पर निर्भर नहीं करता बल्कि अपने परिवार तथा जातिगत समुदाय पर अधिक निर्भर करता है। स्वाभाविक है कि ऐसी संस्कृति अविकसित समाजों में पाई जाती हैं। एशिया, अफ्रीका के विकासशील देशों में ऐसी संस्कृति पाई जाती है। भारत में परम्परागत ग्रामीण समाजों, पिछड़े एवं जनजाति इलाकों तथा सम्प्रदायिक कट्टरवादियों में ऐसे व्यक्तियों को देखा जा सकता है।

2.प्रजाभावी संस्कृति

इस प्रकार की संस्कृति में नागरिक राजनीतिक व्यवस्था तथा उसके निर्गतों के बारे में पूर्णतया अवगत रहते हैं तथा इनका समर्थन या विरोध करते हैं, परन्तु उन्हें संस्थाओं के संचालन की अधिक जानकारी नहीं होती। इसका परिणाम यह होता है कि इस प्रकार की संस्कृति में निवेशन संस्थायें अत्यन्त दुर्बल होती हैं तथा नागरिकों के जीवन पर निर्गत कार्यो का अधिक प्रभाव होता है।

प्रजाभावी संस्कृति में नागरिकों में राजनीतिक निष्क्रीयता पाई जाती है। वे निवेश सम्बन्धी संरचनाओं में भाग नहीं लेते तथा एक प्रकार से उनके अन्दर राजनीतिक विचारों को निर्देशित करने की क्षमता ही नहीं होती न ही उत्साह रहता। उनकी स्थिति ''कोऊ नृप होय हमहि का हानि'' सदृश होती है वे स्थापित राजनीतिक व्यवस्था को ही स्वीकार करते हुए उनके अनुरूप अपने को ढालने का प्रयत्न करते हैं। प्रो0 मुखोपाध्याय के अनुसार प्रजाभावी राजनीतिक संस्कृति पूर्वी यूरोप के राज्यों में तथा एशिया एवं अफ्रीका के अधिकांश नव स्वतंत्रता प्राप्त देशों में पाई जाती है।

3.सहभागी संस्कृति

इस प्रकार की संस्कृति में नागरिक राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार की संस्कृति विकसित समाजों में अधिक पाई जाती है। नागरिक राजनीतिक वस्तुओं के बारे में अधिक अवगत एंव अर्न्तग्रस्त होते हैं। डेविस एवं लेविस के अनुसार, ''हर स्तर पर व्यवस्था का मूल्यांकन एवं उसकी आलोचना की जाती है और आम तौर पर इसे विवेकपूर्ण समझकर स्वीकार किया जाता है कि राजनीतिक क्रिया कलाप को समाज के भीतर व्यक्तियों तथा वर्गो की घनिष्ठ संवीत्रा के अधीन होना चाहिए''11 अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस तथा स्कैण्डिनेवियन देशों में सहभागी संस्कृति की मात्रा अत्यधिक देखने को मिलती है।

राजनीतिक संस्कृति की उपर्युक्त तीनों श्रेणियाँ अपने आदर्श रूप में बहुत कम पाई जाती है। इन तीनों का मिश्रित रूप ही अधिकतर पाया जाता है। आमण्ड तथा वर्षा ने मिश्रित श्रेणियों की राजनीतिक संस्कृतियों के निम्न प्रकार बतलाये हैं:-

8.9 आमण्ड एवं वर्बा का राजनीतिक संस्कृति का विश्लेषण

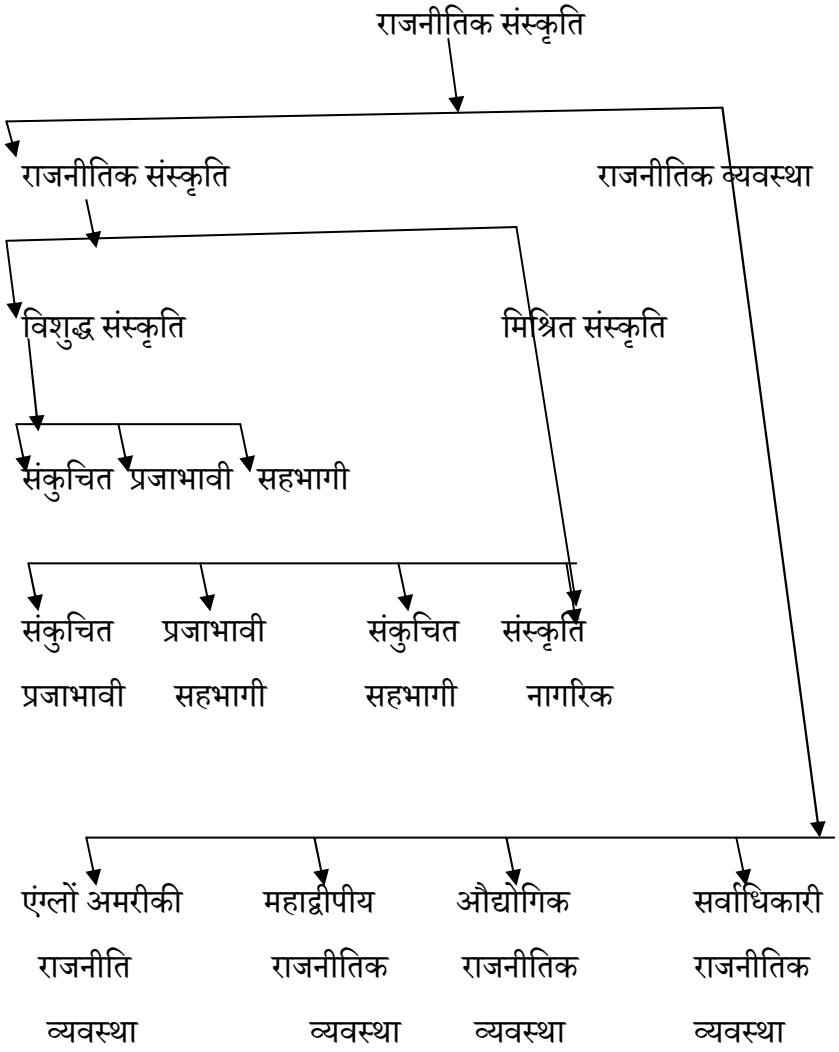

1.संकुचित प्रजाभावी संस्कृति

ऐसी संकुचित संस्कृतियों में धीरे-धीरे विशिष्ट सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिष्ठा विकसित होने लगती है। ऐसी व्यवस्थाओं में राजनीतिक दल एवं प्रभाव समूह भी अविकसित अवस्था में होते हैं। राजतंत्र के निर्माण के चरणों में इस प्रकार की संस्कृति पाई जाती है।

2.प्रजाभावी सहभागी संस्कृति

इस प्रकार की संस्कृति में नागरिक राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय एवं निष्क्रीय भागों में विभाजित होते हैं। राजनीतिक दृष्टि से जागरूक एवं सक्रिय नागरिक राजनीतिक विषयों के प्रति संवेदनशील होते हैं

तथा उनमें राजनीतिक कुशलता भी अत्यधिक होती है। 19वीं सदी के पश्चात् फ्रांस, जर्मनी तथा इटली आदि देशों में इस प्रकार की संस्कृति पाई जाती है।

3.संकुचित सहभागी

इस प्रकार की संस्कृति में निवेशन संस्थायें तो प्रायः संकीर्ण होती हैं, परन्तु राष्ट्रीय निर्गत संस्थायें काफी विकसित होती है। नागरिकों को जन प्रदर्शनों राष्ट्रीय सन्देशों तथा राष्ट्रीय चुनावों में राजनीतिक सहभागी के लिए अधिकाधिक प्रेरित किया जाता है। फिर भी निवेश एवं निर्गत संगठन स्थानीय एवं संकुचित हितों द्वारा प्रभावित होते हैं, जिससे राष्ट्रीय सहभागी अपयवों के रूप में इनके निष्पादन में बाधा पहुँचती है। इस प्रकार की संस्कृति विकासशील देशों के सैन्यबलों, विभागीय तंत्र तथा राजनीतिक दलों में देखी जा सकती है।

4.नागरिक संस्कृति

इस संस्कृति में तीनों प्रकार की संस्कृतियों के विशुद्ध लक्षण पाये जाते हैं। इस प्रकार की संस्कृति में नागरिकों में राजनीतिक प्रभाविता की भावना तथा अन्य लोगों पर विश्वार करने की भावना होती है। इस संस्कृति में नागरिकों के पास प्रभाव का भण्डार होता है तथा वे सक्रिय रूप से राजनीतिक जीवन तथा गैर राजनीति संस्थाओं में पर्याप्त रूप से रूचि रखते हैं। इसमें प्रजाभावी तथा सहभागी तत्व समान रूप से सक्रिय रहते हैं। इस प्रकार की संस्कृति काफी सीमा तक ब्रिटेन एवं अमेरिका में पायी जाती है।

आमण्ड के अनुसार राजनीतिक संस्कृतियाँ एवं संरचनायें कभी स्थायी नहीं होती। किसी भी समाज में संस्कृति का निर्धारण विभिन्न तत्वों से होता है और इनमें परिस्थितियों के अनुरूप पर्याप्त अन्तर पाया जाता है।

आमण्ड [12] ने राजनीतिक व्यवस्थाओं का प्रारूपात्मक चित्रण भी प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है:-

1. आंग्ल-अमरीकी राजव्यवस्था

ब्रिटेन तथा अमेरिका जैसे विकसित देशों में इसी प्रकार की संस्कृति पाई जाती है। यह संस्कृति समरसतापूर्ण है। इसमें आधुनिक परम्परागत तथा धर्मनिरपेक्ष तत्वों का पूर्ण समन्वय हो गया है। यह बहूमूल्य, सजातीय, विवेक सम्मत तथा प्रयोगात्मक है और उसे प्राप्त करने के बारे में राजनीतिक साध्यों एवं साधनों के बारे में आम सहमति पाई जाती है।

यहाँ सत्ता तथा प्रभाव का विसरण होता है। अतएव वहाँ नियंत्रण एवं सन्तुलन का पूर्ण एवं सुचारू ढंग से कार्य करने वाली व्यवस्था पाई जाती है। इसमें समाज का बहुवादी स्वरूप होता है। इनमें विभिन्न भूमिकाओं का व्यक्तीकरण होता है एवं उनकी व्यवस्था बनी रहती है। अलग-अलग संस्थायें अलग-अलग कार्य करती है। वे अन्य संस्थाओं के कार्य भी कर सकती हैं जिसके परिणाम स्वरूप प्रशासक एक सिथति में विधायक तथा दूसरी में न्याय निर्णायक बन जाते हैं अथवा नौकरशाह एक लिहाज से विधायक और दूसरे लिहाज से न्याय-निर्णायक हो जाते हैं और इस तरह उनकी भूमिकाओं में भी परिवर्तन होता रहता है।

यहाँ कभी-कभी दलीय व्यक्तियों को भी मान्यता रहती है। तथा विभिन्न प्रकार के दबाव समूह पाये जाते हैं।

2.महाद्वीपीय यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था

इस प्रकार की रजनीतिक व्यवस्थायें फ्रांस, इटली, स्वीडन, नार्वे, जर्मनी इत्यादि यूरोप के अपेक्षाकृत कम विकसित देशों में पाई जाती हैं। यहाँ समाज के विभिन्न वर्ग सांस्कृतिक विकास के विभिन्न प्रतिमानों की स्थापना करते हैं। यहाँ पर कई वर्ग अन्य वर्गों की अपेक्षा अधिक विकसित होते हैं जिससे वहाँ राजनीतिक संस्कृति खंडित हो जाती है। परिणाम स्वरूप यहाँ पर राजनैतिक संस्कृति में तनाव पाया जाता है और उसका विकास असन्तुलित होता है। यहाँ राजनैतिक उपसंस्कृतियों में उग्रता पाई जाती है। प्रत्येक राजनीतिक उपसंस्कृति भूमिकाओं की अलग उपव्यवस्था का विकास कर लेती है जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न संस्कृतियों सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु बन जाती है। यहाँ राजनैतिक समस्याओं में विभिन्न उपसंस्कृतियों तथा राजनीतिक व्यवस्था के अस्तित्व का सम्बन्ध होता है। साथ ही विचारधारा के स्तरों व राजनैतिक संगठनों में भी तनाव होता है। राजनैतिक नेताओं का संसद एवं चुनावों के प्रति अधिक सम्मान नहीं है। वे रंगमंच पर आदान-प्रदान, समझौते तथा एक सन्तोषप्रद विनिश्चय करने हेतु नहीं बल्कि उपदेश देने, चेतावनी देने, परिवर्तन करने तथा राजनीतिक निर्गतों के आदान-प्रदान करने हेतु आते हैं साथ ही नीति-निर्माण में नौकरशाही का प्रभुत्व मिलता है।

3. अपश्चिमी या औद्योगिक राजनीतिक व्यवस्था

इस श्रेणी में वे देश आते हैं जो लम्बे समय तक विदेशी नियंत्रण रहने के उपरान्त स्वतंत्र हुए हैं। ऐसी राजनीतिक व्यवस्था में शासक का राजनीतिक संस्कृति को शासितों की राजनीतिक संस्कृति पर आरेपित कर दिया जाता है। यहाँ सत्ता की व्यवस्था करिश्मा के रूप में उभरती है। यही कारण है कि अनिश्चय एवं अस्थिरता अवश्यभावी होता है। राजनीतिक हित प्रायः अप्रत्यक्ष होते हैं। राजनीतिक नेतृत्व पुराने एवं नये मूल्यों के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं तथा उस व्यवस्था को औचित्यपूर्णता प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं। वहाँ राजनीतिक भूमिकाओं की संरचना मिश्रित पाई जाती है। विशेष परम्पराओं का सम्मान एवं पश्चिमी लोकतंत्र के तरीकों का अनुसरण करते हुए एक विशेष परिवार अथवा विशेष जाति सत्तारूढ़ रह सकती है।

4.सर्वाधिकारवादी राजनैतिक व्यवस्थायें

यहाँ राजनीतिक संस्कृति की एकता अत्यन्त ही सामंजस्यपूर्ण कही जा सकती है। इनकी औचित्यपूर्णता की स्वीकार्यता को कृत्रिम तरीके से तैयार किया जाता है। यहाँ ऐच्छिक संस्थायें नहीं पायी जाती तथा संचार पर केन्द्र का नियंत्रण होता है। राजव्यवस्था मतैक्य एवं मतभेदविहीन होती है। शान्ति का सर्वकेन्द्रण होता है जो प्राधिकार के विसरण के सिद्धान्त को नकारता है। सत्तारूढ़ व्यक्ति

नौकरशाही, पुलिस एवं सेना के समर्थन पर निर्भर करते हैं। फासीवादी इटली नाजीवादी जर्मनी तथा रूस एवं चीन की साम्यवादी व्यवस्था इसका उदाहरण हैं।

परन्तु आमण्ड के उक्त संरचनात्मक वर्गीकरण को अनेक राजनीतिशास्त्रियों ने अस्वीकार कर दिया है। उसके अनुसार राजनीतिक संस्कृति राजव्यवस्था के अधीन न रहते हुए अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती है तथा राजव्यवस्था की नीतियों, निर्णयों एवं कार्यकारी क्षमता को निरन्तर प्रभाव में रखती है। डॉ0 एस पी0 वर्मा के अनुसार राजनीतिक संस्कृति में न केवल राजनीति के प्रति अभिवृत्तियाँ, राजनीतिक मूल्य, विचारधारायें, राष्ट्रीय चरित्र तथा सांस्कृतिक आचारतत्व सम्मिलित हैं बल्कि उसमें राजनीति की शैली विधियाँ एवं सारवन रूप भी आते हैं। एस0 ई0 फाइनर ने चार संवर्गो में विभिन्न राजसंस्कृतियों को रखा है[13]

1.परिपक्व, 2.विकसित, 3.निम्न, 4.पूर्व फ्रांसीसी क्रान्ति समस्तरीय

मूल्यांकन

अतएव यह एक सर्वविदित तथ्य है कि राजनीतिक संस्कृति ने आधुनिक राजनीति विज्ञान के अध्ययन में क्रान्तिकारी योगदान दिया है। आमण्ड एवं पावेल के अनुसार, ''यह हमें मूल्यवान संकल्पनात्मक उपकरण प्रदान करता है जिसकी सहायता से राजनीतिक सिद्धान्त में सूक्ष्म वृहद की खाई को बाटा जा सकता है'' [14]

डा0 एस0 पी0 वर्मा ने इस उपागम के बारे में आग्रह करके राजनीति विज्ञान को एक अधिक पूर्ण सामाजिक विज्ञान बना दिया है।

1.इसने संयुक्त सूक्ष्म-वृहद उपगम के बारे में आग्रह करके राजनीति विज्ञान को एक अधिक पूर्ण सामाजिक विज्ञान बना दिया है।

2.इसने हमारा ध्यान व्यक्ति से भिन्न गतिशील सामूहिक अस्तित्व के रूप में राजनीतिक समुदाय या समाज के अध्ययन पर क्रेन्द्रित किया है। इस प्रकार इसने सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को हमारे अध्ययन का विषय बना दिया है।

3.इसने राजनीतिशास्त्रियों को उन सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया है जो किसी देश की राजनीतिक संस्कृति को व्यापक आकार देने के लिए उत्तरदायी हैं।

4.इसके द्वारा मानव व्यवहार का अध्ययन के लिए उन कारकों का प्रयोग किया गया है जिसके माध्यम से अनुभव प्रधान अनुसंधान किया जा सकता है।

5.इसके द्वारा हमें राजनीतिक विकास तथा राजनीतिक क्षय की दशाओं का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

फिर भी राजनीतिक संस्कृत उपागम की कुछ सीमाएँ हैं:-

1.अनेक विद्वानों का विचार है कि राजनीतिक संस्कृति के सर्वमान्य संकेतक निर्धारित नहीं हो पाये हैं, इसलिए इसकी अध्ययन पद्धतियों पर एकमतता का आभाव पाया जाता है। वस्तुतः यह पुराने विचारों को ही नया नाम देने का प्रयास है।

2.राजनीतिक संस्कृति उपागम पर भी अनुदार, प्रतिक्रियावादी तथा प्रगति विरोधी होने का आपेक्ष लगाया जाता है। आमण्ड एवं पावेल का भी मानना है कि इस उपागम को मानव-व्यवहार का सही मापक यंत्र नहीं समझा जा सकता। [16] कई बार मानव व्यवहार का पूर्वानुमान करना सम्भव नहीं हो पाता है। अतएव यह उपागम अपने आप में अत्यन्त सीमित हो जाता है।

3.इस उपागम से राजनीतिक व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव नहीं दिखाई देता। इस उपागम के समर्थकों ने जिन-जिन परिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है वे अस्पष्ट एवं अपरिशुद्ध हैं जिससे तुलनात्मक राजनीति के छात्रों को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वस्तुतः यह उपागम राजनीतिक व्यवस्थाओं का वर्गीकरण करने में सहायक नहीं है।

4.राजनीतिक संस्कृति निरन्तर अधिक जटिल, गहन एवं विकसित होती जाती है तथा उसकी संस्थाओं एवं संरचनाओं का निरन्तर विकास होता है। ऐसी स्थिति में सिद्धान्त निर्माण का कार्य बहुत अधिक कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त प्रायः राजनीतिक संस्कृति राजनैतिक संरचनाओं की निर्दिष्ट तथा निर्धारक तत्व भी मानी जाती है तथा साथ ही साथ सांस्कृतिक मूल्यों का परिणाम भी है। यह निश्चित रूप से मौलिक तार्किक दुर्बलता है।

5.राज संस्कृति का विश्लेषण करने में कठिन समस्या उस समय उत्पन्न होती है जब शासकों एवं शासितों की राजनीतिक संस्कृति में पर्याप्त अन्तर हो। लुसियन डब्ल्यू पाई का मानना है कि किसी भी समाज में शासकों एवं जनता की राजसंस्कृतियों में पर्याप्त अन्तर नहीं पाया जाता है।[17] परन्तु जैसा कि दयाकृष्ण जी ने अपनी पुस्तक में सवाल उठाया है कि इनमें किस राजनैतिक संस्कृति की राजनीतिक विकास के लिए अधिक संगत समझा जाये।[18] वास्तव में यह एक गम्भीर एवं असमंजसपूर्ण अवस्था हैं

अभ्यास प्रश्न

१.'Civic Culture'पुस्तक किसने लिखा है ?

8.10 सारांश

उक्त अध्ययन के आधार पर कह सकते हैं कि राजनीतिक संस्कृति की धारणा का बहुत अधिक महत्व है। जैसा कि डेविस एवं लेबिस ने कहा भी है, ''राजनीतिक संस्कृति की संकल्पना उस कठोरता एवं विशदता को प्राप्त करने का प्रयास है जो अन्य संकल्पनाओं में नहीं है।''[19] वस्तुतः राजनीतिक संस्कृतिक राजनीतिक क्षेत्र को वह दिशा प्रदान करती है जिसके द्वारा औचित्यपूर्णता सम्प्रभुता, राष्ट्रवाद तथा विधि शासन जैसी अवधारणाओं का विश्लेषण किया जा सकता है। एरिक रोवे के शब्दों में ''राजनीतिक व्यवहार का आधार राजनीतिक संस्कृति में होता है।''[20] लसियन डब्ल्यू पाई के शब्दों में, ''राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा एक उपयोगी कड़ी प्रदान करती है

जिसके द्वारा हम समाजिक आर्थिक तत्वों तथा राजनीतिक कार्य निष्पादन के मध्य एक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।''[21]

राजनीतिक संस्कृति के महत्व को देखकर राजनीति वैज्ञानिक उससे सम्बद्ध एक सिद्धान्त के विकास के प्रयास में लगे हुए हैं। आमण्ड, बर्वा पाई, स्काट, रोज, बार्धून इत्यादि विद्वानों ने इस दिशा में प्रमाणित शोध प्रस्तुत किये हैं।

इनमें सर्वाधिक उपयोगी लूसियन डब्ल्यू पाई तथा सिडनी वर्बा द्वारा सम्पादित ग्रन्थ 'पालिटिकल कल्चर एण्ड पॉलिटिकल डेवलपमेंट' महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ में इंग्लैण्ड, जापान, जर्मनी, टर्की, भारत, इथिपोपिया, इटली, मैक्सिको, मिश्र तथा सोवियत संघ से सम्बन्धित विभिन्न निबन्ध संग्रहीत हैं। अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थों में रजनी कोठारी की पुस्तक 'Civic Culture' प्रमुख है। डॉ0 एस0 पी0 वर्मा ने भी अपनी पुस्तक ''मार्डन पॉलिटिकल थ्योरी'' में राज संस्कृति के विविध पक्षों का विशद विवेचन प्रस्तुत किया है।

8.11 शब्दावली

राजनीतिक संस्कृति -राजव्यवस्था के प्रति अभिमुखन को राजनीतिक संस्कृति कहा जाता है।

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. रजनी कोठारी

8.13 संदर्भ ग्रंथ

1." A Political Culture is composed of the attitudes beliefs, emotions and value of societies to the political system and to the political issues,"-A.R. Ball, Modern Politics and Gout, 1971, P.56

2- "It is defined as the pattern of individual attitudes and orientations towards politics against the principles of political system."- Almond and Powell Comparative Politics. A Development Approach, 1966 p. 50

3-It is collection of " all attitudes beliefs and sentiments that give order and meaning to a political process and that provide underbied assumptions and rules that govern hehavior in the political system."- LucianW. Pye Aspect of Political Development, p. 104

4- Heinz Eulau, Behavioural Persuation in Politics, 1964p. 81

5- Lucian Pye.& Sidney, Verba Political Culture and Political Development, 1965, p. 105

6-" Political Culture is thus the manifestation in aggregate form of the psychological and subjective dimensions of politics." - Lucian W. Pye. Aspects of Political Development, p. 108

7-A.R. Ball, Modern Politics and Govt., p. 58

8- Ibid. p.59

9-G.Almond & Sidney Verba, The Civic Culture, p.17

10-Davies & Levies, Models of Political System, p. 115

11- Davies and Levies, Ibid. p. 115

12- S.P. Verma, Modern Political Theory, p. 292

13- S.E. Fiuer, Comparative Govt. 1970, pp.537-40

14- Almond & Powell, Op. Cit. p. 17

15- S.P. verma, Op. Cit, pp. 296-97

16-Almond & Powell, Op. Cit, p. 51

17- Lucian Pye, Op. cit. p. 89.

18-Daya Krishna, Political Development- A Critical Perspective, 1979, p.151

19-Daaviers & Lenis, Op. Cit. p. 114

20- Eric Rowe, Modern Politics, p. 12

21- Lucian W. Pye, Op. Cit. p. 18

8.14 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री

1.कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डेवलेपमेन्टल एप्रोच, ऑमण्ड एवं पॉवेल

2.कम्यूनिकेशन एण्ड पॉलिटिकल डेवलेपमेन्ट, लूसियन पाई

3.मॉडर्न पॉलिटिकल थ्योरी, एस0 पी0 वर्मा

4.ए फ्रेमवर्क फॉर पोलिटिकल एनालिसिस, डेविड ईस्टन

5.ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पोलिटिकल लाइफ, डेविड ईस्टन

8.5 निबंधात्मक प्रश्न

१. राजनीतिक संस्कृति पर निबंध लिखिए |

इकाई 9 : राजनीतिक दल

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 दल, अर्थ एवं परिभाषा

9.4 आवश्यक तत्व

9.5 राजनीतिक दल के कार्य

9.6 दलीय व्यवस्था के गुण

9.7 राजनीतिक दलों के दोष

9.8 दलीय प्रणलियाँ (वर्गीकरण)

9.8.1 लॉ पालोम्बरा की दल व्यवस्था (वर्गीकरण)

9.8.2 सारटोरी की दल व्यवस्था

9.8.3 इलाण्डेल का वर्गीकरण

9.8.4 अमाण्ड का वर्गीकरण

9.8.5 एलन वाल का वर्गीकरण

9.8.6 मिचेल्स का वर्गीकरण

9.8.7 डूवर्जर का वर्गीकरण

9.9 दलीय व्यवस्था के प्रकार

9.10 सारांश

9.11 शब्दावली

9.12 अभ्यास के प्रश्न

9.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.14 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.16 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रास्तावना

राजनीतिक दल प्रजातान्त्रिक तथा उत्तरदायी शासन के लिए अपरिहार्य है। राजनीतिक दलों के अभाव में प्रजातन्त्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आधुनिक प्रजातन्त्रों में प्रजातन्त्र का संचालन राजनीतिक दलों के द्वारा ही होता है। राजनीतिक दल ही राजनीतिक चेतना के केन्द्र होते हैं। सम्पूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया राजनीतिक दल के इर्दगिर्द घूमती दिखायी पड़ती है। ये प्रत्येक शासन प्रणाली में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये महत्वपूर्ण कार्य निष्पादित करते हैं। इनका प्रत्येक व्यवस्था में विशिष्ट स्थान है यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने राजनीतिक दलों को अदृश्य सरकार कहा है।

9.2 उद्देश्यः-

इकाई के निम्न उद्देश्य हैः-

- राजनीतिक दलों का अर्थ एवं कार्यों से परीचित कराना।
- राजनीतिक दलों के विभिन्न वर्गीकरण का ज्ञान कराना।
- राजनीतिक दलों के आवश्यक तत्व तथा प्रकारों का ज्ञान कराना।
- राजनीतिक दलों के गुणों, दोषों से विद्यार्थियों को परीचित कराना।
- दलीय व्यवस्था के प्रकार का वर्णन करना।

9.3 दल का अर्थ एवं परिभाषाः-

सामान्य भाषा में व्यक्तियों के किसी समूह को जो एक समान उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्य करता है दल कहा जाता है। यदि दल का उद्देश्य राजनीतिक है तो वह राजनीतिक दल कहलाताहै । विभिन्न विद्वानों ने राजनीतिक दल की अलग-अलग परिभाषा दी है-

बर्क के शब्दों में - ''राजनीति दल ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो किसी राष्ट्रीय हित की पूर्ति के लिए किसी एक विशिष्ट सिद्धान्त को आधार मानकर जिसमें वे सहमत हों, अपना संगठन करते है।''

गेटेल के शब्दों में - ''राजनीतिक दल प्रायः नागरिकों का ऐसा समुदाय है जो राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करता है तथा अपने मतदान की शक्ति का प्रयोग कर सरकार को संगठित करना तथा सामान्य नीति को पूर्ण करना चाहता है।''

लीकॉक के शब्दों में - ''राजनीतिक दल संगठित नागरिकों के उस समुदाय को कहते हैं जो इकट्ठे मिलकर राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। उनके विचार सार्वजनिक मामलों में एक से होते हैं और सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए मतदान की शक्ति का प्रयोग कर सरकार पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं।''

गिलक्राइस्ट के शब्दों में - ''राजनीति कद नागरिकों के उस समूह को कहते हैं जिसमें सभी सदस्यों के राजनीतिक विचार एक से होते हैं। तथा जो एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करके सरकार को नियन्त्रित करने का काम करते हैं।''

9.4 राजनीतिक दलों के आवश्यक तत्व -

राजनीतिक दलों की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर राजनीतिक दलों के निम्न आवश्यक तत्व बताये जाते हैं-

1.आधारभूत सिद्धान्तों के एकता- राजनीतिक दल के लिए आवश्यक है कि उसके कुछ प्रमुख सिद्धान्त हों। इसमें शामिल हो रहे लोगों के लिए आवश्यक है कि वे उन सिद्धान्तों पर एकजुट हों । सभी सदस्यों का सिद्धान्तों पर मतैक्य होना चाहिए। यदि सिद्धान्तों के आधार पर मतभेद होंगे तो सभी एकजुट नहीं हो पायेंगे और लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पायेंगे।

2.संगठन- समान विचार वाले लोग यदि संगठित नहीं होंगे तो वह राजनीतिक दल नहींवरनभीड़ बनकर रह जायेंगे। संगठन एक शक्ति का प्रतीक है। संगठन का आश्य नियम, अनुशासन एवं पदसोपान से है। जिसमें कार्य विभाजन है तथा उत्तरदायित्व निश्चित किये जा सकें। अतः बिना संगठन बनाये राजनीतिक दलों की कल्पना नहीं की जा सकती।

3.वैधानिक उपायों में विश्वास- राजनीतिक दलों के लक्ष्य होते हैं उसे लागू करने के लिये वे सत्ता प्राप्ति करना चाहते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति कि लिए वे विभिन्न प्रयास करते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रयास संवैधानिक होने चाहिए। संविधान विरूद्ध किया गया प्रयास राजनीतिक दलों के लिए स्वीकार्य नहीं है। हिंसा में , क्रान्ति में विश्वास रखने वाले संगठन राजनीतिक दल नहीं हो सकते।

4.राष्ट्रीय हित का संवर्धन- राजनीतिक दल के लिए आवश्यक है कि वे किसी जाति, धर्म, वर्ग के हित को दृष्टि में रखकर कार्य न करें। उनके लिए आवश्यक है कि वे सार्वजनिक हित की पूर्ति करे। राजनीतिक दल संकीर्ण, स्वार्थ, जातिगत, धार्मिक हित की पूर्ति के लिए नहीं बन सकते।

5.सत्ता प्राप्ति की लालसा- राजनीतिक दल निश्चित सिद्धांतों पर एकजुट हुए लोगों का समूह होता है। वे उन सिद्धान्तों को सार्वजनिक हित के लिए लागू करना चाहते हैं। इन सिद्धान्तों को लागू करने के लिए आवश्यक है दल को सत्ता प्राप्त हो। अतः सत्ता प्राप्ति की लालसा भी राजनीतिक दल का आवश्यक तत्व है।

9.5 राजनीतिक दलों के कार्य-

हर प्रकार की शासन प्रणालियों में राजनीतिक दलों का अस्तित्व होता है। वह चाहे लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली हो या अधिनायकतन्त्र सभी में राजनीतिक दल दिखायी पड़ते हैं। यह अलग बात है कि लोकतन्त्र में उनकी भूमिका बेहद महत्वपूर्ण एवं प्रभावी होती है, जबकि अधिनायकतन्त्र में केवल सजावट की वस्तु बन कर रह जाते हैं लोकतन्त्र का संचालन ही राजनीतिक दल करते हैं। वे लोकमत का निर्माण करते हैं, राजनीतिक चेतना जागृत करते हैं तथा निरन्तर प्रयासों से सामान्य जन का विश्वास लोकतन्त्र में बहाल रखते हुए मतदान सुनिश्चत करवाते हैं। लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों के प्रमुख कार्य निम्न हैं-

1.राजनीतिक चेतना का प्रसार- लोकतन्त्र को व्यवहार में लाने का सम्पूर्ण श्रेय राजनीति दलों को जाता है। जनता के सजग कर, उनसे राजनीतिक कर्तव्य कराने का कार्य राजनीतिक दल ही करते हैं। विभिन्न दल अपने पत्र, पत्रिकाओं, विज्ञापनों के माध्यम से जनता को सूचनायें, नीतियाँ प्रदान करते हैं। वे राष्ट्रीय समस्याओं पर जनता का ध्यान आकृष्ट कराते हैं। विभिन्न राजनीतिक दल विभिन्न समस्याओं पर अपना मत देकर आम जनता को विकल्प देते हैं। वे प्रेस, समाचार पत्रों के माध्यम से अपने विचार देते हैं- लोवेल के शब्दों में - ''राजनीतिक दल' राजनीतिक विचारों के दलाल हैं।''

2.जनमत का निर्माण करना- यह राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण कार्य है। वे लोकमत निर्माण में प्रभावी भूमिका अदा करते हैं। विभिन्न मुद्दों पर वह अपने दल की राय से लोगों को अवगत कराते हैं। उनकी यह राय जटिल प्रश्नों को समझने में आमजनता की मदद करती है। राजनीतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम, सभायें, गोष्ठियाँ अंततः लोगों को जागरूक कर उनकी अपनी राय निर्मित करवाती

है। लोगों की सार्वजनिक हित में बनी राय का योग ही लोकमत होता है। अतः इसमें राजनीतिक दलों की महती भूमिका रहती है। ब्राइस के शब्दों में- लोकमत को प्रशिक्षित करने उसके निर्माण एवं अभिव्यक्ति करने में राजनीतिक दलों के द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किये जाते हैं।''

3.कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के बीच की कड़ी- राजनीतिक दल व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका में सम्पूर्ण सूत्र का कार्य करते हैं। वे मध्यस्थ की भूमिका अदा करते हैं। संसदीय शासन में सरकार एवं विधायिका के मध्य संवाद तथा जनता की आकांक्षाओं को सरकार तक पहुँचाने का कार्य दल करते हैं। अध्यक्षात्मक शासन शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर कार्य करता है फिर भी उसमें गतिरोध उत्पन्न नहीं हो पाता तो उसमें महत्वपूर्ण भूमिका राजनीतिक दल अदा करते हैं। अमेरिका की अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में राजनीतिक दलों के कारण ही सामंजस्य स्थापित रहता है। गिलक्राइस्ट के शब्दों में - ''दलीय पद्धति ऐसा तरीका है। जहां अमेरिकी संविधान की कठोरता का दोष कम हो गया है।''

4.सरकार पर अंकुशः-राजनीतिक दल के कारण सरकारें निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन नहीं कर पाती हैं। राजनीतिक दल सत्तारूढ़ दल की गलत नीतियों का प्रसार करते हैं और सार्वजनिक मंचों से भर्त्सना करते है। इस पूरी प्रक्रिया में सरकार के विरूद्ध जनमत निर्माण होता है। विपक्षी दल भी सरकार के ऊपर गलत नीतियाँ वापस लेने का दबाव बनाते हैं। विपक्ष वैकल्पिक सरकार के रूप में अपने को प्रस्तुत करता है। यही कारण है की राजनीतिक दलों की मौजूदगी सरकार पर अंकुश लगाती है। लास्की के शब्दों में - ''राजनीतिक दल देश में तानाशाही से रक्षा के सर्वश्रेष्ठ साधन है।''

5.विशेष नीति के संचालन के लिये विधायिका में एकता- प्रत्येक राजनीतिक दल विधायिका में एकता स्थापित करता है। प्रत्येक राजनीतिक दल का उम्मीदवार अपने दल की नीति एवं कार्यक्रम निर्वाचन के समय जनता के बीच रखते हैं। समय-समय पर अपने दल के सदस्यों को अपनी नीतियों को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से अनुशासित करना होता है। राजनीतिक दल अपने सदस्यों को नियन्त्रित करते हैं। वे अपने दल के सदस्यों को अपनी नीतियों के प्रति सचेत करते हैं। वे दल की नीतियों के विरूद्ध आचरण करने वाले लोगों के प्रति कठोर कार्यवाही कर दलीय अनुशासन एवं एकता को बनाते हैं।

6.जनता एवं सरकार के बीच कड़ी- राजनीतिक दल जनता तथा सरकार के बीच संपर्क का कार्य करते हैं। सरकार द्वारा बनायी गई नीति के प्रति जनता के रवैया का आँकलन राजनीतिक दल करते हैं, वे इसकी सूचना सरकार तक पहुँचाते हैं। वे आवश्यकता पड़ने पर जनमत बिगड़ने से बचाने के लिए सरकार को चेतावनी ही नहीं देतेवरननीतियों, कार्यक्रमों में आवश्यक फेरबदल भी करते हैं। अतः जनता एवं सरकार के बीच कड़ी की महत्वपूर्ण भूमिका वह अदा करते हैं।

7.चुनाव का संचालन- आज सार्वभौम वयस्क मताधिकार, बढ़ी जनसंख्या, बड़े निर्वाचन क्षेत्र के कारण चुनाव पहले की तुलना में अधिक जटिल हो गये हैं। आज सफल निर्वाचन की कल्पना राजनीतिक दलों के अभाव में नहीं की जा सकती। वे प्रत्याशियों का चयन, चुनाव-प्रचार, चुनाव संचालन, मतदान तथा मतगणना तक निरंतर व्यवस्था बनाने में सक्रिय रहते हैं। उनके इस महत्वपूर्ण कार्य पर फाइनर ने लिखा है-''राजनीतिक दलों के बिना निर्वाचक या तो नितान्त असहाय हो जायेंगे या उनके द्वारा असंभव नीतियों को अपनाकर राजनीतिक यंत्र को नष्ट कर दिया जायेगा।''

8.सरकार का निर्माण- आम निर्वाचन के बाद विजयी राजनीतिक दल सरकार का निर्माण करते हैं। संसदात्मक शासन में विधायिका के निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल का नेता प्रधानमंत्री बनता है तथा वह अपना मन्त्रिमण्डल (सरकार) बनाता है। वही अध्यक्षात्मक शासन में राष्ट्रपति के चुनाव के बाद राष्ट्रपति स्वतन्त्र रूप से सरकार का निर्माण करता है। अतः कहा जा सकता है कि संसदात्मक एवं अध्यक्षात्मक दोनों ही शासन प्रणलियों में सरकार का निर्माण राजनीतिक दल करते हैं। राजनीतिक दलों के अभाव में विधायिका के सदस्य नियन्त्रण मुक्त होकर 'अपनी ढपली अपना राग' अपना सकते हैं। यह देशहित, जनहित के लिए ठीक नहीं हो सकता। अतः राजनीतिक दल के अभाव में प्रभावी सरकार का निर्माण असंभव है।

9.6 दलीय व्यवस्था के गुण

राजनीतिक दलों के विषय में अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि यह लोकतन्त्र के लिए आवश्यक है। इनमें अनेक अच्छाइयाँ हैं। बिना राजनीतिक दलों के आदर्श शासन व्यवस्था की कल्पना भी नहीं की जा सकती । ये जनमत निर्माण से लेकर सरकार बनाने एवं नीतियों को क्रियान्वित कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। राजनीतिक दलों के महत्वपूर्ण गुण निम्नलिखित हैं-

1.राजनीतिक चेतना के साधन हैं- राजनीतिक दलों का यह प्रमुख गुण है। वे राजनीतिक चेतना का प्रसार करते हैं। वे जन जागरण अभियान चलाकर जनता की निद्रा भंग करते हैं। वे अपने कार्यक्रमों, गोष्ठियों, सभाओं से जनता से न केवल जागरूक बनाते हैंवरनउनमें राजनीतिक चेतना जागृत करते हैं। वे जनता की उदासीनता को मिटाने का कार्य करते हैं। वे नागरिक कर्तव्यों की ओर लोगों को प्रेरित करते हैं। यह राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है।

2.सरकार पर नियन्त्रणः- राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है। राजनीतिक दल ही सरकार पर पैनी नजर रखते हैं। वे सरकार की नीतियों , कार्यक्रमों का विश्लेषण करते है और उसको जनता में प्रचारित करते है। राजनीतिक दल ही अपने वैकल्पिक सरकार के रूप में प्रस्तुत करते है। वे सरकार का विपक्ष के माध्यम से सदन में चेतावनी देते है। आम जनता में विरोध प्रदर्शन, धरना आदि के द्वारा सरकार विरूद्ध चलाकर लोकमत को सरकार के विरूद्ध करते हैं। राजनीतिक दलों के इन कार्यों से सरकार पर नियन्त्रण लगता है। यह राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है।

3.राजनीतिक शिक्षा के माध्यमः- राजनीतिक दलों का यह प्रमुख गुण है। वे लोकतन्त्र में जनता को सर्वाधिक राजनीतिक शिक्षा प्रदान करते हैं। वे सघन सदस्यता अभियान, जनसंपर्क अभियान से जनता से संवाद कायम करते हैं। वे राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर, सामाजिक, आर्थिक नीतियों पर अपनी राय से जनता को अवगत करा आम जनता का ज्ञान बढ़ाते हैं। यह राजनीतिक दल ही हैं जो नागारिकों को मतदान, सरकार निर्माण, सरकार पर नियन्त्रण की विधियों से अवगत कराते हैं।

4.शासन के विभिन्न अंगों में तालमेल के साधनः- राजनीतिक दलों का यह प्रमुख गुण है कि विधायिका एवं कार्यपालिका में सामंजस्य स्थापित करते हैं। यदि गतिरोध उत्पन्न हो जाये तो यह देशहित में नहीं होता है। दलों के सदस्य सरकारों के कार्यक्रमों, नीतियों से विधायिका को ने केवल अवगत कराते हैंवरनविश्वास में भी लेते हैं। वे विधायिका को विश्वास में कर नीतियों को क्रियान्वयन आसान बनाते हैं। यह राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है।

5.दल एवं सरकार के सदस्यों पर नियन्त्रणः- राजनीतिक दल चुनाव में अपने ही दल के सदस्यों को चुनाव में टिकट देते हैं। चुनाव जीतने के बाद ये सभी सदस्य दलीय अनुशासन में रहते हैं। ये सरकार में शामिल होने के बाद भी दलीय अनुशासन से बँधे रहते हैं। दल सदैव उनसे दल के निर्देशांे के पालन की अपेक्षा करते हैं। राजनीतिक दल सदस्यों को अनुशासन एवं नियन्त्रण में रखने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

6.सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रमों का संचालनः- राजनीतिक दल सुप्त अवस्था में नहीं रहते। उन्हें लोकमत को अपने पक्ष में करना होता है, यदि है तो उसे बनाये रखने का प्रयास करना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे निरंतर सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रम चलाते रहते हैं। ये सामाजिक आर्थिक कार्यक्रम सरकार एवं आम नागरिकों दोनों के लिए हितकर होते हैं। यह राजनीतिक दल का विशेष गुण है कि इन कार्यक्रमों का संचालन।

7.स्थाई एवं श्रेष्ठ सरकार की स्थापनाः- यह राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है कि वह जिस भी व्यवस्था में रहते हैं, वहां पर स्थाइ एवं श्रेष्ठ सरकार का निर्माण करते हैं। राजनीतिक दल ही हैं जो लोकमत को किसी दल विशेष के पक्ष में बनाते हैं और उनके ही प्रयास से आम जनता मतदान केन्द्रों तक जाकर मतदान करती है। अतः वे ही स्थाई सरकार के निर्माण के मूल में होते हैं। उन्हीं के दबाव में सरकारें जनकल्याण के कार्यक्रम चलाती है।

8.निरंकुशता से मुक्तिः- राजनीतिक दलों का प्रमुख गुण है। वे आम नागरिकों को सचेत कर उनके समर्थन से सरकारों के ऊपर नैतिक नियन्त्रण रखते हैं। सरकारें राजनीतिक दलों द्वारा बनाये गये लोकमत की अवहेलना नहीं कर सकती। वे जनमत के खिसकने का जोखिम नहीं उठा सकती। अतः वे जन आकांक्षाओं के अनुरूप नीतियां एवं कार्यक्रम बनाते हैं। यह राजनीतिक दलों का विशेष गुण है और इसी से सरकारों की निरंकुशता से मुक्ति मिलती है।

9.राष्ट्रीय एकता के साधनः- राजनीतिक दल राष्ट्रीय एकता के साधन हैं। राजनीतिक दल सम्पूर्ण देश को एकता के सूत्र में बांधते हैं। इनकी सदस्यता सभी धर्मों, जातियों एवम् सभी क्षेत्र के लोगों के लिये होती हैं। ये अपने अभियान, कार्यक्रमों से सम्पूर्ण देश को एकता के सूत्र में बांधतें हैं। यह राष्ट्रीय एकीकरण का माध्यम बनते हैं।

10.श्रेष्ठ कानूनों का निर्माणः- विधायिका में कानून बनता है। बहुमत प्राप्त दल ही सदैव कानून बनवाने में अग्रणी भूमिका में रहते हैं। लोकमत के भय से, जनता से किये वायदों के अनुरूप व कानून बनाती है। यदि वे व्यक्तिगत कारणों से सार्वजनिक हित छोड़ती हैं तो अन्य राजनीतिक दल सदन में तथा सड़क पर उनका विरोध करते हैं। उनकी गतल, समाजविरोधी नीतियों की आलोचना करते हैं।

9.7 राजनीतिक दलों के दोषः-

राजनीतिक दल किसी भी शासन के लिये आवश्यक हैं। इनमें अनेक अच्छाइयाँ हैं। इसके साथ इसमें अनेक दोष भी दिखायी पड़ते हैं। हाल ही में उभरी नई राजनीतिक प्रवृत्तियों ने सिद्ध किया है कि राजनीतिक व्यवस्था में जो दोष दिखायी पड़ रहे हैं। उसका मूल कारण राजनीतिक दल हैं। अमेरिकी संविधान निर्माता तो राजनीतिक दलों से व्यवस्था को मुक्त रखना चाहते थे। राजनीतिक दलों के प्रमुख दोष निम्न है-

1.दलों द्वारा नैतिकता एवं आदर्शों का त्यागः- हर राजनीतिक दल का उद्देश्य चुनाव जीतकर सत्ता को प्राप्त करना होता है। प्रत्येक दल निर्वाचन के समय 'चेन केन प्रकारेण' चुनाव जीतना चाहता है। ऐसे में ये दल सभी आदर्शों को त्यागकर प्रतिद्वन्दी नेता पर व्यक्तिगत हमले करना, छवि धूमिल करना, उनके निजी जीवन की सी0डी0 बनाकर जनता में वितरित करते हैं। वे चुनाव में मतदाताओं को लुभाने के लिए शराब , पैसे एवं अन्य अनैतिक साधनों का खुलकर प्रयोग करते हैं।

2.दलीय अनुशासन से स्वतन्त्रता का अन्तः- राजनीतिक दल लोकतन्त्र की महत्वपूर्ण कड़ी है। यह भी अनोखा संयोग है कि जो लोकतन्त्र नागरिक स्वतन्त्रता के प्रहरी है वहीं दलीय अनुशासन के आधार पर अपने दल के सदस्यों की आवाज का दबा देते हैं। कई बार दल की सदस्यता लेने के बाद व्यक्ति असहाय एवं मजबूर होकर दलीय विचार को स्वीकार करता है। वह अपनी अर्न्तआत्मा एवं अंतःकरण की आवाज को दबाता है।

3.उग्र दलबन्दी का विकासः- राजनीतिक दलों का प्रमुख दोष है। इसमें प्रत्येक दल सत्ता पाने के लिए गलाकाट प्रतियोगिता में लग जाता है। इस कार्य में विभिन्न दल आदर्श प्रतियोगी के स्थान पर उग्र प्रतियोगी हो जाते हैं। इस क्रम में वह कई बार समाज हित, राष्ट्रीय हित की अनदेखी कर जाते हैं। दलीय कड़वाहट इतनी बढ़ जाती है कि राष्ट्रीय हित के मुद्दे, विभिन्न देश हित से जुड़े कानून पास नहीं हो पाते।

4.दलीय स्वार्थों पर बलः- राजनीतिक दल सत्ता प्राप्ति की लालसा रखते हैं। सत्ता पाने के बाद व समाज हित, राष्ट्रीय हित के लिये नहींवरनदलीय स्वार्थ के लिये, व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए कार्य करते हैं। इससे समाज में व्यापक असन्तोष पैदा होता है। यह राष्ट्रहित को भी नुकसान पहुँचाता है।

5.भाई-भतीजाबाद एवं भ्रष्टाचार को बढ़ावाः- भ्रष्टाचार एवं राजनीतिक दलों का सम्बन्ध अब बहुत मजबूत दिख रहा है। इसमें मुख्य रूप से जिम्मेदार महंगी चुनावी प्रक्रिया है। चुनाव में हुए खच्र की भरपाई के लिये ये दल अत्याधिक धनार्जन करते है। कई बार चुनाव में जिन कम्पनियों से धन (चंदा) मिला होता है उसकी भरपाई इस भ्रष्टाचार से करते है। भाई भतीजावाद भी इसी की कड़ी है। दुनिया के अधिकांश देशों में यह रोग फैल रहा है।

6.विधायिका राजनीतिक संघर्ष का अखाड़ाः- आज राजनीतिक दलों की प्रतिस्पर्धा इस स्तर पर पहुँच चुकी है कि वे राजनीतिक संघर्ष में राष्ट्रहित को भुला बैठे हैं। उनमें आपसी विश्वास, तालमेल समाप्त हो गया है। वे एक दूसरे को रचनात्मक सहयोग नहीं दे रहे हैं। आज रोज विधायिका में काम काज बन्द होने की खबर आम हो गई हैं। संसद लड़ाई का अखाड़ा बन गई है । देश हित, समाज हित के लिये अति आवश्यक बिल पास नहीं हो पा रहें हैं।

7.साम्प्रदायिकता को बढ़ावाः- कई बार यह देखा गया है कि दलीय स्वार्थ के लिये राजनीतिक दल साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं। वे धार्मिक आधार पर प्रत्याशियों का चयन करते हैं। कई बार धार्मिक आधार पर मन्त्रिमण्डल में स्थान तय होते हैं। यह संयोग है या कुछ और कि चुनाव से पहले धार्मिक तुष्टिकरण के वायदे किये जाते हैं। कई बार तो चुनाव से पहले दंगों का दौर दिखता है।

8.राष्ट्रीय हितों की अनदेखीः- कई बार राजनीतिक दल राष्ट्रीय हित का संवर्धन नहीं करते। वे दलीय हितों को साधते है। मेरीयट के शब्दों में - ''दलभक्ति की अधिकता से देश भक्ति की आवश्यकताओं पर पर्दा पड़ जाता है। वोट प्राप्त करने के धन्धे पर अत्याधिक ध्यान देने से दलों के नेता अथवा उनके प्रबन्धक देश की उच्चतम आवश्यकताओं को भूल या टाल सकते हैं।''

9.योग्य व्यक्तियों की उपेक्षाः- शासन भी एक कला है। यह एक सम्पूर्ण देश के करोड़ों लोगों को प्रभावित करता है। दुर्भाग्यवश इस महत्वपूर्ण कार्य की जिम्मेदारी दलीय बाध्यताओं के कारण सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के हाथ में नहीं आ पाती। योग्य व्यक्ति कई बार राष्ट्रीय हित, सामाजिक हित के लिये दलीय स्वार्थों के विरूद्ध मुखर हो जाता है। कतिपय यही कारण है कि आज योग्य व्यक्तियों का अभाव व्यवस्था में दिखायी पड़ रहा है।

दलीय दोषों अथवा दलबन्दी से बचने के उपायः- इससे बचने के लिये कुछ सुझाव कारगर हो सकते हैः-

1.राजनीतिक शिक्षा का प्रसार

2.आर्थिक विषमता को कम करना

3.सीमित दलीय व्यवस्था

4.कम खर्चीले चुनाव

5.राजनीति से अपराधी, भ्रष्टाचारी को दूर करना

6.दलीय लोकतन्त्र की बहाली

7.व्यापक चुनाव सुधार

9.8 दलीय प्रणालियाँ (वर्गीकरण):-

आधुनिक दलीय प्रणलियों की समीक्षा करते हुए डुवर्जर ने कहा-'' किसी भी देश में लम्बे समय तक राजनीतिक दलों की संख्या, उनकी संरचना, विचारधारओं उनके समझौतों तथा विपक्ष में स्थायित्व आ जाता है।'' इसी के आधार पर किसी भी देश के दलीय प्रणाली को समझा जा सकता है। इस संबंध में अमाण्ड, जेम्स जप, हिचनर , डूबर्जर , ला पालोम्बरा , सारटोरी आदि ने विस्तृत विश्लेषण किया।

9.8.1 ला पालोम्बरा की दलीय व्यवस्था:-

ला पालोम्बरा ने दल व्यवस्था के प्रकार का निर्धारण करते समय राजनीतिक दलोंमेंनिम्न लक्षणों का आवश्यक माना-

(1) राजनीतिक दल की विशेषतायें एवं लक्षण।

(2) दलों के आपसी संबंध।

(3) दलों का समाज के अन्य घटकों के साथ संबंध।

(4) दलों के कार्यप्रणाली को प्रभावित करने वाले तत्व।

पालोम्बरा एवं वीनर दोनों ही ने इस आधार पर दल व्यवस्था को स्पष्ट रूप से दो भागों में बाँट दिया:-

(1) प्रतियोगी दल व्यवस्थायें

(2) अप्रतियोगी दल व्यवस्थायें

9.8.2 साराटोरी की दल व्यवस्था:-

साराटोरी ने दूसरी तरफ वर्गीकरण में दलों की संख्या को आधार माननाभ्रांतिपूर्ण माना। उसकी मान्यता थी कि दलों के वर्गीकरण में इनके वैचारिक फासले, वैचारिक उग्रता, सत्ता काल अथवा सत्ता में आने की संभावना को ध्यान में रखने की बात कही। सारटोरी ने दल व्यवस्था का वर्गीकरण करने में त्रिमुखी आधार को स्वीकार किया-

(1) राजनीतिक दलों की संख्या

(2) दलों की विचारधारा एवं प्रकृति

(3) दलों में विखण्डन की मात्रा

सारटोरी ने एक तरफ संख्या के आधार पर किया गया वर्गीकरण को गलत मानते हुए भी उसे पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया। उसकी मान्यता थी कि दलों की संख्या अपने आप में दलों के लक्षण प्रकट करने वाली है। अतः इसे छोड़ा नहीं जा सकता है। उसने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा कि किसी भी

व्यवस्था में दो दलों का होना राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक दलों, निर्वाचन प्रणलियों के बारे में बहुत कुछ तथ्य प्रस्तुत कर देताहै ।

9.8.3 बलोण्डेल का वर्गीकरण:-

बलोण्डेल ने दलीय प्रणाली ने इसके ठीक विपरीत केवल संख्या के आधार पर किसी देश की प्रणाली को समझने को अधूरा प्रयास बताया। वह इसके विपरीत दल प्रणाली के वास्तविक रूप, उसकी प्रकृति, उसके विकास की स्थिति, दलों के संबंधों को वर्गीकरण का आधार मानता है। इसके साथ ही वह दलीय विविधता के महत्व को समझते हुए कहता है कि निम्न तत्व भी दलीय प्रणाली को समझने में कारगर हो सकते है-

(1) राजनीतिक दलों की क्रियाकलाप की दृष्टि से गणना तथा देश की राजनीति में भूमिका।

(2) राजनीतिक व्यवस्था में दल की शक्ति, दल के माप में दल की सदस्य संख्या मतदान प्रतिशत, तथा व्यवस्थापिका में प्राप्त स्थानों को आधार बनाया जा सकता है।

(3) दलों में विचारधारा संबंधी अंतर।,(4) दलों का संगठन,(5) दलों के समर्थन का आधार।

बलोण्डेल ने इन पाँच तत्वों के आधार पर राजनीतिक दलों के पाँच प्रकार बताये है:-

(1) एक दलीय व्यवस्था,(2) द्वि दलीय व्यवस्था,(3) ढा़ई दलीय व्यवस्था,

(4) एक दल प्रधान बहुदलीय व्यवस्था

(5) बहुदलीय योग दल

9.8.4 अमाण्ड का वर्गीकरण:- अमाण्ड ने राजनीतिक दलों का वर्गीकरण करते हुए उन्हें चार भागों में बांटा-

(1) तानाशाही अथवा सर्वसत्तावादी दल ,(2) प्रमुखता प्राप्त लोकतान्त्रिक दल

(3) प्रतिस्पर्धात्मक दो दल ,(4) प्रतिस्पर्धात्मक बहु दल

इसके अतिरिक्त हिचनर और लेवाइन ने राजनीतिक दल प्रणाली को पाँच भागों में विभक्त किया है:-

(1) प्रतिस्पर्धा पूर्ण दो दलीय प्रणाली ,(2) प्रतिस्पर्धा पूर्ण बहु दलीय प्रणाली ,(3) प्रमुखतापात्र लोकतान्त्रिक प्रणाली.(4) अधिनायकवादी दलीय प्रणाली .(5) दलीय प्रणलियों रहित राज्य

9.8.5 एलन वॉल का वर्गीकरण:- एलन वॉल के अनुसार दल प्रणाली के कई वर्गीकरण किये जा सकते है। वह मानता था कि दल व्यवस्था की अधिकाधिक संख्या के कारण कोई भी वर्गीकरण पूर्णतया सही नहीं होगा। वर्गीकरण के आधारों की अनेकता के कारण वर्गीकरण कठिन हो गया है। वह मानता है कि दलों का संचालन दलीय पद्धति के अन्तर्गत होता है और इसका प्रभाव दल के आचरण पर पड़ता है। दलों की संख्या के आधार पर भी वर्गीकरण सही नहीं है। बड़े दलों की संख्या समान होते हुए भी दल व्यवस्थाओ के बीच बड़े अंतर होते है। एक दलीय, द्विदलीय और बहुदलीय व्यवस्थाओं के बीच अतर करने पर ब्रिटिश सवं अमेरिकी दलीय व्यवस्था एक समूह में तथा इटली तथा स्वीडन की दल पद्धतियों को एक साथ नहीं रखा जा सकता। वाल ने दलों की संख्या, उनकी

संरचना, उनकी शक्ति को आधार बनाकर दलों का वर्गीकरण किया। उसका दलीय वर्गीकरण इस प्रकार हैः-

(1) अस्पष्ट द्वि दलीय पद्धतिः- यह अस्पष्ट विचारधाराओं पर आधारित दलीय व्यवस्था है। इसमें येनकेन प्रकारणे मत प्राप्त करने तथा चुनाव जीतने पर बल दिया जाता है। इसमे दलीय व्यवस्था केन्द्रीकृत होती है। तथा व्यक्ति आधारित होती है। इसमें व्यक्ति के गुणों को दलीय सिद्धान्तों पर वरीयता दी जाती है। अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था इसका आदर्श उदाहरण है।

(2) सुस्पष्ट द्विदलीय पद्धतिः- सुस्पष्ट द्विदलीय व्यवस्था में दल अधिकाधिक केन्द्रीकृत होते है। जर्मनी तथा आस्ट्रेलिया में ऐसा स्पष्ट दिखता है। इसमें विचारधारओं का महत्व होता है तथा चुनाव में विचारधारा के आधार पर दलों में स्पष्ट अंतर दिखायी पड़ताहै । ब्रिटेन की व्यवस्था में भी यही लक्षण पाया जाता है।

(3) कार्यवाहक बहुदलीय व्यवस्थाः- यह वह दलीय व्यवस्था है जिसमें दो से अधिक दल होने के बावजूद वह द्विदलीय व्यवस्था का आभास कराती है। इन देशों में सरकार की स्थिरता पर मतदाताओं का बहुत जोर रहता है। वे अपनी जागरूकता का परिचय देते हुए मत विभाजन नहीं होने देते है। यर्थात में वहाँ पर प्रभावी रूप से दो दल ही दिखायी पड़ते है। स्वीडन, नार्वे, आदि देशों में अनेक दल होने के बावजूद दो दलों के बीच में सत्ता का संघर्ष दिखायी पड़ता है।

(4) अस्थिर बहुदलीय व्यवस्थाः- इस व्यवस्था में सरकार की स्थिरता का अभाव रहता है। इसमें सरकारें अल्पमत की अन्य दलों के सहयोग से बनती है। इस प्रकार की दल प्रणाली का सर्वोच्च उदाहरण इटली है। वहाँ पर अधिकतर बहुमत के अभाव में छोटे-छोटे दलों के समर्थन से सरकार का गठन होताहै । इसमें स्थायित्व का अभाव रहता है। एक सरकार के पतन के बाद पुनः अन्य के सहयोग से नई सरकार बन जाती है।

(5) प्रभावी दल पद्धतिः- इस व्यवस्था में दलों के बीच प्रतियोगिता चलने दी जाती है। इस प्रतियोगिता से ऐसे दल का उदय होता है जो अन्य दलों पर छा जाता है। भारत इसका उदाहरण है। भारत में आजादी के बाद 1977 तक कॉग्रेस पार्टी भारतीय शासन व्यवस्था पर छा गई थी। दूसरे दलों को प्रभावी प्रतियोगिता की छूअ प्रदान की गई। भारत में कई बार ऐसे अवसर भी आये है जब छोटे दलों ने अन्य के समर्थन से शासन पर नियन्त्रण स्थापित किया।

(6) एक दलीय पद्धतियाँ - यह वह शासन प्रणाली है जिसमें एक दल का प्रभुत्व रहता है। इसके प्रमाण मिस्त्र तथा तंजानिया में मिलते है। कीनिया में भी एक दलीय व्यवस्था का उदाहरण मिलता है। शेख मुजीब के समय बंगलादेश, जनरल जिया उक हक के समय पाकिस्तान में भी एक दल के शासन का उदाहरण मिलता हे। इस प्रणाली में दलों के बीच चुनावी प्रतियोगिता का पूर्णतया अभाव रहता है। दलों में ही गुट चुनावी खींचतान करने की छूट रखते है।

(7) सर्वाधिकारवादी एक दलीय पद्धतिः- यह पद्धति कई बार एक दलीय पद्धति के साथ जोड़ दी जाती है। इस व्यवस्था में इस दल का सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व्यवस्था पर पूर्ण नियन्त्रण

रहता है। इस व्यवस्था में केवल शासकों के द्वारा अभिजनों की भर्ती की जाती है। चीन, सोवियत संघ , यूरोप के पूर्वी जर्मनी की सरकार इसके आदर्श उदाहरण है।

एलन वाल का वर्गीकरण सीमित उपयोगिता वाला है। उसके सिद्धान्त से सामान्य निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते है। यह सही है कि दल पद्धति के अन्तर्गत होने वाले परिवर्तनों को निर्धारित करना जाटिल होता है। इनका गति को समझ कर सिद्धान्त का रूप देना भी कठिन है।

9.8.6 मिचेल्स के विचार

जर्मन विद्वान रार्वअ मिचेल्स ने अपनी पुस्तक श्च्वसपजपबंस च्तवजपमेश् में स्पष्ट किया कि राजनीतिक दल का चरित्र अपने समय की ऐतिहासिक व्यवस्था से निर्धारित होता है। वह मानता है कि जिस दल में निर्णय करने की शक्ति कुछ लोगों के हाथ में केन्द्रित रहती है वहाँ सदैव यह खतरा बना रहता है कि जनता की आक्रोश की आंधी उसे बहा सकती है। इस जोखिम से बचने के लिये प्रत्येक राजनीतिक दल अत्याधिक सदस्य संख्या का विस्तार करता है। इससे दल का आधार व्यापक एवं जटिल हो जाता है।

मिशेल्स आगे स्पष्ट करता है कि किसी भी दल में सारे निर्णण लेने की शक्ति अंततः एक छोटे से समूह या गुटमेंआ जाती है। लेकिन राजनीतिक दल इस गुटीय व्यवस्था को छिपाकर उसे लोकतान्त्रिक दिखाने का प्रयास करते है। इसे मिचेल्स ने ' गुटतनत्र का लौह नियम' (Iron law of Oligarchy) कहा। वह स्पष्ट करता है कि किसी भी शासन व्यवस्था को चलाने के लिये संगठन अनिवार्य होता है। इसी के द्वारा निर्बल पक्ष संबल पक्ष के विरूद्ध संघर्ष करता है। वह कहता है जिनके हित समान होते है वे एकता के साथ अपने लक्ष्य प्राप्त कर लेते है। वह स्पष्ट करता है कि चाहे समाजवादी व्यवस्था हो, पूँजीवादी व्यवस्था हो, सभी अपने-अपने संगठनों से अपने-अपने हितों को साधने का प्रयास करते है। वह इस तथ्य को भी स्पष्ट करता है कि मजदूर पूंजीपति के समक्ष नहीं टिक सकते परन्तु संगठित हो वे इसका मुकाबला कर सकते है। एक दल के रूप में संगठित हो वे पूजीवादी शोषणकारी व्यवस्था को नष्ट कर सकते है। धीरे-धीरे दल मजदूर दल में शासन कर नियन्त्रण नौकरशाही के पास आ जाता है।

वह अपने विचारों में आगे स्पष्ट करता है कि सर्वहारा एवं कमजोर वर्गों के लिये बना दल सत्ता में आने के बाद अपने उद्देश्यों को भूल जाताहै। वह धीरे-धीरे अपने लक्ष्यों से दूर चला जाता है।

मिचेल्स के शब्दों में -'' संगठन का विचार ऐसे तर्कों पर आधारित है जिसमें निर्वाचित लोग निर्वाचकों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेते है, जो आशा लेकर आये थे, वे आज्ञा देने लगते है। जो सेवा करने आये थे वे सेवक के स्थान पर स्वामी बन जाते है।''

वह अपने सिद्धान्त के अंत में स्थापित करता है कि कोई भी शासन व्यवस्था , कोई भी दलीय व्यवस्था जनता के हित के स्थान पर दलीय हित और अंततः शासकों के हितों का पोषण करती है। जनता का शासन एक काल्पनिक वस्तु बन जाती है।

9.8.7 डूवर्जर का सिद्धान्तः- फ्रांसीसी विद्वान डूवर्जर ने अपनी पुस्तक श्च्वसपजपबंस चंतजपमेश् में स्पष्ट किया है कि राजनीतिक दलों का उदय एक विशेष प्रक्रिया का परिणाम है। समाम में कुद बिन्दुओं पर सहमति के आधार पर समूह उभरते है। फिर निर्वाचक समितियाँ उभरती है। इन दोनों के मध्य स्थायी संबंध स्थापित हो जाता है। इन स्थायी संबंधों का ही परिणाम ' राजनीतिक दल' का उदय है। राजनीतिक सिद्धान्तों पर एकजुटता के अतिरिक्त भौगोलिग निकटता, व्यवसायिक हितों में समानता भी ऐसे समूहों को जन्म देने में सहायक होती है।

डूवर्जर आगे स्पष्ट करता है कि राजनीतिक दलों का उदय संसद के बाहर भी संभव है। जिस राजनीतिक दल का उदय संसद के अंदर होता है। उसकी कार्यप्रणाली में कुछ वाहय संस्थायें जैसे दार्शनिक समूह, मजदूर समाज, पत्रकार समूह, आदि हस्तक्षेप करने लगते ऐसी संस्थायें संसद के अंदर एवं बाहर दोनों ही स्थान पर दलों को जन्म देने में सक्षम रहती है। इंग्लैण्ड में मजदूर दल को फेवियन सोसाइटी ने जन्म देने में सहयोग प्रदान किया। डूवर्जर का मत था कि जो दल संसद के बाहर उदित होते है उनमें कठोर अनुशासन पाया जाता है। इनमें केन्द्रीकरण की प्रवृति भी बहुत पायी जाती है। संसद के अन्दर पैदा होने वाले दलों में अपने लक्ष्यों की पूर्ति की भावना अधिकाधिक पायी जाती है। डूवर्जर ने दलों का वर्गीकरण इस प्रकार किया हैः-

(1) कॉकस अथवा समूह (समिति) यह दलों के छोटा स्वरूप होता है। ये सदस्यों की गुणवत्ता पर बल देते है। इनका प्रयास कुशलता पूर्वक लक्ष्यों की प्राप्ति होता है। ये सदस्य संख्या पर बल नहीं देते है। ये सामान्यतः विशिष्ट या गणमान्य व्यक्ति होते है। ये प्रायः चुनाव के समय क्रियाशील होते है। बाकी समय में यह सुसुप्ता अवस्था में रहते है। इसका उदाहरण फ्रांस के तीसरे एवं चतुर्थ गणराज्य में रेडीकल पार्टी के रूप में मिलता है।

(2) शाखा दलः- यह ऐसा दलीय प्रकार होता है जिसका उद्देश्य अधिकाधिक संख्या में सदस्य बनाना होता है। इनका पूरा ढ़ाचा होता है। ये निर्वाचन क्षेत्रों में अपनी इकाईयाँ भी स्थापित करते है। ये वर्ष भर सक्रिय रहने वाले दल होते है। इनके विभिन्न कार्यक्रम, गतिविधियाँ निरन्तर चलती रहती है। सामान्यतः यह समाजवादी दलों की तरह निरन्तर सक्रिय रहते है। प्रायः यह देखा जाता है कि समाजवादी दलों के नेता शाखा के सदस्यों के पास आते रहते है। ये उनसे विचारों का आदान प्रदान कर समस्याओं का समाधान खोजने की प्रयास करते है।

(3) प्रकोष्ठः- यह फाँसीवादी तथा साम्यवादी दल का अविष्कार है। इसमें शासक दल की अनेकों इकाईयों देश भर में फैली होतीहै । सभी प्रकोष्ठों के सदस्यों की स्थिति, भूमिका और महत्व दल के सदस्यों की तुलनामेंअधिक महत्वपूर्ण होती है। प्रकोष्ठ के सम्पूर्ण कार्यक्रमों, योजनाओं एवं नीतियों के संबंध में सम्पूर्ण निर्णय वरिष्ठम लोगों की समिति लेती है।

(4) सैनिक दस्तेः- फाँसीवादी एवं साम्यवादी दल अपने साथ एक सैनिक विभाग भी रखते है।इसका उदाहरण इटली एवं जर्मनी में मिलता है। इटली में जहां ' हलचल दस्ता' वहीं जर्मनी में ' तूफान दस्ते' इसके उदाहरण है। चीन में माओ ने मी लाल रक्षक दस्ता बना रखा था। ये सम्पूर्ण सैनिक नहीं

थे परन्तु इन्हें प्रशिक्षण दिया जाता था। इनकी सैनिकों से अलग वेशभूषा निर्धारित होती थी। ये संगठन के सर्वोच्च के अधीन कार्य करते थे।

इसके अतिरिक्त राजनीतिक दलों की सदस्यता की प्रकृति को देखते हुए डूवर्जर ने न केवल प्रजातान्त्रिक तथा सर्वाधिकारवादी दलों के बीच अंतर किया है। इस आधार पर उसने दो प्रकार बताये हैः-

(1) संवर्ग युक्त दलः- यह विशिष्ट जनों का समूह होता है। यह चयन के सिद्धान्त के आधार पर ढांचे का निर्माण करते है। ये विशिष्ट लोग चुनाव के लिये कार्यक्रम बनाने, योजना बनाने, चुनाव हेतु प्रत्याशियों के चयन तथा दल के लिये धन के एकत्रीकरण का सम्पूर्ण कार्य करते है। किसी भी व्यक्ति का सम्मान चुनाव लड़ने की उसकी क्षमता तथा पार्टी कोष में अधिकाधिक चंदा देने से निर्धारि होता है। इनका महत्व दल में बहुत अधिक होता है। ये लोग ही चुनाव हेतु योजना बनाने में सहयोग प्रदान करतेहै।

(2) जनदलः- समय गुजरने के साथ मतदाता की संख्या में अत्याधिक वृद्धि हुई है। इस वृद्धि ने राजनीतिक दलों को जनदल में परिवर्तित होने में सहायता ही है। संवर्ग दल से अलग जनदल संविधानवाद में विश्वास करते हुए चुनाव में उतरते है। यह अधिकधिक लोगों से सम्पर्क करने तथा उनके सलाह एंव परामर्श से काम करने का प्रयास करता है। इस व्यवस्था में सदस्यमा खुली रहती है। प्रत्येक व्यक्ति जो उनके सिद्धान्तों में विश्वास करता है। वह इनका सदस्य बन सकता है।

इसके अतिरिक्त जन्म एवं विकास के आधार पर डूवर्जर ने राजनीतिक दलों को दो भागों में बांटा हैः-

(1) भीतर से उपजे दलः- यह विचार पाश्चात्य लोकतान्त्रिक व्यवस्था से प्रभावित है। इसमें मताधिकार का विस्तार, संसदीय प्रजातंत्र के क्रमिक संस्थानीकरण ने अनेक जागरूक नागरिकों को छोटे-छोटे संघ बनाने पर उत्साहित किया। इसी प्रकार विधायी सदनों के भीतर अपने हितों की रक्षा तथा उनके सवर्धन के लिये समूहों का जन्म हुआ। प्रजातन्त्र के विकास के साथ इन समूहों ने अपने नियम, चंदे, नीतियों, कार्यक्रमों आदि का विवरण रखने के रूप में अपनी कार्यविधि में सुधार किया। इन दलों का जन्म विधायकों की गतिविधियों के कारण हुआ है।

(2) बाहर से उपजे दल:- बाहर से उपजे दल वे है जो किसी क्रान्तिकारी लक्ष्य को प्राप्त करने तथा किसी निश्चित हित की रक्षा के लिये बने है। रूस एवं चीन के साम्यवादी दल इसका उदाहरण है। जिन्नाह के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने भी राज्य विरोधी नीति अपनाकार नये राज्य पाकिस्तान का गठन कराने में सफलता पाई। इस प्रकार के दल का उदय विधायिका के बाहर होता है। और साम्यवादी दल के लिये गंभीर चुनौती रखता है।

9.9 दल प्रणाली के प्रकार:-

आज दुनिया के लगभव सभी देशों में दलों का अस्तित्व है। वह चाहे अधिनायकतन्त्र हो या उदारवादी लोकतन्त्र या समाजवादी राज्य सभी में राजनीतिक दलों का अस्तित्व है। अन्तर केवल एक बात का है कुछ देशों में दल केवल दिखावा है और कुछ देशों में वास्तविक रूप से राजनीतिक

व्यवस्था में अपनी भूमिका अदा कर रहे हैं। मुख्य रूप से तीन प्रकार की दलीय व्यवस्था दिखायी पड़ती है:-

1.एकदलीय व्यवस्था:- एकदलीय व्यवस्था का अर्थ है कि शासन में केवल एक दल की उपस्थिति। यह ऐसा शासन होता है जिसमें किसी अन्य दल को स्वीकार नहीं किया जाता। दूसरे शब्दों में कहें तो यह एक तरह का अधिनायकवाद है क्योंकि आमजनता के पास अपने मताधिकार के लिये विकल्प ही नहीं है। ये मुख्य रूप से वामपंथी के शासन वाले राज्यों, तानाशाहों के यहाँ दिखायी पड़ता है। यह व्यवस्था लोकतन्त्र के लिये हितकर नहीं है।

2.द्विदलीय व्यवस्था:- जब किसी देश में दो मुख्य दल होते हैं तो उसे द्विदलीय व्यवस्था कहते है। यहाँ पर दो से अधिक दल होने पर प्रतिबन्ध नहीं होता परन्तु जनता का विश्वास न पाने के वजह से वह पनप ही नहीं पाते। उदाहरण के लिये अमेरिका में रिपब्लिकन पार्टी तथा डेमोक्रेटिक पार्टी, इंग्लैण्ड में अनुदार दल तथा श्रमिक दल आदि।

3.बहुदलीय व्यवस्था:- बहुदलीय व्यवस्था का अर्थ है दो से अधिक दलों का अस्तित्व। यूरोप में इटली, फ्रांस में बहुदलीय व्यवस्था पाई जाती है। भारत में भी बहुदलीय व्यवस्था पाई जाती है। बहुदलीय व्यवस्था वाले देशों में राजनीतिक अधिकार का विस्तार देते हुए सभी व्यक्तियों को यह स्वतन्त्रता दी जाती है कि वे राजनीतिक दल बना सकते हैं। यही कारण है कि उन देशों में दलों की संख्या आवश्यकता से अधिक है। दुनिया के अनेक देश बहुदलीय व्यवस्था के कारण प्रभावित हो रहे हैं। अनेक दल राजनीतिक परिपक्वता के अभाव में मतविभाजन करवाते हैं और चुनाव में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पाता। स्पष्ट बहुमत के अभाव में अस्थिर सरकारें आती हैं। बार-बार चुनाव होते हैं। फ्रांस में यही कारण था कि पांचवां गणतन्त्र के संविधान में नयी व्यवस्था अपनायी गयी। यह नयी व्यवस्था अध्यक्षात्मक एवं संसदात्मक का मिश्रण है। भारत में भी 90 के दशक में अस्थायी सरकारों ने नयी बहस को जन्म दे दिया था कि क्यों न यहां पर अध्यक्षात्मक शासन को स्वीकार कर लिया जाये? जहाँ पर द्विदलीय व्यवस्था है वहां पर ऐसा संकट उत्पन्न नहीं हुआ। यही कारण है कि लास्की, लावेल, ब्राइस, फाइनर जैसे अनेक विद्वानों ने लोकतन्त्र में द्विदलीय व्यवस्था को श्रेष्ठ माना है।

अभ्यास के प्रश्न:-

(1) निर्बल एवं अस्थिर शासन व्यवस्था किस शासन प्रणाली की विशेषता है-

(अ) द्विदलीय व्यवस्था (ब) बहुदलीय (स) एकदलीय (द) कोई नहीं

(2) किसको लोकतन्त्र का प्राण कहा जाता है-

(अ) दबाव समूह (ब) हित समूह (स) राजनीतिक दल (द)सभी

(3) निम्न में से कौन दल विहीन लोकतन्त्र के समर्थक थे:-

(अ) गाँधी (ब) नेहरू (स) विनोवा भावे (द) जयप्रकाश

(4) निम्न में से कौन राजनीतिक दल का कार्य है-

(अ) राजनीतिक शिक्षा (ब) शासन एवं जनता के बीच कड़ी (स) लोकमत का निर्माण
(द) सभी

(5) निम्नमेंसे किसने '' दलों को प्रजातन्त्रीय यंत्र के संचालन में तेल के समान बताया-
(अ) वर्क (ब) सारटोरी (स) हूबर (द) कोई नहीं

(6)''कुछ लोगों के हितों के लिये बहुतों का पागलपन है।'' यह कथन है-
(अ) वर्क (ब) मिचेल्स (स) मोस्का (द) एलक्जेडर पोप

9.10 सारांशः-

राजनीतिक दल लोकतन्त्र के लिये अनिवार्य माने जाते है। इनके अभाव में लोकतन्त्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। कुछ विद्वानों इसे लोकतन्त्र के लिये प्राणवायु के समान मानते है। लोकतन्त्र का उदय सर्वप्रथम इंग्लैण्ड की राजनीतिक व्यवस्था में हुआ। आज दुनिया के सभी लोकतान्त्रिक देशों में राजनीतिक दलों का अस्तित्व है।

राजनीतिक दल कुद सिद्धान्तों पर एकमत लोगों का समूह है जिनका उद्देश्य संवैधानिक तरीके से सत्ता को प्राप्त कर अपने नीतियों एवं कार्यक्रमों को लागू करना होता है। ये संवैधानिक साधनों में विश्वास करते है, निश्चित सिद्धान्तों पर एकजुट होते है।, सत्ता प्राप्ति इनका लक्ष्य होता है। राजनीतिक दल मुख्य रूप से सत्ता प्राप्ति के लिये सदैव क्रियाशील रहते है। जब वे सत्ता से दूर रहते है तब वे उसको पाने जनमत को अपने पक्ष में करने के लिये विभिन्न प्रकार के उपक्रम जैसे रैली, प्रचार,भाषण आदि का सहारा लेते है। आधुनिक समयमेंइस कार्य हेतु सोशल मीडिया का महत्व बहुत बढ़ गया है। सत्ता प्राप्त होने के बाद वे अपनी नीतियों, कार्यक्रमों को लागू करते है तथा सत्ता को अपने पास रखने के लिये अपने प्रचार अभियान को निरन्तर चलाते रहते है। वे जनता को राजनीतिक रूप से जागरूक बनाते है। वह उनके मतदान व्यवहार को प्रभावित करने का प्रयास करते है। वह जनता के समक्ष विकल्प बनकर प्रस्तुत होते है। दूसरे शब्दों से कहे तो राजनीतिक दलों के बिना लोकतन्त्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। विभिन्न विद्वानों जैसे एलन वाल, सारटोरी, डूर्वजर, मिचेल्स, आदि ने राजनीतिक दलों का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण किया है। आधुनिक समय में राजनीतिक दलों का स्वरुप कार्यविधि , ढांचा में भी बदलाव दिखायी पड़ रहा है। इन सबके बावजूद राजनीतिक दलों के अभाव में लोकतन्त्र की कल्पना भी संभव नहीं है।

9.11 शब्दावलीः-

अल्पतन्त्र का लौह नियमः- मिचेल्स ने यह सिद्धान्त दिया। इसका अर्थ है कि शासन सदैव योग्य लोगों के हाथ में रहता है। जो अल्पसंख्या में होता है।''

बहुदलीय व्यवस्थाः- किसी भी शासन व्यवस्था में दो से अधिक दलों का अस्तित्व बहुदलीय व्यवस्था कहलाता है।

कार्यवाहक बहुदलीय व्यवस्थाः- दो से अधिक दलों के अस्तित्व के बावजूद वास्तविकता में सत्ता के लिये दो दलों में संघर्ष रहता है। ऐसी व्यवस्था को कार्यवाहक बहुदलीय व्यवस्था कहते है।

सर्वसत्तावादी दलः- यह वह व्यवस्था है जिसमें एक दल ही प्रभावी रहता है। उसके पास सभी प्रकार की सत्ता समाहित रहती है।

9.12 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तरः-

1. ब, 2. स, 3. द, 4. द, 5. स, 6. द

9.13 संदर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1.जौहरी जे0सी0, जौहरी सीमा, आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त
2.गेना सी0बी0, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थायें
3.सिंघल एस0सी0, तुलनात्मक राजनीति
4.खन्ना वी0एन0, आधुनिक सरकारें
5.जैन आर0सी0, तुलनात्मक राजनीति

9.14 सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्रीः-

1.गाबा ओ0पी0, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा
2.सोडारों माइकल, कम्परेटिव पॉलिटिक्स
3.संधू ज्ञान सिंह, राजनीति सिद्धान्त
4.राय गांधी जी, तुलनात्मक राजनीतिक संस्थायें

9.16 निबन्धात्मक प्रश्नः-

1.राजनीतिक दल से क्या समझते है? इनके कार्यों का वर्णन कीजिये।
2.राजनीतिक दलों की परिभाषा दीजिये तथ इसके गुण दोषों का वर्णन कीजिये।
3.राजनीतिक दलों का अर्थ समझाइये तथा इनकी विशेषतायें बताइये।
4.राजनीतिक दल पर एक निबन्ध लिखिये।
5.राजनीतिक दल से क्या समझते है? दलीय व्यवस्था के प्रकार पर प्रकाश डालिये।

इकाई 10: दबाव समूह और राजनीति

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 अर्थ एवं परिभाषा
10.4 दबाव समूह के तत्व
10.5 दबाव समूह के उदय के कारण
10.6 राजनीतिक दल एवं दबाव समूह में अंतर
10.7 दबाव समूह के साधन
10.8 दबाव समूह के दोष
10.9 दबाव समूह के प्रकार / वर्गीकरण
10.10 दबाव समूह एवं लाबींइंग मेंअन्तर
10.11 दबाव समूह एवं हित समूह मेंअन्तर
10.12 दबाव समूह राजनीति की प्रभावकारिता के निर्धारक
10.13 दबाव समूह की सक्रियता के विभिन्न स्थान
10.14 दबाव समूह एवं लोकतन्त्र
10.15 विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं (सरकारों) मेंदबाव समूह
10.15.1 ऑग्ल- अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था मेंदबाव समूह
10.15.2 यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूह
10.15.3 इटली एवं फ्रांस में दबाव समूह
10.15.4 सर्वाधिकारवादी राजनीतिक व्यवस्थामेंदबाव समूह
10.15.5 विकासशील राष्ट्रों में दबाव समूह
10.6 सारांश
10.17 शब्दावली
10.18 अभ्यास के प्रश्न
10.19 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.20 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर
10.21 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.22 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

लोकतन्त्र मेंराजनीतिक दल व्यक्ति एवं सरकार के बीच सम्पर्क सूत्र के रूप मेंकार्य करते हैं। समय गुजरने के साथ बड़े राज्यों मेंबड़ी आकांक्षाओं को पूरा करने मेंराजनीतिक दल असमर्थ होने लगे। इसी समय जन आकांक्षा के ज्वार, लोगों की बढ़ती आवश्यकताओं ने लोगों को अपने हितों के आधार पर संगठित किया। कतिपय यही कारण है बीसवीं शताब्दी मेंअनेक हित समूह अथवा दबाव समूह उभरे।

आधुनिक राजनीति शास्त्र मेंदबाव समूह की भूमिका महत्वपूर्ण हैं ये बहुलवाद से मान्यता प्राप्त समूह है। जिन्हें लास्की, कोल, फिंगिस, मेटलैण्ड जैसे विद्वानों ने स्वीकार किया। आधुनिक समय मेंइनका महत्व इतना बढ़ गया है कि फाइनर इन्हें 'अज्ञात साम्राज्य' कहता है वहीं मैंकिन इन्हें 'अदृश्य सरकार तथा सेलिन इसे 'अनौपचारिक सरकार' कहता है आमण्ड पावेल के शब्दों में- ''हर समाज तथा राजनीतिक पद्धति मेंमाँगें प्रस्तुत करने की अपनी रीतियाँ होती हैं तथा हितों के निर्णयकों के समक्ष उन्हें विभिन्न रूपों मेंप्रस्तुत किया जाता है। लोकतान्त्रिक प्रक्रिया मेंयह कार्य हित समूह द्वारा किया जाता है। यही कारण है हित समूह का अध्ययन बेहद महत्वपूर्ण है।''

10.2 उद्देश्यः-

- दबाव समूह का अर्थ एवं उत्पत्ति समझाना।
- आधुनिक समय में दबाव समूह के विभिन्न प्रकारों से अवगत कराना।
- विभिन्न शासन व्यवस्थाओं में दबाव समूह की भूमिका को समझना।
- दबाव समूहों के साधन एवं गुणदोष को समझना।

10.3 अर्थ एवं परिभाषा-

सामान्य शब्दों मेंकहें तो दबाव समूह विशेष हितों के साथ जुड़े एसे संगठन होते हैं जो अपने समूह के हितों की रक्षा के लिए नीति निर्माताओं पर दबाव बनाते हैं।

वी0ओ0की0 के शब्दोंमें- ''दबाव समूह वे निजी संघ हैं जो सार्वजनिक नीतियों का प्रभावित करने के लिये बनते हैं।''

ओटी गार्ड के शब्दों में- ''दबाव समूह ऐसे व्यक्तियों का औपचारिक संगठन है जिनके एक या अनेक सामान्य उद्देश्य अथवा स्वार्थ होते हैं जो घटनाओं के क्रम को विशेष रूप से सार्वजनिक नीति के निर्माण और शासन को अपने हितों की रक्षा एवं वृद्धि के लिये प्रभावित करते हैं।''

माइनर वीनर के शब्दों में- ''हित अथवा दबाव समूह से हमारा अभिप्राय किसी ऐसे ऐच्छिक रूप से संगठित समूह से होता है जो सरकार के संगठन से बाहर रहकर अधिकारियों की नियुक्ति, सरकार की नीति, इसका प्रशासन तथा इसके निर्णय को प्रभावित करने का यत्न करता हो।''

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि दबाव समूह एक से हित वाले लोगों का एक समूह है जो अपने समूह हित की पूर्ति के लिए सरकार पर दबाव बनाते हैं। ये समूह औद्योगिक, व्यापारिक, व्यावसायिक, श्रमिक समूह विधि निर्माण के कार्य को अपने हित मेंप्रभावित करने का प्रयास करते हैं। ये समूह अपने सदस्यों के हितों की पूर्ति के लिये सभी माध्यमों से दबाव बनाते है।

10.4 दबाव समूह के प्रमुख तत्वः-

1.सीमित उद्देश्यः- जहाँ राजनीतिक दल का उद्देश्य सार्वजनिक हित की पूर्ति करना होता है वहाँ दबाव समूह का उद्देश्य सीमित होता है। यह केवल अपने समूह के हित को पूरा करने का प्रयास करते हैं। ये अपने समूह हित को पूरा करने के बाद या तो निष्क्रिय हो जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं। इनका स्वार्थ केवल अपने समूह हित तक होता है। ये सार्वजनिक हित, राष्ट्रहित के विषय मेंसक्रिय नहीं रहते।

2.सीमित सदस्यताः- दबाव समूह का जन्म ही वर्ग विशेष, समूह विशेष की हित पूर्ति के लिये होता है। यही कारण है कि इनकी सदस्यता सीमित रहती है। ये एक विशेष वर्ग के लोग होते हैं। इसमेंसम्पूर्ण देश के सभी समूहों का प्रतिनिधित्व नहीं होता। यही कारण है कि इनकी सदस्यता सीमित होती है। उदाहरण के लिये वे छात्र संघ, किसान सभा, मजदूर संघ के रूप मेंदिखायी पड़ते हैं।

3.संवैधानिक-असंवैधानिक साधनों का प्रयोगः- दबाव समूह अपने उद्देश्य को पाना चाहते हैं। वे सरकार की विधि निर्माण की प्रक्रिया पर दबाव बना कर अपने उद्देश्यों को पूरा करना चाहते हैं। इसके लिये कई बार वे संवैधानिक तथा असंवैधानिक माध्यमों का भी प्रयोग करते है। वे विधि निर्माताओं को धमकी देना, प्रलोभन देना, धन देना, डराना आदि सभी उपक्रम कर अपने लिये कार्य करवाना चाहते हैं। वह सभी प्रकार के हथकन्डे अपना कर अपने हितों की पूर्ति करते हैं।

4.शासन एवं विधान मण्डल की सदस्यता नहीं- ये विधि निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित कर अपने हित मेंविधि निर्माण चाहते हैं। इस विधि निर्माण प्रक्रिया मेंखुद को शामिल नहीं करना चाहते अर्थात्

स्वयं चुनाव लड़कर विधानमण्डल मेंपहुँचकर स्वयं कानून बनाने मेंशामिल नहीं होना चाहते। शासन के उत्तरदायित्व से बाहर रहकर केवल दबाव द्वारा अपने हित साधना चाहते हैं।

5.अनिश्चित कार्यकालः- दबाव समूह का जन्म ही निश्चित उद्देश्य एवं हित साधन के लिए होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के साथ ही उनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है और वो भी समाप्त हो जाते हैं। कुछ दबाव समूह जिनके उद्देश्य पूरे नहीं हुए हैं वे बने रहते है। इन दबाव समूहों की सक्रियता मेंअन्तर आता रहता है।

6.सभी शासन व्यवस्थाआं मेंउपलब्धताः- दबाव समूह आधुनिक समय मेंसभी शासन व्यवस्थाओं मेंउपलब्ध दिखायी पड़ते हैं। लोकतन्त्र हो या तानाशाही, पूँजीवादी राज्य हो या समाजवादी राज्य सभी मेंदबाव समूह सक्रिय दिखायी पड़ते हैं। राबर्ट सी0 वोन के शब्दों में- ''दबाव समूह सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं मेंसर्वाधिकारवादी राज्यों मेंभी पाये जाते हैं।

10.5 दबाव समूह के उदय के कारणः-

दबाव समूह के उदय के प्रमुख कारण निम्न हैः-

1.राज्य के कार्यों में वृद्धि होने से शासन के अतिरिक्त सामाजिक, आर्थिक कार्य भी राज्य करने लगा। अपने वर्ग अथवा समूह हित के लिये कानून बनवाने लोग संगठित हुए।

2.औद्योगित क्रान्ति ने मजदूर वर्ग को जन्म दिया। वे अपने हितों के लिये संगठित प्रयास करने लगे।

3.विभिन्न वर्गों की बढ़ती आकांक्षा एवं जागरूकता उन्हें समान हित के आधार पर संगठित करता है।

4.प्रादेशिक निर्वाचन प्रणाली या प्रादेशिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त जो क्षेत्र के आधार पर प्रतिनिधित्व देता है जिसमेंआर्थिक समूह, सामाजिक, सांस्कृतिक समूहों का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता। अतः वे अपने हितों के लिये संगठित होते हैं।

5.बढ़ती महत्वाकांक्षा भी अनेक दबाव समूहों का निर्माण करवाती है। राजनीति मेंसक्रिय होने की लालसा मेंकुछ लोग दबाव समूह का गठन करते हैं।

10.6 राजनीतिक दल एवं दबाव समूह मेंअन्तरः-

राजनीतिक दल एवं दबाव समूह किसी भी शासन व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग हैं। जहाँ राजनीतिक दलों के बिना लोकतन्त्र का संचालन नहीं हो सकता वहीं दबाव समूह के बिना भी हम किसी शासन व्यवस्था की कल्पना नहीं कर सकते। जहाँ राजनीतिक दल सीधे सरकार, नीति निर्माताओं को नियन्त्रित कर राष्ट्रीय नीतियों का निर्माण करवाते हैं। वहीं दबाव समूह भी समाज एवं शासन के साथ जुड़कर अपने पक्ष मेंनीतियों का निर्माण करवाते हैं। ये सरकार के साथ समाज एवं व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध रखते हैं। इसके बावजूद दबाव समूह एवं राजनीतिक दल में कुछ अन्तर है।

मौरिस डूवर्जर ने इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है - ''राजनीतिक दल सत्ता प्राप्त करके उसका उपयोग करना चाहते हैं- वे ऐसा महापौरों, सीनेट सदस्यों को निर्वाचित करवाकर तथा मन्त्रियों एवं राज्य के अध्यक्ष को चुनवाकर करते हैं। इसके विपरीत दबाव समूह राजनीतिक सत्ता को प्रत्यक्ष रूप

से प्रयोग करने मेंहाथ नहीं बँटाते हैं। वे सत्ता से दूर रहते हुये, सत्ता को प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं। वे उस पर दबाव डालने का प्रयास करते हैं जिसके पास सत्ता होती है। वे अपने सदस्यों को सत्तारूढ़ कराने का प्रयास नहीं करते हैं। हैरल्ड ब्रूस ने दबाव समूह एवं राजनीतिक दलों के सम्बन्धों की व्याख्या करते हुए लिखा है- ''दबाव समूह प्रायः राजनीतिक दलों से स्वतन्त्र होते हुए भी उनके सहयोगी होते हैं। परिस्थिति के अनुसार उनके सम्बन्ध बदलते रहते हैं। दबाव समूह सामान्यतः गैर राजनीतिक होते हैं। वे दलीय सीमाओं को लांघकर मतदाताओं का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।'' दबाव समूह एवं राजनीतिक दलों मेंप्रमुख अन्तर निम्न है-

राजनीतिक दल एवं दबाव समूह मेंअन्तर

1.राजनीतिक दल राजनीतिक 1.दबाव समूह गैर-राजनीतिक

2.राजनीतिक दल का व्यापक क्षेत्र 2.दबाव समूह का क्षेत्र छोटा

3.राजनीतिक दल का कार्यक्रम व्यापक3.दबाव समूह का कार्यक्रम संकीर्ण

4.राजनीतिक दल संगठित 4.दबाव समूह असंगठित भी

5.संवैधानिक साधनों मेंविश्वास 5.येन-केन प्रकारेण हित सिद्धि

6.राजनीतिक दल सदैव क्रियाशील 6.उद्देश्य सिद्धि तक ही क्रियाशील

7.राजनीतिक दल विधानमण्डल के भीतर और बाहर कार्य करते हैं।7.दबाव समूह केवल विधानमण्डल के बाहर ही कार्य करते हैं।

8.राजनीतिक दल का उद्देश्य सत्ता प्राप्त कर लक्ष्य सिद्धि 8.दबाव समूह विधि निर्माता व प्रशासक को प्रभावित करने तक सीमित।

1.राजनीतिक दल राजनीतिक होते हैं जबकि दबाव समूह गैर राजनीतिकः- राजनीतिक दलों के उद्देश्य राजनीतिक होते हैं। वे चुनाव में भाग लेते हैं, चुनाव मेंप्रत्याशी खड़े करते हैं। वे चुनाव जीतकर शासन सत्ता को प्राप्त करना चाहते हैं। दबाव समूह सत्ता प्राप्त करना नहीं चाहते, वे विधायकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रभावित कर दबाव बना नीति को अपने हित मेंबनवाने का प्रयास करते हैं, जिससे उस वर्ग विशेष (हित समूह) के हितों की पूर्ति हो सके। इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजनीतिक दल औपचारिक राजनीतिक संगठन होते हैं जबकि दबाव समूह बाहर रहकर अपना हित साधना चाहते हैं।

2.राजनीतिक दलों का क्षेत्र व्यापक होता है जबकि दबाव समूह का छोटाः- राजनीतिक दलों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। इसमेंअनेक वर्गों, समूहों के लोग शामिल होते हैं। इनकी सदस्य संख्या लाखों में होती है। इसके विपरीत दबाव समूह की सदस्य संख्या सीमित तथा क्षेत्र भी सीमित होता है। कोई भी व्यक्ति एक साथ कितने भी समूहों का सदस्य बन सकता है। परन्तु एक बार मेंएक ही दल का सदस्य बन सकता है। अतः क्षेत्र के आधार पर राजनीतिक दलों एवं दबाव समूह मेंअन्तर है।

3.राजनीतिक दलों के कार्यक्रम व्यापक जबकि दबाव समूह के संकीर्णः- राजनीतिक दल वर्ष भर संपूर्ण देश में विभिन्न कार्यक्रम चलाते हैं। वहीं दबाव समूह कार्यक्रम एवं हित की दृष्टि से संकीर्ण तो

होते ही है साथ ही अत्याधिक सजातीय होते हैं। उनके मुद्दे व हित समान होते हैं। अतः विचारों की संगति ही एकता एवं सजातीयता प्रदान करती है। दूसरी तरह दलों के कार्यक्रम व्यापक क्षेत्र एवं मुद्दे भी व्यापक होते हैं। यही कारण है कि उनमेंसजातीयता नहीं हो पाती है। अतः दलों एवं दबाव समूहों में कार्यक्रमों की व्यापकता के आधार पर अन्तर है।

4.राजनीतिक दल संगठित जबकि दबाव समूह असंगठित होते हैः- राजनीतिक दल सम्पूर्ण देश या प्रदेश का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे सत्ता प्राप्ति करना चाहते हैं। अतः वे पूर्णतः संगठित होते हैं। इनकी सदस्यता लाखों में होती है। इनका संगठन पद-सोपान पर आधारित होता है। प्रत्येक पदाधिकारी की जिम्मेदारी तय होती है। दल के अंदर लोकतान्त्रिक चुनाव होते हैं। इसके ठीक विपरीत दबाव समूह असंगठित होते हैं। वे केवल त्वरित लाभ एवं हित के लिये नीति निर्माताओं एवं क्रियान्वन करने वालों को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं।

5.राजनीतिक दल संवैधानिक साधनों मेंविश्वास करते हैं जबकि दबाव समूह नहीं- राजनीतिक दलों एवं दबाव समूह में यह प्रमुख अन्तर है। जहां दबाव समूह 'एनन केन प्रकारेण' अथवा किसी तरह अपने हित साधना चाहता है। वह हितपूर्ति के लिये अनैतिक, अमर्यादित आचरण जैसे - घूस, शराब आदि का प्रयोग करने से भी संकोच नहीं करते। वहीं राजनीतिक दल संवैधानिक साधनों के द्वारा सर्वोच्च लक्ष्य (सत्ता) को प्राप्त करना चाहते हैं। वे हिंसा अथवा अन्य असंवैधानिक साधनों में विश्वास नहीं करते। यही कारण है कि राजनीतिक दल लोकमत को पक्ष में कर, मत के द्वारा सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

6.राजनीतिक दल सदैव क्रियाशील जबकि दबाव समूह सदैव नहीं- राजनीतिक दल एवं दबाव समूह मेंयह प्रमुख अन्तर है कि जहाँ राजनीतिक दल का क्षेत्र बड़ा होता है, लक्ष्य बड़ा होता है अतः उनके प्रयास भी बड़े होते हैं। वे वर्ष भर क्रियाशील रहते हैं। वे वर्ष भर कार्यक्रम, आन्दोलन चलाते हैं। दूसरी तरफ दबाव समूह सदैव क्रियाशील नहीं रहते। वे केवल अपने हितों के लिये सक्रिय होते हैं और हित पूरा होते ही निष्क्रिय हो जाते हैं।

7.राजनीतिक दल विधानमण्डल के अन्दर एवं बाहर कार्य करते हैं जबकि दबाव समूह केवल बाहरः- राजनीतिक दल एवं दबाव समूह मेंप्रमुख अन्तर है जहाँराजनीतिक दल जनता के समर्थन से सत्ता पाते हैं। इसलिये वह इस समर्थन को खोना नहीं चाहते। अतः वह सदैव जनता के बीच रहते हैं। तथा विधायिक मेंभी अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। इसके विपरीत दबाव समूह केवल अपने समूह मेंसक्रिय रहते हैं। वह विधानमण्डल के सदस्य नहीं होते अतः वहाँ सक्रिय नहीं रहते।

8.सत्ता प्राप्ति को लेकर अन्तरः- राजनीतिक दल का उद्देश्य सत्ता प्राप्त कर अपने नीतियों एवं सिद्धान्तों को लागू करना होता है जबकि दबाव समूह केवल अपने स्वार्थों की पूर्ति चाहता है। वह सत्ता प्राप्ति की लालसा नहीं रखते। वे केवल विधि निर्माताओं, प्रशासकों को प्रभावित कर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहते हैं।

10**.7 दबाव समूह के साधनः-**

आज दुनिया में लाखों दबाव समूह कार्यरत हैं। इन सबके अपने उद्देश्य एवं कार्य करने के तरीके हैं। दबाव समूहों के साधन एवं उद्देश्य को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं रहा। कुछ विद्वान इनमेंअनेक बुराइयाँ देखते हैं तथा लोकतन्त्र भ्रष्ट करने का माध्यम मानते हैं। वहीं कुछ विद्वान इसे उचित, राजनीतिक प्रक्रिया मेंउत्पन्न रिक्तता को भरने का माध्यम मानते हैं। अमेरिका एवं ब्रिटेन के दबाव समूहों के प्रति नजरिये में भी अन्तर है। जहां अमेरिका मेंइन्हें भ्रष्टता के गढ़ के रूप मेंदेखा जाता है वहीं ब्रिटेन मेंयह लोकतन्त्र के अनिवार्य हिस्से के रूप में देखे जाते हैं। दबाव समूहों द्वारा अपनाये जाने वाले साधन इस प्रकार हैः-

1.संगठन निर्माणः- दुनिया मेंदो तरह से दबाव समूह दिखायी पड़ते हैं। कुछ दबाव समूह पूर्णतः संगठित होते हैं। वे पद-सोपान के क्रम मेंसंगठित होते हैं। संगठन बनाकर वह कार्य विभाजन करते हैं। इस तरह वह उत्तरदायित्व तय कर अपने उद्देश्यों को पाने का प्रयास करते हैं।

2.लॉबीगः- दबाव समूह का यह महत्वपूर्ण साधन है। अमेरिका मेंयह तरीका बहुत लोकप्रिय है। इसमेंदबाव समूह के सदस्य विधायिका के सदस्यों से सीधा सम्बन्ध स्थापित कर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। इस उद्देश्य के लिये विभिन्न दबाव समूह विशेष प्रतिनिधि नियुक्त करते हैं। दबाव समूह द्वारा प्रयोग मेंलाया जा रहा प्रमुख साधन है।

3.सामूहिक प्रचारः- दबाव समूह द्वारा प्रयोग मेंलाया जा रहा प्रमुख साधन है। वे अपने उद्देश्यों, लक्ष्यों का व्यापक प्रचार करते हैं। वे विभिन्न प्रचार एजेन्सियों के माध्यम से अपनी मांगों को सरकार तक पहुँचाते हैं तथा उन्हें वैध ठहराते हैं। वह सुनियोजित ढंग से व्यापक प्रचार अभियान द्वारा सरकार पर दबाव बनाते हैं। इस साधन के द्वारा सरकार पर दबाव बना अपना हित साधते हैं।

4.पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशनः- दबाव समूह का यह महत्वपूण साधन है। इसमेंविभिन्न समूह विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करते हैं। वे अपनी मांगों का ने केवल प्रचार करते हैं।वरनउनको सही भी ठहराते हैं। इन पत्र-पत्रिकाओं का प्रसार दूर-दूर तक किया जाता है। इससे दबाव समूह को अनेक लाभ होते हैं। उन्हे प्रचार, वैधता तो मिलती ही साथ ही अनेक नये सदस्य भी मिलते हैं जिससे इनकी सदस्य संख्या बढ़ती है।

5.जनता से सीधा सम्पर्कः- दबाव समूह के पास सदस्यता होती है। वे सीधे जनता से सम्पर्क करते हैं। वे जनता के बीच जाकर अपनी मांगों का प्रचार करते हैं। साथ ही जनसमर्थन भी प्राप्त करते हैं। उनको प्राप्त जनसमर्थन ही उनकी शक्ति होती है जिसके माध्यम से भी वह अपनी मांगों को पूरा करवाते हैं।

6.विभिन्न राजनीतिक दलों से परोक्ष सम्बन्धः- दबाव समूह सीधे चुनाव मेंभाग नहीं लेते परन्तु वे विभिन्न राजनीतिक दलों से परोक्ष सम्बन्ध रखते हैं। वे उनको विधायिका मेंपहुँचाकर अपने हितों की पूर्ति करवाते हैं। भारत मेंभारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ ;प्ण्छण्ज्ण्ब्ण्द्ध साम्यवादी दलों से, भारतीय मजदूर संघ (भारतीय जनता पार्टी से) जुड़ा हुआ है।

7.हड़ताल एवं धरना प्रदर्शनः- दबाव समूह सरकार एवं विधि निर्माताओं पर दबाव बनाने के लिये हड़ताल एवं धरना प्रदर्शन करते हैं। इसके माध्यम से वह अपने साथ उपस्थित संख्या बल प्रदर्शित

करते हैं। वे इसके माध्यम से सरकार का ध्यान आकृष्ट कर अपनी मांगों को मनवाने का प्रयास करते हैं।

8.न्यायालय की मददः- दबाव समूह अपने हितों के लिये विभिन्न उपक्रम करते हैं। परन्तु कई बार ऐसे कानून बन जाते हैं जो उनके हितों के विरूद्ध होता है तो वे न्यायालय की शरण मेंजाकर उन कानूनों का रद्द कराना चाहते हैं। वे कई बार किसी मामले मेंसार्वजनिक हित का हवाला देकर सर्वोच्च न्यायालय मेंजनहित याचिका ;च्ण्ण्स्ण्द्ध भी करते है। अतः दबाव समूह न्यायालय की मदद भी लेते हैं।

9.गोष्ठियों एवं सभाओं का आयोजन - वे समय-समय पर जनजागरण बढ़ाने के लिये गोष्ठियों एवं सभाओं का आयोजन करते हैं। ये गोष्ठियों एवं सभाओं का आयोजन सूचनाओं के आदान-प्रदान का महत्वपूर्ण माध्यम है। वे इन सभाओं, गोष्ठियों में विधि निर्माताओं एवं प्रभावशाली व्यक्तियों का आमन्त्रित करते हैं। वे इससे अपने मतों को प्रभावशाली ढंग से रखते हैं तथा अधिकारियों एवं नीतिनिर्माताओं को अपने पक्ष मेंकरने का प्रयास करते हैं।

10.अनैतिक माध्यमों का उपयोगः- दबाव समूहों कई बार हित साधने के लिये अनैतिक साधनों का भी प्रयोग करते हैं। वे असंवैधानिक साधनों का प्रयोग करने से भी नहीं हिचकते हैं। कतिपय यही कारण है कि दबाव समूह की व्यापक आलोचना भी की जाती है।

10**8 दबाव समूहों के दोषः**- दबाव समूहों के सम्बन्ध मेंविद्वानों मेंएकमत का अभाव है। जहाँ ब्रिटेन के विचारक इसे लोकतन्त्र के लिये स्वाभविक मानते हैं। वहीं अमेरिका की व्यवस्था से जुड़े विद्वान इसे लोकतन्त्र मेंअनैतिकता एवं अमर्यादित आचरण के वाहक मानते हैं। वे कहते है कि दबाव समूह लोकतन्त्र में भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता को बढ़ा रहे हैं। दबाव समूहों के प्रमुख दोष निम्न हैः-

1.संकीर्ण विचारों पर आधारित

2.अप्रजातान्त्रिक एवं अनुत्तरदायी समूह

3.व्यापक सामाजिक हित, राष्ट्रहित की उपेक्षा

4.भ्रष्ट एवं अमर्यादित आचरण के प्रणेता

5.वसुधैव कुटुम्बकम अथवा सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के विरूद्ध

6.दलीय अनुशासन के विरूद्ध

7.लोकतन्त्र के मूल सिद्धान्तों की अवहेलना

10.9 दबाव समूहों के प्रकार अथवा वर्गीकरणः-

समाज मेंकई तरह के दबाव समूह दिखायी पड़ते हैं। संगठन के आधार पर यह जनवादी समूह तथा परम्परागत या विशिष्ट वर्गीय समूह के रूप मेंदिखते हैं अनेक विद्वानों ने दबाव समूहों के वर्गीकरण प्रस्तुत किये है। लोकतान्त्रिक देशों मेंयह मुख्य रूप से छोटे, बड़े, स्थाई, अस्थाई कई प्रकार के दबाव

समूह पाये जाते हैं। यह वर्गीकरण लक्ष्य, संगठन की प्रकृति, अवधि, कार्य, क्षेत्र आदि के आधार पर किया जाता है।

लक्ष्य के आधार पर यह स्वार्थी एवं परोपकारी तथा संगठन के आधार पर औपचारिक एवं अनौपचारिक तथा कार्य क्षेत्र के आधार पर सीमित एवं वृहद कार्य क्षेत्र वाले दबाव समूह कहा जा सकता है। राजनीति शास्त्र मेंअनेक विद्वानों ने जैसे आमण्ड, हिचनर, जीन ब्लोण्डेल ने अलग-अलग वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं। इनमेंसे आमण्ड एवं ब्लोण्डल के वर्गीकरण इस प्रकार है-

आमण्ड का वर्गीकरण:- आमण्ड ने दबाव समूहों को चार भागों मेंबाँटा। उसके वर्गीकरण को अनेक विद्वानों के साथ हिचनर एवं लेवाइन ने स्वीकार किया। आमण्ड ने हित समूह (दबाव समूह) को चार भागों मेंबांटा:-

1.संस्थागत हित समूहः- सेना, पुलिस, प्रशासनिक अधिकारियों के संगठन

2.प्रदर्शनात्मक या उद्दण्ड हित समूहः- हिंसक , सविंधान विरूद्ध कार्य करने वाले

3.साहचर्य हित समूह:-व्यापारी संघ, किसान संघ, मजदूर संघ आदि

4.असाहचर्य हित समूहः- ब्राहमण महासभा, क्षत्रिय महासभा, सुन्नी वक्फ बोर्ड

जीन ब्लौण्डेल का वर्गीकरणः-

1.सामुदायिक हित समूह

- रूढ़िगत ; Customary Pressure Group - क्षत्रिय महासभा जाट संघ
- संस्थागत ; Institutional Pressure Group. सैनिक कल्याण परिषद, कर्मचारी संघ

2.साहचर्य हित समूह

- संरक्षात्मक -श्रमिक, व्यापारिक संघ
- उत्थानात्मक ; - गौ-रक्षा, नारी कल्याण

उपरोक्त दो वर्गीकरण को देखने के बाद दबाव समूह के निम्न प्रकार बनाये जा सकते हैः-

दबाव समूह के प्रकारः-

1.संस्थानात्मक दबाव समूहः- संस्थानात्मक दबाव समूह वह होते हैं जिनका अपना संगठनात्मक ढांचा होता है जो किसी न किसी संस्था से जुड़े होते हैं। ऐसे दबाव समूह मेंमुख्य रूप से सेना, पुलिस नौकरशाही जैसे विभिन्न संस्थान आते हैं। ये विभिन्न संस्थानों मेंकार्य कर रहे लोगों को अपने हित मेंबनाया समूह होता है। इनके सदस्य इनके साथ अन्य समूहों की सदस्यता भी लेते हैं। भारत मेंऐसे दबाव समूह मुख्य रूप से भारतीय पुलिस सेवा संघ, सैनिक कल्याण परिषद, भारतीय प्रशासनिक अधिकारी संघ प्रमुख हैं।

2.समुदायात्मक दबाव समूहः- समुदायात्मक संघ मुख्य रूप से अपने समुदाय विशेष के हितों की पूर्ति के लिये संगठित होते हैं। ये स्वतन्त्र होते हैं। ये किसी अन्य संस्था से जुड़े हो सकते हैं। ये मुख्य

रूप से एक साथ एक व्यवसाय करने से बने समूह होते हैं। इनमें मुख्य रूप से व्यापारी संघ, किसान संघ, मजदूर संघ आदि आते हैं।

3.असमुदायात्मक दबाव समूहः- इस समूह की मुख्य प्रेरक शक्ति जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, अथवा रक्त समूह होता है। ये स्वतः स्फूर्त समूह होते हैं। प्रायः यह संगठित नहीं होते। ये बेहद प्राचीन समय से अस्तित्व मेंहैं। इस समूह के पीछे अदृश्य रूप से समाज के परम्परागत मूल्य बन्धन का कार्य करते हैं। इसमें मुख्य रूप से क्षत्रिय महासभा, कायस्थ महासभा, सुन्नी वक्फ बोर्ड आदि है।

4.उद्दण्ड या प्रदर्शनकारी दबाव समूहः- यह मुख्य रूप से वह समूह है जो अपनी मांगों को लेकर हिंसक और संविधान विरूद्ध कार्य करने लगते हैं। वे अपनी मांगों को लेकर हड़ताल, धरना प्रदर्शन, अनशन, सार्वजनिक सम्पति को नुकसान पहुंचाना, रोड ब्लाक, आगजनी आदि का सहारा लेते हैं। वे इस अमर्यादित आचरण से शासन पर दबाव बनाने का प्रयास करते हैं।

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि दबाव समूहों का स्थान विभिन्न शासन प्रणालियों मेंबेहद मजबूत है। प्रारम्भ मेंइन्हें अनैतिक, आदर्शों के विरूद्ध एवं लोकतन्त्र को नष्ट करने वाला माना गया। समय के साथ राज्य के क्षेत्र, जनसंख्या एवं कार्य बढ़ने से राजनीतिक दलों की लोगों तक पहुँचने मेंअसमर्थता तथा लोगों की बढ़ती महत्वाकांक्षा एवं जागरूकता ने राजनीतिक रूप से दबाव समूह को जन्म दिया। आज लोकतन्त्र की कल्पना भी उनके बिना नहीं हो सकती। वे सूचनायें एकत्रित एवं प्रसारित करते हैं, सरकारों पर नियन्यत्र रखते हैं, व्यवसायिक प्रतिनिधित्व की कमी को पूरा करते हैं, सरकार एवं जनता के बीच कड़ी का काम करते हैं। वे विधानमण्डल के पीछे विधानमण्डल के समान है। कतिपय यही कारण है कि फाइनर ने उन्हें 'अज्ञात साम्राज्य' कहा।

10.10 दबाव समूह एवं लॉबीइंग मेंअंतर

दबाव समूह एवं लॉबी को सामान्यतः एक ही समझा जाता हैं वास्तव मेंदोनों मेंबड़ा अंतर है। दबाव समूह का कार्यक्षेत्र व्यापक होता है तथा अपने लक्ष्य एवं उद्देश्य को प्राप्त करने के उनके माध्यम भी व्यापक होते है। दबाव समूह अपने व्यापक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये प्रचार, पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन राजनीतिक दलों पर दबाव , हड़ताल, प्रदर्शन , न्यायालय की शरण तथा गोष्ठियों आदि का सहारा लेते है। वे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये अनैतिक माध्यमों का प्रयोग करने मेंभी संकोच नहीं करते है। वे अपने उद्देश्य के लिये सरकारी आकड़ों का विश्लेषण कर वह उनका प्रदर्शन कर अपने पक्ष को मजबूत करते है।

इसके विपरीत लाबीइंग का क्षेत्र एवं कार्यविधि दोनों ही दबाव समूह से संकुचित होती है। लांविग के अर्न्तगत केवल विधि निर्माताओं के ऊपर दबाव एवं प्रभाव बनाया जाता है। विधि निर्माताओं को किसी भी प्रकार से प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है। वे उन्हें प्रलोभन देने वं अनैतिक माध्यमों का प्रयोग कर अपने पक्ष मेंविधि निर्माण अपने पक्ष मेंकराने मेंविश्वास करते है। वे विधेयकों को अपने पक्ष मेंपास कराने का प्रयास करते है। वे जनमत को बिल्कुल ही महत्व नहीं देते । वे

सामान्यतः विधानसभा के लॉबी में सक्रिय रहते है और निजी संपर्कों के द्वारा विधायकों को अपने पक्ष मेंकर कानून अपने लिये बनवाने मेंसफल हो जाते है।

10.11 दबाव समूह एवं हित समूह मेंअंतर

सामान्यतः दबाव समूह एवं हित समूह को एक ही समझ लिया जाता है। वास्तव मेंदबाव समूह एवं हित समूह मेंएक बारीक रेखा है। यहाँ पर लाथम का कथन उल्लेखनीय है-'' सभी हित समूह दबाव समूह नहीं होते है, किन्तु परीस्थितिवश वे दबाव समूह की श्रेणी मेंआ जाते है। '' ऐसा माना जाता है कि जब तक हित समूह सक्रिय नहं रहते वे हित समूह रहते है। परन्तु जैसे ही वे हित पूर्ति के लिये सक्रिय हो जाते है वो दबाव समूह मेंपरिवर्तित हो जाते है। इस संबंध मेंपी0 एन0 मसालदान का विश्लेषण बड़ा महत्वपूर्ण है-'' समाज मेंव्यक्तियों के केवल सामान्य हित ही नहीं होते है , अपितु कुछ विशेष हित भी होते है।'' साधारणतया व्यक्ति अपन विशेष व्यवसायिक एवं आर्थिक हित को ज्यादा महत्व देता है। जिन व्यक्तियों के आर्थिक एवं व्यससायिक हित एक से होते है। वे एक हित गुट बन जाते है। कुछ हित गुट मजबूती से संगठित होते है। जब वह संगठित हो अपने विशेष हितों की पूर्ति के लिये सक्रिय हो शासन पर दबाव डालते है। तब वह दबाव समूहमेंपरिवर्तित हो जाते है।''

कार्टर और हर्ज ने दबाव समूह और हित समूह के अन्तर को बरीकी से स्पष्ट किया। उनके अनुसार - '' विभिन्न आर्थिक , व्यवसायिक ,धार्मिक नैतिक और अन्य समूहों से भरे आधुनिक बहुलवादी समाज के सम्मुख अनिवार्य रूप से एक बड़ी समस्या यही है कि विभिन्न हितों तथा शासन के बीच सामजस्य कैस रहे। एक स्वतन्त्र समाज के लिए हित समूह को स्वतन्त्र रूप से संगठित होने की आवश्यकता रहती है और जब वे समूह सरकारी तन्त्र और प्रक्रिया को प्रभावित करने का यत्न करते है और इस प्रकार कानूनों, नियमों, लाइसेन्स, तथा अन्य विधायी और प्रशासकीय कार्यों को अपने अनुकूल ढालने की चेष्टा करते है तो वे हित समूह दबाव समूह में बदल जाते है और हित समूह की गतिविधियों सरकार पर दबाव डालने की हो जाती है।''

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक समय मेंजागरूक समाज विभिन्न आर्थिक, सामाजिक,राजनीतिकतथा अन्य आवश्यकताओं के लिये एकजुट हो हित समूह बनाते है। जब वे इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वे सक्रिय होते है। और सरकार पर दबाव बनाने, प्रभावित करने का प्रयास करते है तब वह दबाव समूह में परिवर्तित हो जाते है। दबाव समूह एवं हित समूह मेंप्रमुख अन्तर निम्न हैः-

1.हित समूह अपने हितों की वृद्धि के लिये आग्रह , निवेदन आदि साधनों का प्रयोग करते है जबकि दबाव समूह सदैव दबाव की नीति अपनाते है।

2.हित समूह अपने हितों की रक्षा के लिये शासन को प्रभावित या उन्हें पीछे ढकलने का प्रयास नहीं करते है। इसके विपरीत दबाव समूह राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने के लिये विशेष रूप से प्रयासरत रहते है।

3.हित समूह जागृत नागरिक समाज का हिस्सा होता है। ये हमेशा अपने हितों के लिये सजग रहते है। इनका राजनीति से किसी भी प्रकार का कोई संबंध नहीं रहता है। दबाव समूह सरकार पर दबाव बनाने के लिये हर माध्यम का प्रयोग करते हैं। वे राजनीति के साथ प्रत्यक्ष संबंध रखते है।

10.12 दबाव समूह राजनीति की प्रभावकारिता के निर्धारकः-

दबाव समूह का अस्तित्व आज के सभी लोकतन्त्रों में पाया जाता है। आज के लोकतन्त्रों की कल्पना भी दबाव समूहों के अभाव में नहीं की जा सकती है। यह अलग बात है कि कुछ लोकतन्त्रों में ये अत्याधिक प्रभावशाली होते है तथा कुछ स्थानों पर वह सक्रिय नहीं रहते है। एक्सटीन की मान्यता है कि ये तीन तत्व ही दबाव समूह के प्रभावशीलता को तय करते हैः-

1.दबाव समूह के स्वयं के लक्षण का प्रभाव

2.सरकार की गतिविधियों का प्रभाव

3.सरकार की संरचनाओं के निर्णय लेने के का प्रभाव

(1) दबाव समूह के लक्षणः- एक्सटीन के मतानुसार दबाव समूह की स्थिति भी कई बार उसकी प्रभावशीलता के लिये जिम्मेदार होते है। दबाव समूह की आर्थिक स्थिति, उनका आकार, संगठन का ढ़ाचा, कार्यकर्ताओं की निष्ठा, आदि दबाव समूह के प्रभाव को निर्धारित करते है। यह भी देखा गया है कोई दबाव समूह अपने सदस्यों की कर्मठता, निष्ठा तथा नेताओं की योग्यता से हर प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था मेंप्रभावी रहते है वहीं कुछ दबाव समूह आर्थिक मजबूत स्थिति तथा बड़ी सदस्य संख्या होने के बावजूद प्रभावी नहीं हो पाते है।

(2) सरकार की गतिविधियों का प्रभावः- सरकार की गतिविधियेां तथा उनके निर्णय लेने की क्षमता भी दबाव समूह के प्रभाव को को निश्चित करती है। सरकार का ढ़ाचा अनिवार्य रूप से दबाव समूह के प्रभाव को स्पष्ट करता है। जहाँ निरकुंश शासन व्यवस्था में दबाव समूह का प्रभाव नगण्य हो जाता है। वहीं लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था में दबाव समूहो के समक्ष पर्याप्त अवसर रहता है। वे लोकतन्त्र में बेहद प्रभावशाली हो जाते है।

(3) सरकार के निणर्य लेने की क्षमता का प्रभावः- दबाव समूह की प्रभावशीलता भी अनेक कारणों से प्रभावित होती है। उनमें सरकार की निर्णय लेने की क्षमता भी एक है। यदि सरकार सक्षम है , त्वरित निर्णय लेने में समर्थ है तब कई बार नागरिक समाज से बने दबाव समूह के पास कार्यों को करने का अवसर ही नहीं रह जाता है। उन शासन व्यवस्था में दबाव समूह ज्यादा सक्रिय एवं कारगर रहते है। जहाँ पर सरकारें अनिर्णय की स्थिति में तथा असंवेदनशील होती है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि दबाव समूह की प्रभावशीलता कई कारणों से प्रभावित होती है। सरकार की नीति निर्माण की क्षमता दबाव समूह के प्रभव को तय करते है। कतिपय यही कारण है पश्चिम के उदार लोकतन्त्रों में भी दबावसमूहों के प्रभाव शक्ति मेंअंतर पाया जाता हैं। विकासशील देशों मेंभी सरकार की नीति निर्णय प्रक्रिया की संरचना, दल पद्धति कास्वरुपतथा राजनीतिक व्यवस्था का संचालन भी दबाव समूहों के प्रभाव को घटाते एवं बढ़ाते दिखते है।

10.13 दबाव समूह की सक्रियता के विभिन्न स्थानः-

यह स्वीकार तथ्य है कि लोकतन्त्र में दबाव समूह अपरिहार्य है। उनका लोकतन्त्रों में व्यापक प्रभाव रहता है। इस संबंध में एलनबाल का कथन उल्लेखनीय है-'' उदारवादी लोकतन्त्रों में दबावसमूहों की कार्यविधियाँ मुख्यतः कार्यपालिका तथा संसदीय स्तरों पर निर्णयकारी प्रक्रियाओं को प्रभावित करेन से संबध रखती है। इसमेंसे किसी भी स्तर पर बल देने का प्रयास आंशिक रूप से इन तीन भिन्नताओं पर निर्भर करेगा।'' राजनीतिक संस्थायें, दल पद्धति, राजनीतिक संस्कृति।'' दबाव समूह हर लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था मेंसक्रिय रहते है। इनकी सक्रियता का प्रमुख जोर उन संस्थाओं पर रहता है जिनसे इनके हितों की रक्षा और पूर्ति संबंधी निर्णय लिये जाते है। दूसरे शब्दों मेंकहे तो सरकार के सभी अंगों के साथ दबाव समूह सक्रिय रहता है। वे हर निर्णय निर्माण, क्रियान्वयन के स्तर पर सक्रिय रहते है। वे कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधायिका के साथ निकट संबंध रखते हुए , अपने हितों की पूर्ति कराने का प्रयास करते है। वे नौकरशाही के साथ भी घनिष्ठ संबंध रखते है। उनकी सक्रियता के विभिन्न स्थान निम्न हैः-

1.कार्यपालिका पर प्रभावः- समय गुजरने के साथ विधायिका की शक्तियों का क्षय हुआ और कार्यपालिका की शक्ति में वृद्धि हुई। कार्यपालिका के कार्यक्षेत्र मेंवृद्धि हुई। कतिपय यही कारण है कि आधुनिक समय मेंदबाव समूह का लक्ष्य क्षेत्र ;ज्तंहमज ।तमंद्ध कार्यपालिका होती है। संसदात्मक एवं अध्यक्षात्मक शासन दोनों ही व्यवस्थाओं मेंकार्यपालिका की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से विधि निर्माण के कार्य संलग्न रहती है। बजट निर्माण करना, कर प्रस्ताव, महत्वपूर्ण पदों के लिये नियुक्तियाँ आदि कार्यों मेंकार्यपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अतः दबाव समूह कार्यपालिका के स्तर पर सक्रिय हो अपने हितों की पूर्ति का प्रयास करते है। इस कार्य हेतु वे मंत्रियां, विभिन्न मत्रांलयों की परामर्शदायी समितियों को , विरोधी खेमों के सदस्यों को प्रभावित करने का प्रसास करते है। वे व्यवस्थापिका मेंभी प्रश्नों को उठाकर कार्यपालिका को प्रभावित करने मेंसफल हो जाते है। आज के समय में कार्यपालिका के शक्तिशाली स्वरूप को देखते हुए दबाव समूह अपनी पूरी शक्ति कार्यपालिका के ऊपर लगाकर उनको प्रभावित करने का प्रयास करती है। संसदीय शासन व्यवस्था मेंआज व्यवस्थापिका अनुचर बन कर रह गई है। कतिपय यही कारण है कि आज कार्यपालिका दबाव समूहों के द्वारा सर्वाधिक प्रभावित किया जाता है।

2.व्यवस्थापिका पर प्रभावः- व्यवस्थापिका सरकार का वह अंग है जो कानून बनाने का कार्य करती है। यही कारण दबाव समूह विधायिका को प्रभावित कर कानूनों को अपने हितों के अनुरूप बनवाने का प्रयास करते है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे चुनाव प्रचार, आर्थिक सहायता, द्वारा पहले विधायकों को अपने ऊपर आश्रित बना लेते है। उसके बाद वे उन्हीं के द्वारा अपने लिये विधि निर्माण करवाते है। इसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण उदाहरण अमेरिका मेंमिलता है जहाँ चुनाव मेंदबाव समूह प्रत्याशियों के चयन से लेकर निर्वाचन तक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। कई बार यही कारण है कि अमेरिका मेंकाँग्रेस के सदस्य दलों की अपेक्षा दबाव समूह से अधिक घनिष्ठता दर्शाते है। इस संबंध

मेंडी0 एम0 बर्मन ने लिखा है-'' कॉग्रेस (विशेषकर प्रतिनिधि सभा) के सदस्य अपने को दबाव समूह के पंजों में दबा हुआ महसूस करते है। अपने दल के आदेशों की तुलना मेंवे दबाव समूहों के आदेशों को ज्यादा महत्व देते है।''

इस संबंध मेंएलन वाल का विचार महत्वपूर्ण है। वे मानते है कि संसदीय शासनमेंदबाव समूह की सक्रियता बहुत महत्वपूर्ण है। आज व्यवस्थापिका कानून निर्माण की औपचारिकता ही निभाती है। यही कारण है दबाव समूह दल के बड़ें नेताओं, अधिकारियों पर ध्यान केन्द्रित करते है। दबाव समूह राजनीतिक दलों का अधिक प्रभावित करते है। अमेरिका में जहां अध्यक्षात्मक शासन है वहाँ पर विधायकों के ऊपर दलीय अनुशासन कठोर नहीं होता है। वहां दबाव समूह विधायिका के सदस्यों को प्रभावित करने का प्रयास किया। वे कई बार उनसे दल के विरूद्ध दबाव समूह के हित में मतदान करते हुए भी दिखायी पड़ते है।

3.न्यायपालिका पर प्रभावः- लोकतन्त्रों मेंन्यायपालिका को स्वतन्त्र रखने का प्रयास किया गया है। संविधान के द्वारा न्यायपालिका को ही संविधान की रक्षा तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा की जिम्मेदारी दी गई है। कुछ देशों में न्यायपालिका के पास न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति होती है जिसकेू द्वारा वे विधायिका एवं कार्यपालिका के ऊपर प्रभाव स्थापित करने मेंसफल हो जाते है। न्यायिक पुनरावलोकन के द्वारा न्यायपालिका की सर्वोच्चता अन्य दो अंगों पर स्थापित हो जाती है। इन व्यवस्थाओं मेंआम धारणा के विरूद्ध दबाव समूह न्यायपालिका में सक्रिय हो अपने हितों को साधने का प्रयास करती है। एलेन बाल के शब्दों में -'' अमेरिका मेंदबाव समूह ऐसे न्यायाधीशों के चुने जाने के लिये प्रयत्नशील रहते है जो बहुधा राजनीतिक रूप से सक्रिय रहे होते है। वे ' टेस्ट केसेज' का इस्तेमाल करके और न्यायाधीशों के कुछ निर्णयों का प्रभावित करने के लिये जन अभियान चलाकर, न्यायाधीशों पर दबाव डालने की कोशिश करते है।''

भारत में भी न्यायाधीशों को प्रभावित करने के प्रयास पूर्व में भी हुए है। और आज भी इसके उदाहरण मिल जाते है। भारत मेंप्रीवियर्स, तथा बैकों के राष्ट्रीयकरण के मुकदमें मेंसर्वोच्च न्यायालय मेंसुनवाई के समय दबाव समूह काफी सक्रिय दिखायी पड़े थे। कुछ विद्वान इन संकेतों को लोकतन्त्र के लिये शुभ संकेत नहीं मानते है। इसके बावजूद आधुनिक समय में दबाव समूह की कार्यप्रणाली, प्रभाव ऐसा है जिससे सरकार का कोई अंग बच नहीं सकता है।

4.प्रशासनिक स्तर पर प्रभावः- दबाव समूह प्रशासनिक अधिकारियों को भी प्रभावित करने का प्रयास करते है। सभी नीतियों, कानूनों का क्रियान्वयन प्रशासनिक अधिकारियों के द्वारा होता है। प्रदत्त विधायन मेंकानून बनाने मेंअधिकारियों एवं विशेषज्ञों की सहायता ली जाती है। ऐसी स्थिति में दबाव समूह सक्रिय हो इनसे अपने हितों की पूर्ति करवाने का प्रयास करते है। एलन वाल का मत है कि विधि निर्माण तथा क्रियान्वयन के समय अपनी तकनीकी ज्ञान की श्रेष्ठता के कारण अधिकारियों की स्थिति कई बार मंत्रियों से भी श्रेष्ठकर हो जाती है। ऐसे में दबाव समूह को अपने हित साधने का

अवसर इन अधिकारियों को प्रभावित कर प्राप्त हो जाता है। विकासशील देशों में दबाव समूह की सक्रियता प्रशासनिक स्तर पर ज्यादा दिखायी पड़ता है।

5.निर्वाचन के स्तर पर प्रभाव:-दबाव समूह निर्वाचन के स्तर पर भी प्रभाव स्थापित करने का प्रयास करते है। इकबाल नारायण के शब्दों में-'' कई बार दबाव समूह जब अपने हितों की पूर्ति करने मेंअसफल हो जाते है तो वे चुनाव के अवसर पर आर्थिक शक्ति अथवा अन्य आधार पर राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करने का प्रयास करते है। जाति, प्रजाति, सम्प्रदाय , क्षेत्र तथा शक्ति के द्वारा वे सबसे पहले सभी राजनीतिक दलों क संभावित प्रत्याशियों की सूची में अधिकाधिक संख्या में अपने सदस्यों को शामिल करवाने का प्रयास करते है। इसके लिये दलों का आर्थिक समर्थन करते है। यदि वे ऐसा कराने में असफल होते है तो वे संबंधित दल के विरूद्ध प्रचार अभियान शुरू कर देते है। चुनाव जैसे-जैसे महंगा होता जा रहा है वैसे-वैसे दबाव समूहों का महत्व बढ़ता जा रहा है। आज दबाव समूह का प्रभाव निर्वाचन मेंज्यादा है क्योंकि मँहगे चुनाव में प्रत्याशियों की निर्भरता धन के लिये इन दबाव समूहों पर ज्यादा हो गई है। अतः विजयी होने के बाद उन्हें अपने आर्थिक सहयोगी की इच्छानुसार चलना पड़ता है।

दबाव समूह की सक्रियता के ये स्तर लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था से सम्बन्धित है। सर्वाधिकारवादी तथा निरंकुश शासन व्यवस्था मेंइनकी सक्रियता नहीं चल पाती है। सर्वाधिकारवादी व्यवस्था मेंदबाव समूह का अस्तित्व तो ऐसा है परन्तु उनका प्रभाव बेहद कम होता है। वे राज्य नियन्त्रित उद्योगों के प्रबन्धक की भूमिका मेंरहते है।

10**.14 दबाव समूह और लोकतन्त्र:-**

दबाव समूह को लोकतन्त्र की आवश्यकता बताया जाता है। लोकतन्त्र मेंसरकारें जनता के पास पांच वर्षों के बाद आती है। पांच वर्ष से पहले राजनीतिक दल तथा दबाव समूह ही राजनीतिक व्यवस्था का संचालन करते है। वे आमजनता केा जागरूक करते है, सरकार कूनीतियों, कार्यक्रमों तथा उनकी खामियों का प्रचार करते है। वे सरकार के ऊपर समूह बनाकर दबाव बनाते है । तथा अपने हितों की पूर्ति करवाते हैं । वे कई बार सरकार के ऊपर अंकुश लगाने के लिये आंदोलन, प्रदर्शन, करना आदि का मार्ग भी अपनाते है। टूमैन ने अपनी पुस्तक गर्वनमेटंल प्रासेस में दबाव समूहों को लोकतान्त्रिक व्यवस्था की सुरक्षा एवं उसके सरल संचालन के लिये आवश्यक माना है। उनका मानना था कि -'' प्रत्येक व्यक्ति एक से अधिक समूहों का सदस्य होता है अतः पारस्परिक प्रतियोगितारत समूहों के द्वारा खेल के नियमों के पालन में मर्यादा उल्लंघन किये जाने पर वह अपनी ओर से तीव्र प्रतिक्रिया ही व्यक्त नहीं करता वरन अपने स्वयँ के समूह की भी मर्यादा का उल्लघंन नहीं करने देता। इस प्रकार सभी समूहों में आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया की ऐसी मर्यादा बन जाती है जिसका पालन सभी करते है। ऐसी स्थिति में किसी समूह या शासन के द्वारा सत्ता के दुरूपयोग की संभावना न्यूनतम रहती है। कोई भी समूह शक्तिशाली नहीं बन पाता तथा विविध समूहों तथा शासन के बीच एक शक्ति का एक सक्रिय संतुलन बना रहता है। यह लोकतन्त्र को आदर्श अवस्था है।''

वह आगे और स्पष्ट करते हुए कहते है कि यदि प्रतियोगिता अमर्यादित होगी तो जनतांत्रिक परम्परायें अक्षुण्ण नहीं रहेगी वरन लोकतन्त्र तभी सफल होगा जब समूह प्रतियोगितारत रहते हुए भी नियमों एवं सीमाओं का पालन को।

लोकतन्त्र में समूह बनाने की स्वतन्त्रता रहती है। कतिपय यही कारण है कि लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में व्यक्ति एक साथ ही जातीय , धार्मिक, क्षेत्रीय , व्यवसायिक, भाषायी, वर्गीय, उपभोक्ता, उत्पादक आदि अनेक समूहों संगठनों का सदस्य होता है। इन संगठनों की सदस्यता औपचारिक नहीं होती परन्तु इसके बावजूद संकट के समय या सरकार के द्वारा अत्याचार के समय इन संगठनों के द्वारा न केवल विरोध किया जाता है वरन बड़ी संख्या में सहानुभूति एवं समर्थन जुटाया जाता है। यह लोकतन्त्र के लिये शुभ संकेत है। इसका द्वारा सरकारों के ऊपर नियन्त्रण स्थापित होता है। वे दूसरे संगठनों के साथ प्रतिस्पर्धा में रहते हुए भी वे सरकार को संतुलित एवं नियन्त्रित करने का कार्य करते है। कतिपय यही कारण है लोकतन्त्र के सफल संचालन के लिये दबाव समूहों की उपस्थिति अनिवार्य है।

दबाव समूह समाज में अतिवादी (उग्र) विचार के विरोधी होते है। विभिन्न समाजों मेंहित समूहों के अलग-अलग हित होते है। इन समूहों में शासन को अपनी ओर खींचने की प्रतियोगिता होती है। इस प्रतियोगिता से समूहों के बीच कुछ नियमों पर सहमति भी हो जाती है। सभी समूह उनका पालन करते है। ऐसे में कोई समूह बनना चाह कर भी नहीं बन पाता है। किसी भी समूह की उग्र एवं असंवैधानिक कार्यों एवं नीतियों को अन्य समूहों के द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। यही कारण है कि दबाव समूहों को शक्ति संतुलक भी कहा जाता है। वे आर्थिक, सामाजिक,राजनीतिक शक्तियों के बीच संतुलन स्थापित करते है। वे किसी एक संगठन एवं समूह को अत्याधिक प्रभावशाली नहीं होने देते है। कतिपय यही कारण है कि उन्हें समाज में शक्ति संतुलन को बनाये रखने तथा लोकतन्त्र को मजबूत करने वाला समूह माना जाता है। दूसरे शब्दों मेंकहे तो वे लोकतन्त्र के आधार स्तम्भ है। यह दो चुनाव के अंतराल में राजनीतिक गतिविधियों को संचालित करते है। ये सरकारों को नियन्त्रित करते है। यह सरकारों को उत्तरदायी बनाते है। यह जनता के हितों के लिये सरकार को उनकी माँगों से अवगत कराते है। सरकार को जनहित के प्रति सचेत करते है। ये समाज में विभिन्न समूहों एवं संगठन के उग्र प्रयासों को नियन्त्रित करते है। यह संगठनों को न केवल नियन्त्रित करते है वरन उनके बीच एक संतुलन बनाने का प्रयास करते है। उनके बिना लोकतन्त्र को सुदृढ़ एवं स्थिर रखने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। कतिपय यही कारण है कि दबाव समूहों को लोकतन्त्र की ' जीवन डोर ' कहा जाता है।

12.15 विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं (सरकारों) में दबाव समूह

रावर्ट सी बोन ने दबाव समूह के ऊपर व्यापक विश्लेषण किया। उनकी मान्यता थी कि प्रत्येक दबाव समूह राजनीतिक व्यवस्था मेंही कार्य करते है। हर राजनीतिक व्यवस्था मेंदबाव समूहों की स्थिति, उनकी प्रभावशीलता अलग-अलग होती है। बोन ने अध्ययन की सरलता के लिये दुनिया की

राजनीतिक व्यवस्थाओं को पाँच भागों में बांटा। विभिन्न शासन व्यवस्था में दबाव समूह की भूमिका इस प्रकार हैः-

10.15.1 ऑग्ल अमेरिका राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूह

प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था दबाव समूहों की गतिविधियों को निर्धारित करती है। इन दोनों देशों की राजनीतिक व्यवस्था में ऐसी विशिष्टतायें है जिनके कारण दबाव समूह भी विशेष स्थिति में ढल गये है। इन देशों में दबाव समूह की प्रकृति विशिष्ट प्रकार की बन गई है। इन देशों में दबाव समूह के प्रमुख लक्षण निम्न हैः-

(1) परीस्थितिजन्य दबाव समूहः- इन देशों में बहुसंख्यक दबाव समूह परीस्थिति जन्य होते है। आंग्ल-अमेरिकी व्यवस्था में' खेल के सिद्धान्तों' पर सहमति के कारण सभी दबाव समूह अपने सदस्यों की अवस्था की सुरक्षा तथा सुधार का लक्ष्य रखते है।

(2) विधि सम्मत प्रक्रियाओं में विश्वासः- ऑग्ल-अमेरिकी दबाव समूह विधि सम्मत प्रक्रियाओं मेंविश्वास करते है। वे असवैधानिक साधनों, हिंसा में विश्वास नहीं रखते है। वे क्रान्ति को भी महत्व नहीं देते है। वे प्रचलित ढ़ाचे में विश्वास रखते है तथा उसी मेंआवश्यक फेरबदल कर व्यवस्था मेंहित साधने का प्रयास करते है।

(3) स्वहित पर आधारित एवं परीस्थिति जन्यः- इन देशों मेंअधिकांश दबाव समूह परीस्थितिजन्य होते है। तथा स्वहित मेंकार्यरत होते है। वे विशिष्ट हित वादी होते है। वे कभी सामान्यहित अथवा समाज हित की भावना से न तो प्रेरित होते है और न ही उस दिशा में कार्य करते है।

(4) संस्थागत एवं समुदायात्मक दबाव समूहः- इंग्लैण्ड तथा अमेरिका का समाज एक विकसित समाज है अतः वहाँ पर अधिकांश दबाव समूह संस्थागत तथा समुदायात्मक होते है। यहाँ पर असमुदायात्मक दबाव समूह न के बराबर पाये जाते है।

(5) विशिष्टीकरण पर आधारित विशेषज्ञों का समूहः- अमेरिका एवं इंग्लैण्ड का समाज एक उन्नत एवं विकसित समाज है अतः यहाँ पर कार्य जटिल एवं तकनीकी तरह के होते है। उनको करने के लिये विशिष्ट एवं विशेषज्ञ प्रवृत्ति के लोगों की आवश्यकता होती है। ये पेशेवर एवं विशेषज्ञ लोग पूरे समय अपनेहितों के लिये प्रयासरत रहते है। ऐसे दबावसमूह अन्यत्र नहीं दिखायी पड़ते है।

(6) एक दूसरे पर निर्भरता तथा नियन्त्रण एवं संतुलनः- ब्रिटेन एवं अमेरिका का समाज एक विकसित समाज है। यहाँ के दबाव समूह कानूनों, परम्पराओं, रीतियों मेंविश्वास करने वाले होते है। ये सामान्य नियमों एवं सिद्धान्तों से निर्देशित होते है। ये आत्म संयम में विश्वास करते है। यह परस्पर विरोधी दृष्टिकोण के साथ समायोजन करने का प्रयास करते है। यह दबाव समूह 'संतुलन चक्र' के रूप में विभिन्न संस्थाओं व्यवस्थाओं एवं प्रक्रियाओं को संकुलित करते है।

अमेरिका एवं इंग्लैण्ड मेंपाये जाने वाले दबाव समूहों मेंउपरोक्त विशेषतायें दिखायी पड़ती है। इसके बावजूद इन दोनों देशों में दबाव समूहों मेंकुछ भेद भी दिखायी पड़ते है। इन दोनों देशों मेंसरकार की संरचनाओं व दलीय पद्धति में बड़ा अंतर है जिसका प्रभाव दबाव समूह पर दिखायी देता है। यही

कारण है कि दबाव समूह की प्रकृति, संगठन एवं लक्ष्यों में अंतर दिखायी पड़ता है। इनके बीच पाये जाने वाला प्रमुख अंतर इस प्रकार हैः-

(1) नैतिकता एवं आदर्शो के आधार पर अंतरः- अमेरिका मेंदबाव समूहों को अच्छी नजर से नहीं देखा जाता है। वहां पर उनका इतिहास दागदार रहा है। इंग्लैण्ड मेंदबाव समूहों को संदेह की नजर से नहीं देखा जाता है। राबर्ट सी बोन ने लिखा है-'' अमेरिकी दबाव समूह ऐसी राजनीतिक संस्कृति मेंपरिचालित होते है कि अजीब विरोधाभासी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। एक तरफ सभी दबाव समूह को अनुचित समझा जाता है दूसरी तरफ उन्हें प्रभाव डालने के विचित्र अवसर उपलब्ध कराये जाते है।'' अमेरिका की राजनीतिक व्यवस्था की यह विचित्र स्थिति है कि वहाँ पर सरकार एवं दलों से अपेक्षा नहीं की जाती की वह किसी प्रकार का कोई पहल करेंगें। वहाँ पर जनता से आशा की जाती है कि वे सरकार से तथा दलों से समस्याओं तथा समाधान की माँग करेगें। इस व्यवस्था मेंदबाव समूह महत्वपूर्ण हो जाते है। दूसरी तरफ ब्रिटेन में दबाव समूह को राजनीतिक प्रक्रिया का आवश्यक अंग माना जाता है। संसदीय शासन व्यवस्था , एकात्मक शासन के कारण ब्रिटेन की राजनीतिक संस्कृति दबाव समूहों को अपने मेंलपेटे रहती है। यहाँ पर दबाव समूहों को सकरात्मक रूप से सरकार का सहयोगी माना जाता है।

(2) शासन व्यवस्था के कारण अन्तर:- अमेरिका की अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था के कारण दबाव समूह को शासन में प्रवेश करने तथा विशेष भूमिका अदा करने का अवसर प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार का अवसर ब्रिटेन की संसदात्मक शासन व्यवस्था में वे नहीं प्राप्त कर पाते है। अमेरिका मेंशासन प्राप्त रिक्तता के कारण वे ज्यादा प्रभावी एवं शक्तिशाली हो जाते है।

(3) अमेरिका मेंदबाव समूह द्वारा मांगों को प्रस्तुत करना जबकि ब्रिटेन मेंराजनीतिक दलालों के द्वाराः- अमेरिका मेंदबाव समूह की मांगों को प्रस्तुत कर सरकार के ऊपर दबाव बनाने का प्रयास करते है। इसके ठीक विपरीत ब्रिटेन में दबाव समूह के स्थान पर राजनीतिक दल अधिक प्रभावी रहते है। और वे ही इन कार्यों को करते है। संसदीय शासन व्यवस्था मेंदलों की सरकार के उत्थान एवं पतन में विशेष भूमिका रहती है। अंतः यहाँ पर दबाव समूह मांगों के लिये दबाव बनाने का कार्य नहीं करते है।

(4) जनता की राजनीतिक उदासीनता के कारण अमेरिका मेंदबाव समूह की सक्रियताः- अमेरिका की शासन व्यवस्था मेंदेखा गया है कि वहाँ के नागरिक राष्ट्रपति के निर्वाचन में तो बढ़चढ़ कर हिस्सेदारी करती है। परन्तु अन्य राजनीतिक कार्यों मेंउसकी हिस्सेदारी कम ही रहती है। इसके विपरीत ब्रिटेन में जनता अधिक सजग, सक्रिय एवं राजनीतिक रूप से जागरूक है। यही कारण है कि वह राजनीतिक दलों के साथ मिलकर शासन मेंअधिक प्रभावी भूमिका अदा करती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिका तथा ब्रिटेन में अलग-अलग शासन व्यवस्था के अस्तित्व के कारण दबाव समूहों की भूमिका एवं प्रभाव मेंव्यापक अंतर दिखायी पड़ता है। ब्रिटेन मेंराजनीतिक दल एवं जागृत समाज के कारण दबाव समूहों का प्रभाव क्षेत्र कम हो जाता है। वहां पर

दलों एवं दबाव समूहों के संबंधों को बढ़ावा दिया जाता है। वहां पर दबाव समूहों एवं प्रशासकीय अधिकारिकयों के साथ संबंधों को शंका की नजर से नहीं देखा जाता है। इसके ठीक विपरीत अमेरिका मेंइन संबंधों को शंका एवं अनैतिक दृष्टि से देखा जाता है। ब्रटेन मेंसंसद सदस्य अनेक श्रम संघों से न केवल जुड़े हुए है वरन उनसे आर्थिक मदद भी प्राप्त करते है। इसके विपरीत अमेरिका मेंदबाव समूहों का संबंध राजनेताओं एवं प्रशासनिक अधिकारियों से गुपचुप एवं रहस्यमयी संबंध रखते है। उनसे मिलने वाली सहायता भी गोपनीय रखी जाती है। वहाँ उक्सर इन आर्थिक मदद से पदा उठते ही राजनेताओं के राजनीतिक जीवन पर खतरा उत्पन्न हो जाता है। इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि अमेरिका मेंदबाव समूहों का प्रभाव एवं महत्व नहीं है। अमेरिका में दबाव समूहों की गोपनीय एवं रहस्यमयी भूमिका मेंउत्तरोतर वृद्धि होती जा रही है। यहाँ पर यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि इन दोनों देशों मेंदबाव समूह का अस्तित्व है उनका प्रभाव है परन्तु वे किसी भी राजनीतिक दल को नियन्त्रित करने की स्थिति में नहीं है। इसके विपरीत फ्रांस सहित अन्य यूरोपीय देशोंमेंदबाव समूहों का नियन्त्रण राजनीतिक दलों के ऊपर देखा जा रहा है। अमेरिका मेंसंघात्मक शासन, शकित पृथक्करण , कांग्रेस की समितियों के असीमित अधिकार, ठोस अनुशासन वाले दलों का अभाव दबाव समूहों को शासन मेंघुसपैठ करने का पर्याप्त अवसर प्रदान कर देता ह। उनकी राजनीति उग्र, व्यापक एवं महत्वपूर्ण हो जाती है।

10.15.2 यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूहः-

इटली एवं फ्रांस को छोड़कर सभी यूरोपीय राजय इस समूह में माने जाते है। इन देशों की राजनीति का एक विशेष पैटर्न है। यूरोपीय देशों मेंप0 जर्मनी में आंग्ल-अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था के अनुरूप दबाव समूह अत्याधिक बड़ें एवं प्रभावशाली है। यहाँ के प्रमुख दो दल दबाव समूहों का मिलन का स्थान बन गये है। ये राजनीतिक दलों को धन देते है। इनके 40 प्रतिशत सदस्य दबाव समूह के होते है जो विधायिका में चुन कर आते है। जर्मनी में दबाव समूहों को शंका की नजर से नहीं देखा जाता है। वे शासन संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

फिनलैण्ड, स्वीडन, बेल्जियम, नीदरलैण्ड, आस्ट्रिया, स्विटजरलैण्ड आदि राज्यों में राजनीतिक संस्कृतियो की समानता के कारण दबाव समूह की भूमिका भी एक ही प्रकार पायी जाती है। यहाँ की राजनीतिक व्यवस्था में दबाव समूह की भूमिका को स्वीकार किया जाता है। यहाँ पर प्रत्येक कर्मचारी किसी न किसी दबाव समूह से सम्बन्धित रहते है। ये अधिकाशतः श्रमिक संघों के सदस्य होते है। जर्मनी की तरह इन देशों में राजनीतिक दल, दबाव समूहों तथा उनके सदस्यों को प्रत्याशी के रूप में स्वीकार करते है। सरकार प्रायः नीति निर्माण करते समय सम्बन्धित दबाव समूहों से परामर्श भी करती है। इन देशों में दबाव समूह अपनी शक्ति, प्रभाव के द्वारा सतुंलनकारी यंत्र बन राजनीतिक व्यवस्था के संचालन मेंसहायक होते है।

10.15.3 इटली एवं फ्रांस में दबाव समूह की भूमिकाः-

इटली एंव फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था कास्वरुपशेष यूरोपीय देशों से भिन्न है। राजनीतिक व्यवस्था की विलक्षणता के कारण इन देशों में दबाव समूहों की भूमिका अलग एवं विलक्षण तरह की बन गयी है। फ्रांस में पाँचवें गणतन्त्र से पहले राजनीतिक अस्थिरता का युग था। पाँचवें गणतन्त्र के संविधान के बाद स्थितियों में बदलाव आया। वहां पर कार्यपालिका के शक्तिशाली होने के कारण दबाव समूहों को नौकरशाही एवं कार्यपालिका से अपने कार्य कराने पड़ते है। वहाँ पर दबाव समूह विशेषीकृत पेशेवर कार्यकर्ताओं के द्वारा संचालित होने लगे है। वहाँ की राजनीतिक व्यवस्था मेंदबाव समूहों की विशेष भूमिका नहीं है।

इटली के दबाव समूह भी विशेष समूह भी विशेष राजनीतिक संस्कृति के कारण विचित्र बन गये है। जोसेफ लॉ पालोम्बरा ने अपनी पुस्तक '' इस्टेस्ट ग्रूप इन इटालियन पॉलिटिक्स'' मेंदबाव समूहों की अनोखी प्रकृति का विश्लेषण किया। इटली की विखडिंत एवं अलगाववादी राजनीतिक संस्कृति के कारण दबाव समूहों की अत्याधिक संख्या है। पालोम्बरा ने रोम मेंही तीन हजार से अधिक समूहों की संख्या बतायी है। ये निरन्तर राजनीतिक व्यवस्था मेंहस्तक्षेप करते है। यहाँ के दबाव समूह फ्रांस की तरह राजनीतिक दलों पर '' नियन्त्रण स्थापित करते हुए दिखायी पड़ते है। यहाँ पर दबाव समूहों की प्रकृति, संगठन, गतिविधियाँ एवं कार्यशैली विलक्षण है। ये किसी एक संरचना मेंनहीं बांधे जा सकते है। ये मिश्रित प्रकृति रखते है। इन व्यवस्थाओं में दबाव समूह कट्टरता से भरे हुए केवल अपने को सही मानने वाले होते है। यह दलों का प्रभावित ही नहीं करते वरन उनपर नियन्त्रण भी स्थापित करते है। कई दबाव समूह दलों के पिछलग्गू बन हितों को साधने का प्रयास करते है। इनके अविश्वसनीय रवैये के कारण जनता कई बार इनके प्रति संदेह का रवैया अपनाने लगती हैं।

10.15.4 सर्वाधिकारी राजनीतिक व्यवस्था मेंदबाव समूहः-

सर्वाधिकारवादी व्यवस्था मेंनिर्णय लेने का अधिकार एक स्थान पर केन्द्रित रहता है। ऐसे मेंबाहर से निर्णय निर्माण को प्रभावित करना सरल नहीं रहता है। यहाँ पर दबाव समूहों का अस्तित्व ही विरोधीभासी प्रतीत होता है। प्रायः यह भी देखा जाता है कि यहाँ पर ऐसे समूहों को कुचल दिया जाता है। इन सर्वाधिकारी राजयों मेंबल प्रयोग पर जोर दिया जाता है। यहाँ पर इनका अस्तित्व होना ही महत्व की चीज है। इनकी पश्चिमी देशों की तरह सक्रियता संभव ही नहीं है।

नाजी जर्मनी में दल के विभिन्न गुट, पुलिस, सैनिक निकाय, नौकरशाही, बड़े व्यापारी हितों तथा हिटलर के सलाहकारों के बीच प्रतिस्पर्धा रहती थी जो इस बात का प्रमाण था कि निरंकुश शासन व्यवस्था में संस्थात्मक एवं समुदायात्मक दबाव समूह किसी न किसी रूप में विद्यमान रहे है। यहाँ कठोर नियन्त्रण के पीछे दबाव समूह क्रियाशील रहते है तथा कभी-कभी प्रभावी ढ़ग से प्रकट भी होते हैं साम्यवादी व्यवस्था में भी अधिक सख्ती एवं हिंसा के बावजूद दबाव समूहों का अस्तित्व मिलता है। वहां पर साम्यवादी दल के अंदर ही समूहों मेंप्रतिस्पर्धा दिखायी पड़ती है। यहां पर दल के अधिकारी तथा बुद्धिजीवियों के समूहों को दबाव समूह के रूप मेंलिया जाता है। रूस एवं चीन मेंसेना भी दबाव समूह के रूप में कार्य करती दिखायी पड़ती है। रूस मेंयुद्ध नायक मार्शल जुकोव को

तथा चीन में मार्शल जिन पियाओ को रक्षामंत्री पद से हटाया जाना इसका संकेत है। यहां पर प्रदर्शनात्मक दबाव समूह का अस्तित्व सदैव रहता है।

10.15.5 विकासशील राष्ट्रों मेंदबाव समूह

विकासशील देशों में राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं सरंचनायें संक्रमण के दौर से गुजर रही है। वहाँ पर राजनीतिक सिद्धान्त, राजनीतिक संस्कृति अभी स्थापित नहीं हो पाई है। अतः इन व्यवस्थाओं में दबाव समूहों की प्रकृति, कार्यशैली एवं प्रभाव मेंअंतर पाया जाता है। यहाँ का समाज परम्परावादी है जिसके कारण असमुदायत्मक दबाव समूह राजनीतिक दलों के रूप मेंकुलीन, जातीय, नृजातीय, वर्गीय, गुटीय, हितों के आगे बढ़ाने का प्रयास करते है। इनमें कुछ आधुनिक तत्वों की उपस्थिति संस्थात्मक दबाव समूहों को भी जन्म देते है। सभी विकासशील देशों में स्वतन्त्रता संघर्ष के समय से ही ट्रेड यूनियन का गठन तथा महत्वपूर्ण भूमिका स्थापित हो गई थी। यही कारण है कि यहाँ पर स्वतन्त्रता बाद ट्रेड यूनियनों ने संस्थात्मक दबाव समूह का रूप धारण किया।

इन राज्यों मेंकुछ प्रदर्शनात्मक दबाव समूह भी पाये जाते है। इनका प्रभाव अन्य देशों से ज्यादा रहता है। विकासशील राज्यों मेंसेनाओं से संबन्धित संस्थात्मक दबाव समूहों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। सैनिक नेतृत्व भावनात्मक एकता के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव डालता है। यहाँ पर सेना एक प्रमुख दबाव समूह है।

यहाँ पर यह तथ्य उल्लेखनीय है कि इन विकासशील देशों में विकासशील देशों मेंविकास के साथ संस्थागत एवं समुदायात्मक दबाव समूहों की संख्या एवं महत्व मेंवृद्धि होगी। राजनीतिक व्यवस्थाओं में सुविकसित राजनीतिक दलों के अभाव के कारण प्रदर्शनात्मक दबाव समूहों का स्थान एवं महत्व बढ़ रहा है। विद्यार्थियों का आंदोलन विकसित राज्यों मेंअधिक होने की संभावना रहती है। ये विद्यार्थी आंदोलन विकसित राज्यों में अधिक प्रभावशाली दबाव समूह के रूप में दिखायी देते हैं। विकासशील देशों में विद्यार्थियों की मूलभूत सुविधाओं के अभाव के कारण प्रदर्शनात्मक दबाव समूह के रूप मेंविकसित होने की प्रबल संभावना है। इस प्रकार यहां पर समुदायात्मक तथा संस्थागत दबाव समूहों के प्रभावशाली होने की परीस्थितियाँ बनती जा रही है। दूसरी तरफ सेना एवं विद्यार्थियों के प्रदर्शनात्मक दबाव समूहों के उदय के भी लक्षण दिख रहे है। यह भी सत्य है कि समय गुजरने के साथ ही विकासशील देशों में इनकी संख्या मेंवृद्धि होगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में दबाव समूहों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। कही पर यह सृजन की भूमिका में तो कही विध्वंस की भूमिका मेंहै। राजनीतिक संस्कृति में परिवर्तन के साथ दबाव समूहों की प्रकृति मेंपरिवर्तन आता जा रहा है। मानव सामाजिक प्राणी है। अतः चेतना एवं जागृति के साथ वह समूह मेंसंगठित होगा और आने वाले समय में दबाव समूह का प्रभाव एवं महत्व बढ़ता जायेगा। अमेरिका में प्रदर्शनात्मक दबाव समूहों भरमार तथा सेनाओं का शासन व्यवस्थाओं में दखल इस बात का संकेत है कि भविष्य मेंदबाव समूहों का अस्तित्व एंव

भूमिका अलग होगी। भविष्य में राजनीतिक दलों के सहयोगी के रूप में दबाव समूह का महत्व बढ़ेगा।

अभ्यास के प्रश्नः-

(1) मजदूर संघों को कहा जाता है-

(1) लेगर आर्गनाइजेशन (2) लेबर असेम्बली (3) टे"ड यूनियन (4) कोई नहीं

(2) वर्तमन मेंदबाव समूह है-

(अ) लोकतन्त्र विरोधी (ब) लोकतत्र समर्थक एवं सहयोगी

(स) अलोकतान्त्रिक (द) सभी

(3) निम्न में से कौन अज्ञात साम्राज्य है-

(अ) राजनीतिक दल (ब) राजनेता (स) राजनीतिक संस्थायें (द) दबाव समूह

(4) दबाव समूह होते है-

(अ) राजनीतिक (ब) अराजनीतिक(स) दोनों (द) कोई नहीं

(5) निम्न में से कौन सा राजनीतिक दल का लक्षण नहीं है-

(अ) ऐच्छिक संगठन (ब) जनहित संगठन (स) औपचारिक संगठन

(द) निश्चत शक्ति

10.16 सारांश

दबाव समूह का इतिहास उतना ही पुराना है जितना की लोकतन्त्र का। पश्चिम के देशों में दबाव समूह का उदय हुआ। आज दुनिया के सभी देशों में इनका अस्तित्व पाया जाता है। यह सत्य है कि लोकतन्त्र जितना अधिक परिपक्व एवं मजबूत होगा उतना ही वहां पर दबाव समूहों का अस्तित्व होगा।

समय गुजरने के साथ जन आंकाक्षाओं मेंआये उभार एवं बढ़ती जरूरतों ने सरकार के ऊपर दबाव बनाने एवं उनसे त्वरित रूप से लाभ पाने के लिये दबाव समूह का उदय हुआ। आज अमेरिका से शुरू हुई दबाव समूहों की यात्रा लगभग दुनिया के सभी देशों मेंपहुँची है। वह चाहे संसदीय शासन हो या अध्यक्षात्मक एक चीज सामान्य रूप से पायी जाती है, वो दबाव समूह। यहाँ आश्चर्य है कि दबाव समूह केवल लोकतन्त्र में ही नहीं दिखायी पड़ते वरन वे सर्वाधिकारवादी शासन व्यवस्थाओं में सैनिक तन्त्र, अधिकारी तन्त्र के रूप में तथा साम्यवादी व्यवस्थाओं मेंदलीय समूह, अधिकारी समूह के रूप में दृष्टिगत होती है।

दबाव समूह कास्वरुपविभिन्न शासन व्यवस्थाओं मेंबदल जाता है। विकसित शासन व्यवस्थाओं में इनका स्वरूप अलग एवं प्रगतिशील अथवा विकासशील शासन व्यवस्थाओं में इनका स्वरूप बदल जाता है। ये आज बेहद , प्रभावशाली, एवं शक्तिशाली हो गये है। ये दुनिया की सभी शासन व्यवस्थाओं में पाये जाते है। कतिपय यही कारण था कि फाइनर इन्हें ' अज्ञात साम्राज्य' कहता था।

10.17 शब्दावली:-

समुदायात्मक दबाव समूह (**Associational Pressure Group**)- समुदाय के हितों के लिये सगंठित समूह इसमें आते है। जैसे व्यापारी संघ, किसान संघ, मजदूर संघ।

प्रदर्शनकारी दबाव समूह (**Anomic Pressure Group**)- ये वे दबाव समूह है जो माँगों को लेकर हिंसक, संविधान विरूद्ध कार्य करने से परहेज नहीं रखते। जैसे छात्र संगठन, नक्सल संगठन आदि।

संस्थागत दबाव समूहः- वे दबाव समूह जिनका संसगठित ढा़चा होता है तथा जो किसी संस्था से जुड़े होते है। जैसे - भारतीय पुलिस सेवा संघ, सैनिक कल्याण परिषद, भारतीय प्रशासनिक सेवा संघ।

जनहित याचिकाः- व्यापक जन कल्याण के निहितार्थ सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय मेंडाली गई याचिका को जनहित याचिका कहते है। यह किसी तीसरे पक्ष द्वारा प्रेषित होती है।

लॉबींगः- अपने हितों की पूर्ति के लिये कानून बनाने वालों से विधानमण्डल के सभाकक्ष मेंया अन्य स्थान पर मिलना हित साधना, कानून बनवाना लॉबींग कहलाता है।

10.20 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 स, 2. ब, 3. द, ,4. ब, 5. स

10.19 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1.मल्ल वी0पी0, सिंह अजय, राजनीति विज्ञान

2.गेना आर0वी0, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थायें

3.जैन आर0वी0, तुलनात्मक राजनीति

4.राय गांधी जी, तुलनात्मक राजनीति

5.जौहरी जे0सी0, जौहरी सीमा, आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त

10.12 सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्रीः-

1.सोडारो माइकल, कम्पेरटिव पालिटिक्स

2.गाबा, ओ0पी0, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा

3.संधू ज्ञान सिंह, राजनीति सिद्धान्त

4.खन्ना वी0एन0, आधुनिक सरकारें

10.22 निबन्धात्मक प्रश्नः-

1.दबाव समूह से क्या समझते है? इनकी प्रमुख विशेषतायें बताइये।

2.दबाव समूह को परिभाषा दीजिये तथा आधुनिक शासन व्यवस्था मेंमहत्व स्पष्ट कीजिये।

3.दबाव समूह के विभिन्न वर्गीकरणों स्पष्ट करते हुए वर्तमान राजनीतिक व्यवस्थाओं में उनकी भूमिका स्पष्ट कीजिये।

4.दबाव समूह पर एक निबन्ध लिखिये।

इकाई 11: प्रतिनिधित्व- अर्थ, प्रकृति , प्रतिनिधित्व के प्रकार

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 बहुल मतदान
11.4 निर्वाचन की विभिन्न प्रणालियाँ
11.5 प्रत्यक्ष निर्वाचन के गुण
11.6 प्रत्यक्ष निर्वाचन के दोष
11.7 अप्रत्यक्ष निर्वाचन के गुण
11.8 अप्रत्यक्ष निर्वाचन के दोष
11.9 मतदान की प्रणालियाँ
11.9.1 बहुमत के आधार पर निर्वाचन
11.9.2 द्वितीय मतदान व्यवस्था
11.9.3 वैकल्पिक मतदान व्यवस्था
11.10 अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व
11.10.1 आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली
11.10.1.1 एकल हस्तान्तरणीय व्यवस्था
11.10.1.2 सूची प्रणाली
11.11 आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के गुण
11.12 आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के दोष
11.13 संचित मतदान प्रणाली
11.14 सीमित मतदान प्रणाली
11.15 सांम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली
11.16 व्यवसायिक प्रतिनिधित्व
11.16.1 व्यवसायिक प्रतिनिधित्व के दोष
11.17 आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक शर्तें
11.18 सारांश
11.19 शब्दावली
11.20 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.21 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.22 सहायक उपयोगी सामग्री
11.23 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

लोकतन्त्र के सफल होने के लिये आदर्श प्रतिनिधित्व बहुत आवश्यक है। यदि प्रतिनिधित्व सही, निष्पक्ष, न्यायपूर्ण नहीं है तो लोकतन्त्र ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर सकता। प्राचीन समय में छोटे-छोटे नगर-राज्य थे जिसके कारण प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र सम्भव था। जिसमें प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं थी। आधुनिक समय में बड़े राष्ट्रों के कारण प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र अव्यावहारिक हो गया। कतिपय यही कारण है कि प्रतिनिधित्यात्मक लोकतन्त्र की आवश्यकता पड़ी।

प्रतिनिधित्यात्मक लोकतन्त्र में प्रतिनिधित्व की आवश्यकता होती है। सामान्य गुप्त मतदान से प्रतिनिधियों का निर्वाचन बहुमत के आधार पर होता है। ऐसे में कई बार अल्पंख्यक वर्ग बहुमत पाने में असफल हो उचित प्रतिधित्व पाने से वंचित हो जाता है। इसीलिये राजनीति विज्ञानियों ने प्रतिनिधित्व के अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये जिससे समाज के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व हो सके।

अल्पसंख्यक वर्ग के प्रतिनिधित्व के लिये अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें से अनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली, द्वितीय मतपत्र प्रणाली, संचित मत प्रणाली, सूची प्रणाली, वैकल्पिक मत प्रणाली आदि प्रमुख हैं। फ्रांस जैसे देश में राष्ट्रपति के चुनाव में द्वितीय मतपत्र प्रणाली चलन में है। भारत में राष्ट्रपति के चुनाव में आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के एकल संक्रमणीय मत पद्धति प्रचलित है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली कुछ खामियों के बावजूद अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देने वाली सर्वश्रेष्ठ शासन प्रणाली है।

आधुनिक युग लोकतंत्र का युग है। लोकतन्त्र के दो रूप हैं - प्रत्यक्ष लोकतन्त्र तथा प्रतिनिधि लोकतन्त्र। कुछ प्राचीन यूनानी नगर राज्यों तथा भारत के कुछ गणतन्त्रों में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र के कुछ प्रमाण मिलते हैं। आधुनिक समय में बड़ें राज्यों के उदय के साथ प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र संभव नहीं है। आज स्विट्जरलैण्ड के पाँच कैंटनों को छोड़कर प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र कहीं दिखायी नहीं पड़ता। अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र निर्वाचन पर आधारित है। जनता स्वयं शासन का संचालन नहीं करती वरन अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से संचालन का कार्य करती है। प्रतिनिधियों के निर्वाचन के लिये एक निश्चित अवधि के बाद आम निर्वाचन की आवश्यकता पड़ती है। निर्वाचन में भाग लेने तथा मतदान में भाग लेने के अधिकार को मताधिकार कहते हैं। आधुनिक समय में 'व्यस्क मताधिकार' के सिद्धान्त को स्वीकार किया जाता है। इसके अन्तर्गत एक निश्चित उम्र के पुरूष एवं स्त्रियों को शिक्षा, संपत्ति, लिंग जाति के आधार पर बिना किसी भेदभाव के मताधिकार दिया जाता है। तब यह व्यस्क मताधिकार कहलाता है। वयस्क मताधिकार सभी स्त्री पुरूष को प्रदान किया जाता है इसलिये इसे सार्वजनिक मताधिकार भी कहा जाता है। ब्रिटेन, अमेरिका तथा भारत में यह आयु 18 वर्ष, स्विट्जरलैण्ड में 20 वर्ष तय की गई है। महिला मताधिकार को लेकर प्रारम्भ से भेद रहा है। अमेरिका में 1917 में, इंग्लैण्ड में 1928 तथा स्विट्जरलैण्ड में 1971 को स्त्री मताधिकार प्रदान किया गया। राज्य अनिवार्य

मतदान की भी व्यवस्था कर सकता है। वैध कारणों से मतदान न करने पर आस्ट्रेलिया सहित कुछ देशों में दंड का प्रावधान है।

11.2 उद्देश्य

- प्रतिनिधित्व का अर्थ एवं प्रकार को समझना।
- प्रतिनिधित्व के विभिन्न सिद्धान्तों को समझना।
- अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देने के सिद्धान्तों को समझना।
- आधुनिक समय में दुनिया में प्रयोग में लाये जा रहे प्रतिनिधित्व के सिद्धांतोंको समझना।
- प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त का उदय तथा आधुनिक समय में उसके चलन को समझना।

11.3 बहुल मतदान

बहुल मतदान अथवा भारपूर्ण मतदान को भेदपूर्ण मतदान कहते हैं। इसमें मतदान में भेदभाव के सिद्धान्त को स्वीकार किया जाता है। इसमें कुछ नागरिकों को अन्य की तुलना में विभिन्न आधारों पर अधिक मत दिये जाते हैं। जैसे बेल्जियम में 1893 के सविंधान ने 25 वर्ष की आयु से दिया जाता था, परन्तु उसके उपरांत उस व्यक्ति को एक और मत प्रदान किया गया जिसकी एक वैध संतान हो 35 वर्ष की आयु पूरी कर ली हो तथा राज्य को 5 फ्रैंक कर देता हो। यही अतिरिक्त मत उस भू-स्वामी को दिया गया जो कम से कम 2000 फ्रैंक मूल्य की संपत्ति रखता हो तथा 25 वर्ष से अधिक आयु के ऊपर उस व्यक्ति को दो अतिरिक्त मत प्रदान किये जिसके पास उच्चतर माध्यमिक डिग्री अथवा किसी संस्था से डिप्लोमा हो। 1921 के संशोधन द्वारा इस व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। 1909 के अधिनियम के अन्तर्गत भारत के मुसलमानों को बहुल मत प्राप्त थे। इसमें सामान्य निर्वाचन क्षेत्र से एक मत तथा अपने धार्मिक सम्प्रदाय के लिये सुरक्षित निर्वाचन क्षेत्र में एक अन्य मत प्रदान किया गया। 1919 के अधिनियम में साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था ईसाइयों, एंग्लोइंडियन तथा सिक्खों को तथा 1932 के साम्प्रदायिक निर्णय के द्वारा दलित जातियों को भी प्रदान की गई। जे0 एस0 मिल0 ने बहुल मतदान का समर्थन किया। उनका मानना था कि बुद्धिमान लोगों को अधिक मत प्राप्त होने चाहिए। उसका मानना था कि -''उस व्यक्ति को दो या अधिक मतों की उचित अनुमति दी जा सकती हे। जो उच्चतर कार्यों में से कोई कार्य करते हैं। यह न्यूनतम शिक्षित जनसंख्या के भार के प्रतिकारक के रूप में कार्य करता है।

11.4 निर्वाचन की विभिन्न प्रणलियाँ

निर्वाचन का सामान्य अर्थ होता है अपनी पसन्द की प्रतिनिधि का चुनाव। निर्वाचन की दो प्रणलियाँ प्रचलित हैं- 1 प्रत्यक्ष निर्वाचन 2 अप्रत्यक्ष निर्वाचन

1.प्रत्यक्ष निर्वाचन:- प्रत्यक्ष निर्वाचन वह है जिसमें मतदाता प्रत्यक्ष रूप से अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करे तो उसे प्रत्यक्ष निर्वाचन कहा जाता है। यह आज के समय में लोकप्रिय निर्वाचन व्यवस्था है। इसमें प्रत्येक मतदाता निर्वाचन स्थान पर विभिन्न उम्मीदवारों में से किसी एक के पक्ष में मतदान करता है। सर्वाधिक मत पाने वाला व्यक्ति विजेता घोषित कर दिया जाता है। आधुनिक समय में दुनिया के अधिकांश देशों जैसे ब्रिटेन, अमेरिका, भारत, कनाडा तथा स्विट्जरलैण्ड के प्रथम सदन के निर्वाचन में इसी पद्धति को स्वीकार किया जाता है।

2.अप्रत्यक्ष निर्वाचनः- प्रत्यक्ष निर्वाचन के विपरीत जब मतदाता कुछ प्रतिनिधियों का चुनाव करे तथा वे किसी अन्य व्यक्ति का चुनाव करें तो यह अप्रत्यक्ष निर्वाचन कहा जाता है। जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधि 'निर्वाचक मण्डल' कहे जाते हैं। उदाहरण के लिये अमेरिका के मतदाता उन निर्वाचकों को चुनते हैं जो राष्ट्रपति का चुनाव करते है।

11.5 प्रत्यक्ष निर्वाचन के गुण

विद्वानों ने प्रत्यक्ष निर्वाचन के कुछ गुण बताये हैं। इनमें से प्रमुख गुण निम्न हैं-

1.राजनीतिक जागृति:- प्रत्यक्ष निर्वाचन मतदाताओं में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करता है। इसमें मतदाता चुनाव प्रक्रिया के दौरान अनेक रैलियों, सभाओं में भाग लेता है। जिसके द्वारा उसको सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों के विषय में जानकारी होती है। इसके साथ मतदान के तरीके के विषय में भी वह अवगत होता है।

2.मतदाता एवं प्रतिनिधियों के मध्य संबंधः- प्रत्यक्ष निर्वाचन में मतदाता तथा प्रतिनिधियों के बीच घनिष्ठ संबंध पाया जाता है। इसमें चुनाव लड़ रहे लोगों का भविष्य मतदाता तय करते हैं। अतः प्रत्येक चुनाव लड़ने वाला व्यक्ति अधिकाधिक व्यक्तियों से मिलता है। वह जनसंपर्क अभियान चलाता है। यह चुनाव दोनों के बीच घनिष्ठ संबंध विकसित करने में सहायक होता है।

3.उत्तरदायित्व की भावनाः- प्रत्यक्ष निर्वाचन व्यवस्था में जनता स्वयं निर्वाचन प्रक्रिया में भाग लेती है। वह दल विशेष, प्रत्याशी विशेष के लिये सक्रिय होती है। अतः प्रतिनिधि चुनाव के बाद अपने मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। उन्हें पता होता है कि मतदाता ने ही उन्हें 'फर्श से अर्श' तक का सफर कराया है। अतः वे मतदाताओं अथवा जनमत को सदैव अपने पक्ष में रखने का प्रयास करते हैं।

4.प्रजातान्त्रिक भावना के अनुकूलः- प्रत्यक्ष निर्वाचन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण है। यह प्रजातन्त्र की भावना के पूर्णतः अनुकूल है। जनता सीधे तौर पर निर्वाचन में भाग लेती है। जिससे उसकी भावना तुष्ट होती है।

11.6 प्रत्यक्ष निर्वाचन के दोष

प्रत्यक्ष निर्वाचन के प्रमुख दोष इस प्रकार हैः-

1.खर्चीला शासनः- प्रत्यक्ष निर्वाचन का यह प्रमुख दोष है। इसमें निर्वाचन प्रक्रिया के दौरान चुनाव लड़ रहे लोग चुनाव जीतने के लिये अधिकाधिक धन व्यय करते हैं। यह प्रक्रिया चुनाव को अधिक

खर्चीला बना देती है। इसका परिणाम यह होता है कि योग्य परन्तु धन-बल में कमजोर व्यक्ति चुनाव नहीं लड़ पाता है। आज के भारत, अमेरिका जैसे देशों में यह दोष प्रमुखता से देखा जा रहा है।

2.अयोग्या व्यक्तियों की भूमिकाः- प्रत्यक्ष निर्वाचन का यह महत्वपूर्ण दोष है। इसमें चुनाव बहुमत से होता है और सार्वभौम वयस्क मताधिकार के दौर में सभी अपने मताधिकार का प्रयोग करते हैं। ऐसे में अशिक्षित, अक्षम लोग भी भावनाओं में बहकर जाति, धर्म, भाषा तथा संकीर्ण स्वार्थों के लिये मतदान करते हैं। कई बार इसके परिणामस्वरूप अयोग्य व्यक्ति चुनाव जीतने में सफल हो जाते हैं। जोकि लोकतन्त्र के लिये बड़ा खतरा है।

3.कुशल एवं योग्य व्यक्तियों का निर्वाचन नहीं- प्रत्यक्ष निर्वाचन में धनबल एवं बाहुबल का प्रभाव इतना बढ़ जाता है कि सामान्य व्यक्ति चुनाव में भाग लेने, जनप्रतिनिधि बनने से दूर भागता है। यदि कोई प्रयास करता है तो धनबल एवं बाहुबल के सामने ठहर नहीं पाता है। यही कारण है कि इसमें योग्य एवं कुशल व्यक्तियों का निर्वाचन नहीं हो पाता है।

4.सार्वजनिक शिक्षा नहीं- चुनाव प्रक्रिया का विश्लेषण करने का यह तथ्य भी सामने आता है कि व्यक्ति को भ्रामक प्रचार से भ्रमित कर दिया जाता है। सामान्यजनों के सामने गलत तथ्य एंव भ्रामक विश्लेषण प्रस्तुत किये जाते हैं। जिससे जनमत ही गलत बन जाता है।

11.7 अप्रत्यक्ष निर्वाचन के गुण

अप्रत्यक्ष निर्वाचन के प्रमुख गुण इस प्रकार है-

1.योग्य व्यक्तियों का निर्वाचन:- अप्रत्यक्ष निर्वाचन में जनता प्रतिनिधियों का निर्वाचन नहीं करती बल्कि एक निर्वाचक मण्डल चुनाव करता है। यह ऐसे व्यक्तियों का समूह होता है जो तर्कपूर्ण, विवेकपूर्ण निर्णय करते हैं। उनके निर्णय के परिणामस्वरूप सही एवं योग्य व्यक्तियों का चुनाव होता है। यह अप्रत्यक्ष निर्वाचन का एक प्रमुख गुण है।

2.कम खर्चीला निर्वाचनः- कुछ विद्वानों का मत है कि इसमें मतदान का अधिकार सभी के पास नहीं होता जिसके कारण चुनाव का क्षेत्र व्यापक नहीं हो पाता। कतिपय यही कारण है कि चुनाव में खर्च भी कम होता है। कम खर्चीला होना इसका प्रमुख गुण है। इसके कारण सामान्य व्यक्ति भी चुनाव में सहभागिता कर सकता है।

3.अशिक्षित जनता वाले निर्वाचन क्षेत्रों के लिये उपयोगीः- विद्वानों का यह मत है कि उन लोकतन्त्रों में जहाँ शिक्षा का स्तर नीचे है, जनता को स्वशासन का अनुभव नहीं है। वहाँ जनता गलत चुनाव भी कर सकती है अतः यह अशिक्षित निर्वाचन क्षेत्रों वाले राज्यों के लिये उपयुक्त है।

4.बड़े निर्वाचन क्षेत्रों के लिये उपयोगीः- अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली को बड़े राज्यों के लिये बहुत अनुकूल माना जाता है। इसमें आम निर्वाचन में होने वाली समय एवं धन के व्यय से मुक्ति मिलती है। अप्रत्यक्ष निर्वाचन से बड़े से बड़ा निर्वाचन सहजता से सम्पन्न हो जाता है।

5.दलगत बुराइयों से दूरः- इस चुनाव में जनता एक बार निर्वाचक मंडल का चुनाव कर लेते है और बाद में निर्वाचक मंडल अपने प्रतिनिधियों का । इस पूरी प्रक्रिया में प्रत्यक्ष निर्वाचन की तरह दलगत स्वार्थ नहीं दिखायी पड़ता है।

6.नवजात लोकतन्त्र के लिये अनुकूलः- अप्रत्यक्ष निर्वाचन को नवोदित लोकतन्त्र के लिये उपयुक्त माना जाता है। इनकी मान्यता है कि जिन समाजों में राजनीतिक शिक्षा, चेतना, स्वशासन का अभाव एवं आर्थिक विषमता है वहाँ के लिये यह उपयुक्त है इससे वहाँ पर भावना प्रधान निर्णय नहीं होते।

11.8 अप्रत्यक्ष निर्वाचन के दोष

अप्रत्यक्ष निर्वाचन के प्रमुख दोष निम्न है

1.यह व्यवस्था अप्रजातान्त्रिक हैः- अप्रत्यक्ष निर्वाचन के आलोचक इस पर प्रहार करते हुए कहते है कि यह प्रजातान्त्रिक भावना के अनुकूल नहीं है, जनता सीधे अपने प्रतिनिधियों से नहीं जुड़ती है। वह उनको चुनने के लिये राजनीतिक अधिकार से वंचित रहती है। यह इसका प्रमुख दोष है।

2.सामान्य जन की उदासीनताः- अप्रत्यक्ष निर्वाचन में सामान्य नागरिक सीधे निर्वाचन से नहीं जुड़ा रहता है। यही कारण है कि वह पूरी राजनीतिक प्रक्रिया के प्रति उदासीन रहता है। यह उदासीनता लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के लिये शुभ संकेत नहीं है। लोकतन्त्र जन सक्रियता से चलता है। यदि जनता उदासीन हो गई तो लोकतन्त्र ही मर जायेगा।

3.भ्रष्ट एवं अनैतिक माध्यमों का उपयोगः- प्रारम्भ में यह माना गया कि अप्रत्यक्ष निर्वाचन में धन-बल का प्रयोग कम होगा। बाद के वर्षो में पाया गया कि वास्तव में इस व्यवस्था में निर्वाचक मंडल को प्रभावित करने के लिये धन-बल का सर्वाधिक प्रयोग हुआ। अमेरिका में राष्ट्रपति के चुनाव में ऐसा देखा गया। अरस्तू के शब्दों में -''थोड़े से व्यक्ति को भ्रष्ट करना अधिक लोगों के भ्रष्ट करने की तुलना में सरल है।''

4.राजनैतिक शिक्षा का अभावः- अप्रत्यक्ष निर्वाचन में जनता न तो सीधे सम्पर्क में आती है और न ही मुख्य निर्वाचन में भाग लेती है। जिसके कारण वह राजनीतिक शिक्षा को प्राप्त नहीं कर पाती है। यह इसका प्रमुख दोष है।

5.जनता एवं प्रतिनिधियों के बीच संपर्क का अभावः- यह अप्रत्यक्ष निर्वाचन का प्रमुख दोष है। इस व्यवस्था में जनता तथा उनके प्रतिनिधियों के बीच सीधा संवाद नहीं होता। प्रतिनिधि जनता की समस्या, जरूरत से अवगत नहीं होते। जिसके कारण वे अपने कर्तव्यों का निर्वहन ठीक प्रकार से नहीं कर पाते हैं। यह लोकतन्त्र के लिये शुभ संकेत नहीं है।

6.उत्तरदायित्व का अभावः- अप्रत्यक्ष निर्वाचन में प्रतिनिधि सीधे जनता से जुड़े नहीं होते जिसके कारण वे जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं होते। यह लोकतन्त्र की बड़ी कमजोरी सिद्ध होगी।

7.व्यवहार में यह प्रत्यक्ष निर्वाचन:- अमेरिका के राष्ट्रपति पद के निर्वाचन का अनुभव यह बताता है कि व्यवहार में अप्रत्यक्ष निर्वाचन भी प्रत्यक्ष बन जाता है। यह प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की बुराइयों को समेट लेता है।

11.9 मतदान की प्रणालियाँ

व्यवहार में लोकतन्त्र की दो प्रणालियाँ दिखायी पड़ती है-(1) प्रकट मतदान (2) गुप्त मतदान

1.प्रकट मतदानः- जब मतदान खुले में सबके सामने हाथ उठाकर या खुले संकेत से किया जाता है तो वह खुला मतदान कहलाता है। यह मतदान का अत्यन्त प्राचीन तरीका है। प्राचीन काल में यूनान एवं कुछ अन्य स्थानों पर खुला मतदान की व्यवस्था थी। आज भी स्विट्जरलैण्ड के कुछ कैंटनों में यह परंपरा चल रहीं हैं।

जे0 एक0 मिल, ट्राटस्की, मांटेस्क्यू ने खुले मतदान का समर्थन किया। मांटेस्क्यू के शब्दों में -''यह ऐसा माध्यम है जिसमें अधिक प्रबुद्ध लोग साधारण लोगों की सहायता करते हैं और उन्हें शिक्षित कर सकते हैं।'' मिल के शब्दों में- ''किसी अन्य सर्वाजनिक कर्त्तव्य की भाँति मतदान के कर्त्तव्य का निष्पादन भी लोगों की आँखों तथा आलोचना के सामने होना चाहिए।'' यह प्रणाली 1901 तक डेनमार्क में, 1920 तक जर्मनी में प्रचलित थी।

2.गुप्त मतदानः- गुप्त मतदान की व्यवस्था खुले मतदान की एकदम उलट है। इसमें मतदान गुप्त रूप से किया जाता है। उसका मतदान कोई अन्य व्यक्ति नहीं समझ पाता है। आज विश्व में गुप्त मतदान तेजी से बढ़ रहा है। खुले में लोगों की घटती संख्या ने भी गुप्त मतदान को लोकप्रिय बनाया। गुप्त मतदान में हिंसा या भय का वातावरण नहीं रहता। कमजोर व्यक्ति भी बिना भय के मताधिकार का प्रयोग कर पाता है। हैरिगंटन ने गुप्त मतदान व्यवस्था को मुक्त एवं स्वतन्त्र मतदान की अनिवार्य शर्त माना। ट्राटस्की ने गुप्त मतदान की आलोचना करते हुए कहा था - ''गुप्त मतदान व्यवस्था ऐसी सबसे गंदी चालबाजी है जिसे सदैव उदारवाद के नाम पर प्रस्वावित किया गया है।''

मतदान की कुछ अन्य विधियाँ इस प्रकार हैः-

11.9.1 बहुमत के आधार पर निर्वाचनः-

इसका अर्थ है कि चुनाव में अधिकतम मत पाने वाले व्यक्ति को विजयी घोषित कर दिया जाता है। इसके अन्तर्गत विजयी होने के लिये स्पष्ट बहुमत या मतों का कोई कोटा प्राप्त करना आवश्यक नहीं होता है। आधुनिक समय में अधिकांश देशों में यह तरीका ही प्रचलित है। भारत में भी यही विधि प्रचलित है। इस निर्वाचन व्यवस्था में गंभीर दोष है कि कई बार बहुत कम मतों को प्राप्त करने वाला व्यक्ति भी विजेता हो जाता है। आलोचक इसे अल्पमत का बहुमत का शासन कहते है। उदाहरण के लिये किसी चुनाव में तीन प्रत्याशियों ने क्रमशः 2000, 1800,1500 मत प्राप्त किये तो इसमें सर्वाधिक मत 2000 मत पाने वाला प्रत्याशी विजयी घोषित कर दिया जायेगा। इसमें यह देखा गया है कि मतों में बहुत मत प्रतिशत पाने वाला व्यक्ति भी विजयी हो जाता है।

11.9.2 द्वितीय मतदान व्यवस्थाः-

इसमें यह व्यवस्था की गई कि विजेता को डाले गये मतों का 50 प्रतिशत से अधिक पाना आवश्यक है। यदि कोई प्रत्याशी डाले गये मतों का 50 प्रतिशत से कम (स्पष्ट बहुमत) प्राप्त करता है तो चुनाव रद्द कर दिया जाता है। पुनः चुनाव में सर्वाधिक मत पाने वाले प्रथम दो प्रत्याशियों में

चुनाव होता है। यदि प्रथम दो में से कोई चुनाव नहीं लड़ना चाहता तो अगला व्यक्ति यह अवसर पाता है। द्वितीय मतदान व्यवस्था में बहुमत के अभाव में द्वितीय मतदान से विजेता का फैसला होता है। फ्रांस में राष्ट्रपति का चुनाव इसी विधि से होता है। इसमें स्पष्ट बहुमत से निर्वाचन होता है। इस विधि की आलोचना का प्रमुख आधार इसमे दोबारा निर्वाचन कराना पड़ता है। इससे समय एवं धन का अपव्यय होता है। कतिपय इसी दोष को दूर करने के लिये वैकल्पिक मतदान व्यवस्था का निर्माण हुआ।

11.9.3 वैकल्पिक मतदान व्यवस्था:-

इसे वरीयता या सापेक्षतापूर्ण मतदान की व्यवस्था के नाम से भी पुकारा जाता है। इसमें विजयी होने के लिये प्रत्याशी को कुल डाले गये मतों का स्पष्ट बहुमत प्राप्त करना आवश्यक होता है। इसके लिये दोबारा चुनाव नहीं होता है।

वैकल्पिक मतदान व्यवस्था में मतदाता को ऐसा मतपत्र दिया जाता है जिसमें प्रत्याशियों का नाम तथा चुनाव चिन्ह बायें और दिये जाते हैं। और दाहिने तरफ खाली खाने होते हैं। जिसमे मतदाता को 1,2,3,4 आदि लिखकर अपनी पंसद का क्रम दिखाना होता है। मतदान के बाद वैध मतों संख्या में 1+1 = 2 से भाग देकर भागफल में 2 जोड़कर चुनाव ''कोटा'' निकाल लिया जाता है। उदाहरण के लिये किसी मतदान में वैध मत 200 हैं तो कोटा 200/1+1 = 2 =100, 100+ 1=101 होगा।

इस व्यवस्था में गिनती की विशेष प्रक्रिया अपनायी जाती है। सबसे पहले प्रथम वरीयता के मतों की गिनती होती है। यदि प्रथम वरीयता के मतों से कोई प्रत्याशी ''कोटा'' प्राप्त कर लेता है तो उसे विजेता घोषित कर दिया जाता है। यदि कोई भी प्रत्याशी निर्धारित ''कोटा'' नहीं प्राप्त कर पाता है तो सबसे कम मत पाने वाले प्रत्याशी को हटा दिया जाता है और उसके मतपत्रों में अंकित द्वितीय पसंद के मतों को अन्य प्रत्याशियों को हस्तान्तरित कर दिया जाता है। द्वितीय वरीयता के मतों को जोड़ने से यदि किसी प्रत्याशी को ''कोटा'' प्राप्त हो जाता है तो उसे विजेता घोषित कर दिया जाता है। यदि द्वितीय मत से भी ''कोटा'' प्राप्त नहीं होता तो तृतीय वरीयता के मतों को हस्तान्तरित किया जाता है। यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक ''कोटा'' प्राप्त न हो जाये। भारत में राष्ट्रपति के चुनाव में यही प्रक्रिया अपनायी जाती है।

11.10 अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व

सामान्यतः प्रतिनिधित्व से बहुमत के प्रतिनिधित्व का बोध होता है क्योंकि निर्वाचन में उम्मीदवारों का चुनाव बहुमत के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक समाज में अल्पसंख्य समुदाय भी होता है। सामान्य निर्वाचन प्रक्रिया में अल्पसंख्यकों को समुचित प्रतिनिधित्व नहीं दिया जा सकता। कतिपय यह कारण है कि सभी देशों में अल्पसंख्यकां को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की गई है। जे0एस0मिल एवं लेवी ने अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व को मजबूती से उठाया। मिल ने अपने पुस्तक ''रिप्रेजेंटेटिव गवर्नमेंट'' में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विस्तार से चर्चा की।

मिल के शब्दों में -'' सच्चे प्रजातंत्र के अन्तर्गत प्रत्येक समुदाय को आनुपातिक ढंग से प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये।''

आधुनिक समय में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न एक गंभीर प्रश्न है। इसकी किसी भी स्थिति में अवहेलना करना अन्यायपूर्ण होगा। अल्पसंख्यकों को साथ में जोड़े बिना वास्तविक लोकतन्त्र की कल्पना नहीं की जा सकती।

मिल के शब्दों में -'' प्रजातंत्र का विशुद्ध अर्थ उस शासन से है, जो सारी जनता का शासन हो, एक समान प्रतिनिधित्व के आधार पर सारी जनता द्वारा हो।''

विभिन्न विद्वानों और विचारकों ने भी अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विचार किया है। इस संबंध में अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये है। इसमें से प्रमुख सिद्धान्त निम्न है-

1.आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली
2.सूची प्रणाली
3.सीमित मतदान प्रणाली
4.संचित मतदान प्रणाली
5.वैकल्पिक मत प्रणाली
6.सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली
7.द्वितीय मतदान प्रणाली

11.10.1 आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन इंग्लैण्ड के विद्वान थामस हेयर ने अठारहवीं शताब्दी में किया। यही कारण है कि कुछ विद्वान इसे हेयर प्रणाली भी कहते है। इस पद्धति को अपनाने के लिये आवश्यक है कि बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र होना चाहिये। ऐसे निर्वाचन क्षेत्र में प्रत्येक मतदाता को उतने संख्या में मत देने का अधिकर होता है। जितने उम्मीदवार चुने जाते है। इस व्यवस्था में विजय का आधार बहुमत नहींवरननिश्चित कोटा होता है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को व्यवहारिक बनाने के लिये दो विधियाँ विकसित की गई। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के तीन तत्व है-

i.बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र होना चाहिए।

ii.प्रत्याशी का निर्वाचन बहुमत से नहींवरनमतों का निश्चित कोटा के आधार पर होना चाहिए। यह कोटा कुल वैध मतों को भरे जाने वाले स्थान से भाग देने पर भागफल में एक जोड़कर प्राप्त किया जा सकता है।

iii.जहाँ तक संभव हो विधायिका में निर्वाचकों का प्रतिनिधित्व गणितीय दृष्टि से ठीक हो।

डायसी के शब्दों में - ''आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली वह है जिसमें बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र हो, प्रत्याशी का निर्वाचन बहुमत से नहीं वरन कोटा प्राप्त करने से होना चाहिये। साथ ही विधायिका में ऐसा प्रतिनिधित्व हो जो गणितीय दृष्टि से सटीक हो।''

यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि निर्वाचकों के विचारों को विधायिका में यथासंभव उसी अनुपात में प्रतिनिधित्व दिलाने के लिये जितने निर्वाचक है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को व्यवहारिक बनाने के लिये दो विधियाँ विकसित की गई-

- एकल हस्तान्तरणीय मत व्यवस्था ; (Single transferable vote system)
- सूची व्यवस्था (List system)

11.10.1.1 एकल हस्तान्तरणीय मत व्यवस्थाः-

एकल हस्तान्तरणीय मत व्यवस्था को सबसे पहले डेन्मार्क के एक मन्त्री कार्ल एंडरे ने प्रस्तुत किया। परन्तु इसे हेयर ने और व्यावहारिक बनाया अतः इसे ''हेयर प्रणाली'' भी कहा जाता है। इस व्यवस्था में मतदाता को ऐसा मत पत्र दिया जाता है जिसमें बायें ओर सभी प्रत्याशियों के नाम एवं चिन्ह अंकित होते हैं तथा दाहिने छोर पर खाली खाने होते हैं। उसे इन खाली में अपने पसन्द के क्रम 'वरीयता' अंकित करने होते है। वह सभी अथवा कुछ को भर सकता है। मतगणना के समय अवैध मतपत्रों को अलग कर दिया जाता है। वैध मतों में चुने जाने वाले सीटों की संख्या में एक जोड़कर भाग दे दिया जाता है यही भागफल एक जोड़कर 'कोटा' प्राप्त किया जाता है। इस सूत्र को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है-

निर्वाचन के लिये कोटा से अधिक या बराबर मत प्राप्त करना आवश्यक होता है। यदि मतगणना में किसी को कोटा प्राप्त नहीं हो पाता है तो सबसे कम मत प्राप्त होने वाले व्यक्ति को बाहर कर दिया जाता है और उसके द्वितीय वरीयता के मत दूसरे प्रत्याशियों को हस्तान्तरित कर दिये जाते हैं। यदि फिर भी 'कोटा' प्राप्त नहीं होता है तब सबसे कम मत पाने वाले प्रत्याशी को बाहर कर उसके मतों को अन्य प्रत्याशियों में हस्तान्तरित कर दिया जाता है। निर्वाचन कोटा प्राप्त करने वाले व्यक्ति विजयी होते है। प्रथम मतगणना में कोटा प्राप्त होने के बाद उसके कोटा से अधिक द्वितीय वरीयता के मत शेष प्रत्याशियों को हस्तांतरित कर दिये जाते है। इस प्रकार मतों का हस्तान्तरण तब तक चलता रहता है। जब तक आवश्यक संख्या में सदस्य निश्चित मत संख्या प्राप्त नहीं कर लेते।

यह प्रणाली थोड़ी जटिल है फिर भी नार्वे, डेनमार्क, स्वीडन, फिनलैण्ड में प्रचलित है। भारत में राज्य सभा, विधान परिषद के चुनाव में इसका प्रयोग होता है।

11.10.1.2 सूची प्रणाली

आनुपातिक मत पद्धति का दूसरा रूप सूची प्रणाली है। इस प्रणाली में बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र होते हैं। एक निर्वाचन क्षेत्र में 15 से 20 सदस्य होते हैं। इस प्रणाली में जो प्रत्याशी खड़े होते हैं, उनके दल द्वारा अपने-अपने प्रत्याशियों की सूची बना ली जाती है। प्रत्येक मतदाता कुल चुने जाने वाले लोगों के बराबर मत देता है। एक उम्मीदवार को एक मत ही प्राप्त होता है। गणना से पूर्व कोटा पहले से तय कर लिया जाता है। इस प्रणाली में उम्मीदवारों द्वारा पृथक-पृथक प्राप्त मतों की संख्या की गणना नहीं की जाती हैवरनविभिन्न सूचियों में प्राप्त मतों की गणना की जाती है। यह देखा जाता है

कि किस दल ने कितने प्रतिशत मत प्राप्त किये हैं। स्थानों का विभाजन उसी प्रतिशत के अनुसार दलों के पक्ष में किया जाता है।

यह भी हो सकता है कि कोई दल विजयी होने के लिये आवश्यक प्रतिशत न पा सका हो। यह भी हो सकता है कि अपने मतों का प्रतिशत किसी पड़ोसी अथवा अन्य बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र में ले जाकर वहाँ इस शेषांश के संचय के माध्यम से एक या अधिक स्थान पाने का प्रयास करता है। वह किसी अन्य दल को बचे मत दे सकता है जिससे ''साझे प्रत्याशी'' के लिये स्थान प्राप्त किया जा सके।

सूची प्रणाली में मतदान व्यक्ति के आधार पर नहींवरनपार्टी के आधार पर किया जाता है। यह सरल प्रणाली है। इसमें सभी दलों, समूहों को स्थान दिया जाता है। विजयी उम्मीदवारों की संख्या उनके द्वारा प्राप्त मत संख्या के अनुपात में तय की जाती है। यह प्रणाली कम खर्चीली भी है।

11**.11 आनुपातिक प्रतिनिधित्व के गुणः-** आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के प्रमुख गुण इस प्रकार है-

1.अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्वः- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का यह प्रमुख गुण है। यह प्रणाली अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करती है। इसके अन्तर्गत अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। जिससे इनके अन्दर सुरक्षा की भावना का विकास एवं सन्तोष की प्राप्ति होती है।

2.सभी वर्गो का हित साधनः- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है। इस प्रणाली में संख्या बल में कमजोर अल्पसंख्यकों का भी प्रतिनिधित्व होता है। इसमें प्रत्येक मत का इस्तेमाल होता है। कुल मिलाकर यह प्रणाली सम्पूर्ण समाज के हित में है।

3.नागरिक चेतना का विकासः- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में प्रत्येक मत का अपना महत्व होता है। सभी वर्ग के लोग मतदान प्रक्रिया में उत्साह के साथ भाग लेते है। यह प्रक्रिया लोगों में उत्साह का संचार करती है। यह उत्साह उन्हे राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय करता है। जिससे राजनीतिक चेतना का विकास होता है।

4.भ्रष्टाचार का अन्तः- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का यह प्रमुख गुण है। इसमें भ्रष्टाचार का अन्त हो जाता है। यह ऐसी प्रणाली है जिसमें सभी दलों का प्रतिनिधित्व होता है। इसमें किसी एक दल का प्रचण्ड बहुमत नहीं होता। अधिकाशतः मिश्रित सरकार बनती है जो संतुलित रहती है। इसमें सरकारों की मनमानी एवं भ्रष्टाचार की संभावना कम रहती है।

5.राजनीतिक शिक्षा का प्रसारः- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में मतदाताओं को राजनीतिक शिक्षा प्राप्त होती है। इसमें सभी मतदाताओं को अपनी पसन्द जारी करने का अवसर प्राप्त होता है। यह उन्हें राजनीतिक व्यवस्था में सक्रिय बनाती है तथा राजनीतिक शिक्षा भी प्रदान करती है।

6.राष्ट्रीय हितों का संवर्द्धनः- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का यह प्रमुख गुण है कि इसमें राष्ट्रीय हितों की पूर्ति होती है। कोई भी दल स्वार्थों से प्रेरित होकर राष्ट्रीय हितों की अनदेखी नहीं

कर पाता। प्रत्येक वर्ग, दल के प्रतिनिधित्व से संसद अथवा विधायिका में सत्तारूढ़ दल की पर्याप्त प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। अतः वे राष्ट्रीय हितों की अनदेखी नहीं कर पाते हैं।

7.श्रेष्ठ व्यक्तियों का शासनः- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में श्रेष्ठ व्यक्ति शासन के कार्य को करते हैं। वे विधायिका में अपनी योग्यता, प्रतिभा का परिचय देते हैं। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में चुनाव की पद्धति योग्य व्यक्तियों को चुनाव में सफल करती है। मिल के शब्दों में- ''आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली की तुलना में कोई अन्य निर्वाचन प्रणाली नहीं है जिसके द्वारा श्रेष्ठ व्यक्तियों को विधायिका में लाया जा सके।''

8.उम्मीदवार एवं मतदाताओं में घनिष्ठ सम्बन्धः- इस प्रणाली में मतदाताओं एवं उम्मीदवारों में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। मिल के शब्दों में - ''इन परिस्थितियों में निर्वाचक और प्रतिनिधि के बीच सशक्त ओर महत्वपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होता है क्योंकि प्रत्येक मतदाता उम्मीदवारों से अपनापन का अनुभव करता है और प्रत्येक प्रतिनिधि मतदाता से घनिष्ठता महसूस करता है।

9.गैरीमेण्डरिंग जैसी बुराइयों का अन्तः- गैरीमेण्डरिंग आधुनिक समय में दिखायी पड़ रही एक बुराई है। इसमें निर्वाचन क्षेत्रों में सत्तारूढ़ दल अपने हितों के अनुरूप निर्वाचन क्षेत्रों में बदलाव करता है। यह एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों में हो पाता है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों में होती है अतः वहाँ पर गैरीमेण्डरिंग का भय नहीं रहता है।

10. प्रजातन्त्रवादीः- प्रजातन्त्र जनता का शासन है। अतः जनता का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व (सभी वर्गों , पंथों) करने के लिये आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली ही कारगर है। लार्ड एक्टन के शब्दों में- ''यह अति प्रजातन्त्रवादी है क्योंकि इससे उन सहस्त्रों व्यक्तियों का शासन में भाग लेने का अवसर मिलता है जिनकी वैसे कोई सुनवाई नहीं होगी। यह समानता के सिद्धान्त के निकट है क्योंकि किसी मत का अपव्यय नहीं किया जाता। प्रत्येक मतदाता का व्यवस्थापिका में प्रतिनिधित्व होता है।

11.12 आनुपातिक प्रतिनिधित्व के दोषः-

आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में अनेक गुण हैं परन्तु इसके साथ इसमें कुछ दोष भी दिखायी पड़ते हैं। इस सम्बन्ध में स्ट्रांग का कथन प्रासंगिक हो जाता है- ''सैद्धान्तिक दृष्टि से आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली सभी प्रकार से श्रेष्ठ प्रतीत होती है, किन्तु व्यवहार में स्थिति ऐसी नहीं है।'' इसके प्रमुख दोष निम्न है-

1.जटिल शासन प्रणालीः- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का यह एक प्रमुख दोष है। यह निर्वाचन प्रणाली जटिल है। सामान्य मतदाता के समझ से परे है। विशेष रूप से मतगणना की प्रक्रिया भी जटिल है। प्रो0 जे0पी0 सूद के शब्दों में - ''यह पद्धति इतनी जटिल है कि इसके अन्तर्गत मतदाता और उम्मीदवार दोनों गणना पदाधिकारियों की दया पर निर्भर करते है।''

2.मजबूत सरकारों का अभावः- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का यह प्रमुख दोष है। इसमें स्थायी सरकार का निर्माण नहीं हो पाता है। इस पद्धति में किसी दल विशेष को स्पष्ट बहुमत नहीं मिल पाता है। इतिहास में ऐसे कई अवसर आये हैं जब मिश्रित सरकारें बनी हैं और अपना कार्यकाल

पूरा नहीं कर पायी हैं। फाइनर के शब्दों में - ''विभाजन तथा पृथक्करण को प्रोत्साहित करके यह कार्यकारिणी के स्थायित्व को धक्का पहुँचाती है।''

3.एक सदस्यीय एवं छोटे क्षेत्रों के लिये अनुपयुक्त:- यह निर्वाचन पद्धति बड़े तथा बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है परन्तु एक सदस्यीय एवं छोटे निर्वाचन क्षेत्रों के लिये अनुपयुक्त होती है।

4.चुनाव का आधार योग्यता न होकर दलीय गुटबन्दीः- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में चुनाव का क्षेत्र बहुत व्यापक होता है। मतदाता एवं प्रतिनिधियों के बीच सम्पर्क नही हो पाता है। मतदाता, चुनाव योग्यता के आधार पर न कर दलीय आधार पर करते हैं।

5.स्वतन्त्र एवं निर्दल उम्मीदवारों के विरूद्ध:- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का यह दोष है कि इसमें स्वतन्त्र एवं निर्दल उम्मीदवारों के लिये कोई स्थान नहीं होता है। इसमें केवल पार्टी टिकट पर खड़े उम्मीदवार ही चुनाव लड़ पाते हैं।

6.मतदाता एवं निर्वाचकों के मध्य मजबूत सम्बन्ध का अभावः- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र आवश्यक होते हैं। इसके परिणामस्वरूप निर्वाचकों एवं उम्मीदवारें के बीच सम्पर्क एवं सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। प्रतिनिधि दल के प्रति उत्तरदायी होते हैं। फाइनर के शब्दों में - ''इसे अपनाने पर प्रतिनिधि द्वारा अपने क्षेत्र की देखभाल समाप्त हो जाती है।''

7.अनेक दलों एवं गुटों का जन्मः- इस निर्वाचन प्रणाली को अपनाने से पृथक वर्ग एवं हित समूह की आशा जगती है। इसके परिणामस्वरूप अनेक दलों एवं गुटों की संख्या बढ़ जाती है। जर्मनी के वीमर संविधान में इसे अपनाये जाने से वहाँ दलों की संख्या 30 से अधिक होती है। लास्की के शब्दों में - ''इसके अन्तर्गत अनेक दल एवं गुटों का जन्म होता है।''

8.वर्गीय हितों की पूर्तिः- इस पद्धति में विधायिका राष्ट्रीय हितों का संवर्धन नहीं करतीवरनक्षेत्रीय एवं वर्गीय हितों की पूर्ति करती है। विकास एवं राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान वर्गीय हितों के आधार पर किया जाता है। सिजयिक के शब्दों में - ''वर्गीय प्रतिनिधित्व आवश्यक रूप से दूषित वर्गीय व्यवस्थापन को प्रोत्साहित करता है।''

9.राष्ट्रीय एकता के लिये घातकः- इस प्रणाली में संकीर्ण हितों की पूर्ति के लिये प्रयास किये जाते हैं। राष्ट्रीय हितों की अनदेखी की जाती है। इसमें राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक कार्यक्रम नहीं होते हैं। प्रो0 स्ट्रांग के शब्दों में- ''आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली संकीर्ण विचारधारा को जन्म देती है जो सामाजिक स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।''

10.उपचुनाव की व्यवस्था नहीं- कुछ आलोचकों का मानना है कि आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में उपचुनाव की व्यवस्था नहीं है जिसके कारण जनता का मिजाज सरकार की लोकप्रियता की परख नहीं हो पाती है। फाइनर के शब्दों में - ''उपचुनाव से यह ज्ञात होता है कि हवा किस ओर बह रही है, परन्तु ऐसा उपचुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में सम्भव नहीं है।''

विभिन्न विद्वानों ने इस प्रणाली की व्यापक आलेचना की है। लास्की के शब्दों में - ''यह योजना जनजीवन के स्तर को उन्नत बनाने में असफल रही है।'' फ्रांसीसी विद्वान एसमिन के शब्दों में - ''आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली की स्थापना करना द्विसदनीय व्यवस्था द्वारा प्रदत्त अमृत को विष में परिवर्तित करना है।

यह सत्य है कि यह प्रणाली सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों के लिये अनुपयुक्त है। यह विशेष निर्वाचन क्षेत्रों के लिये उपयोगी सिद्ध हुई है।

11.13 संचित मतदान प्रणाली

इस मतदान प्रणाली के लिय बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र होना आवश्यक है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक मतदाता को उतने मत दिये जाते हैं जितने सदस्य उस क्षेत्र से चुने जाने वाले हैं। प्रत्येक मतदाता को यह विशेष अधिकार होता है कि वह अपने समस्त मत चाहे तो एक प्रत्याशी को दे दे या अलग-अलग प्रत्याशियों को दे। यह व्यवस्था अल्पसंख्यकों को एक साथ संगठित हो अपने पूरे मत किसी विशेष प्रत्याशी को देने से, चुने जाने का अवसर प्रदान कर देती है।

इस मत प्रणाली में अनेक दोष दिखायी पड़ते है। इसमें अल्पसंख्यकों का आनुपातिक प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता है। इस प्रणाली का दूसरा महत्वपूर्ण दोष है कि मतदाताओं के अनेक मत व्यर्थ हो जाते है। कई बार परिस्थितिवश अल्पसंख्यकों को अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है। मतगणनामेंभी यह मतदान प्रणाली जटिल है।

11.14 सीमित मतदान प्रणाली

अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिये सीमित मतदान प्रणाली की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इसका प्रयोग बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र में किया जाता है जिसमें कम से कम तीन सदस्य निर्वाचित होने की व्यवस्था हो। इस प्रणाली में प्रत्येक मतदाता को एक से अधिक मत तथा कुल निर्वाचित होने वाले लोगों से कम प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये किसी क्षेत्र विशेष से 4 सदस्यों का निर्वाचन होना है तो वहाँ मतदाताओं को अधिकतम 3 मत प्राप्त हो सकते है। इसमें मतदाता किसी प्रत्याशी को एक से अधिक मत नहीं दे सकता।

इस मतदान प्रणाली में अल्पसंख्यकों को कुछ प्रतिनिधित्व का अवसर प्राप्त हो जाता है किन्तु जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व की संभावना नहीं रहती। केवल बड़े अल्पमत वर्गों को प्रतिनिधित्व का अवसर प्राप्त होता है।

11.15 सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली

सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को पृथक निर्वाचन प्रणाली भी कहा जाता है। भारत में यह उपनिवेशवाद के दौरान अंग्रेजों की देन है। इस प्रणाली में धर्म अथवा सम्प्रदाय के आधार पर निर्वाचन क्षेत्र बनाये जाते है। भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान में मुसलमानों के लिये यह सिद्धान्त अपनाया गया। 1919 के सिक्खों को पृथक प्रतिनिधित्व का अधिकार दिया गया। इस व्यवस्था में प्रत्येक सम्प्रदाय के लिये स्थान सुरक्षित कर दिये जाते है। एक सम्प्रदाय के लिये आरक्षित स्थान उस

वर्ग से भरे जाते है। इस निर्वाचन प्रणाली में एक सम्प्रदाय के लिये आरक्षित स्थान पर उस वर्ग के व्यक्तियों द्वारा ही निर्वाचन किया जाता है। उदाहरण के लिये मुस्लिम मतदाता मुस्लिम प्रतिनिधि का चुनाव करता है तथा सिक्ख मतदाता सिक्ख प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते हैं।

यह निर्वाचन प्रणाली धार्मिक अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व अवश्य देती है परन्तु इसका उद्देश्य, प्रभाव समाज के लिये ठीक नहीं है। इससे समाज में सांप्रदायिक भावना के विकास की संभावना प्रबल हो जाती है। देश कई भागों में बंट जायेगा और साम्प्रदायिकता की आग फैल जायेगी। इससे दंगों की संभावना प्रबल होगी और राष्ट्रविरोधी शक्तियों को बल मिलेगा । अंग्रेजों द्वारा विकसित की गई इस योजना का मकसद भारत के समाज को बांटकर इसकी एकता एवं स्वतन्त्रता संघर्ष में लगी शक्ति को कम करना था। यह उनकी ''फूट डालो राज करो'' की नीति का क्रियान्वयन था।

11.16 व्यावसायिक प्रतिनिधित्व

प्रतिनिधित्व का यह आधुनिक सिद्धान्त है। इसके अन्तर्गत यह स्वीकार किया जाता है कि प्रतिनिधितव का वर्तमान सिद्धान्त ''क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त'' न्यायपूर्ण नहीं है। उनका मानना है कि प्रतिनिधित्व क्षेत्र के आधार पर न होकर व्यवसाय के आधार पर होना चाहिए। इनका मानना है कि विशिष्ट हित रखने वाले सामाजिक, आर्थिक, व्यवसायिक समूहों को विधायिका में स्थान मिलना चाहिए। गार्नर के शब्दों में- ''प्रादेशिक प्रतिनिधित्व की तथाकथित प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के स्थान पर व्यवसायिक, कार्य सम्बन्धी या पेशेवर प्रतिनिधित्व की व्यवस्था होनी चाहिए जो प्रादेशिक रेखाओं की उपेक्षा करें, क्योंकि वे प्रमुख रूप से बनावटी होती है तथा उन सीमाओं को नहीं दर्शाती जो विभिन्न वर्गों के वास्तविक हित को भिन्न करती है और जिनसे आधुनिक समाजों का गठन हुआ है।''

सरल शब्दों में व्यवसायिक प्रतिनिधित्व के विचार की प्रमुख मान्यता यह है कि केवल जनसंख्या के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों का बंटवारा ठीक नहीं है। इसके स्थान पर विभिन्न व्यवसायों, धन्धों की गणना होनी चाहिए और उनके आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। इस प्रकार विधायिका में व्यापारी वर्ग द्वारा चुने गये व्यापारी, श्रमिक वर्ग द्वारा श्रमिक, कृषक वर्ग द्वारा चुने गये कृषक, अध्यापकों द्वारा चुने गये अध्यापकों आदि का प्रतिनिधित्व होना चाहिए। जी0डी0एच0 कोल व्यावसायिक प्रतिनिधित्व के प्रबल समर्थक थे उनका कहना था- ''पूर्णतया वास्तविक एवं प्रजातान्त्रिक प्रतिनिधित्व व्यावसायिक प्रतिनिधित्व है। इसका अभिप्राय है कि समाज में उतने पृथक रूप से चुने गये प्रतिनिधियों के समूह होने चाहिए जितने प्रचलित विशिष्ट कार्यो के समूह हो।''

कोल ने आगे और स्पष्ट करते हुए लिखा- ''संसद सभी नागरिकों का सभी तरह से प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है परन्तु वास्तव में वह उनमें से किसी का किसी तरह प्रतिनिधित्व नहीं करती। उन्हें उन समस्याओं से निपटने के लिये चुना जाता है जो इसके सामने आती हैं परन्तु इस तथ्य पर कोई ध्यान नहीं देता कि विभिन्न प्रकार की समस्यायें पैदा हो सकती हैं जिनसे निपटने के लिये विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों की जरूरत होती हैं। हमारे संसदीय शासन की व्यर्थता से बचने का एक

तरीका हो सकता है कि प्रत्येक व्यवसाय एवं प्रत्येक संघ के कार्य के लिये प्रतिनिधियों के अलग-अलग निकाय हों। वास्तविक प्रजातन्त्र किसी अकेली सर्वशक्तिमान प्रतिनिधि सभा में नहीं बल्कि व्यावसायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था में संभव हो सकता है।''

11.16.1 व्यवसायिक प्रतिनिधित्व के दोषः-

इस सिद्धान्त में कुछ दोष दिखायी पड़ते हैं जो इस प्रकार हैं-

1.राष्ट्रीय हित की अनदेखीः- व्यावसायिक प्रतिनिधित्व सिद्धान्त में व्यवसाय एवं वर्ग के आधार पर प्रतिनिधित्व होता है जिसके कारण वे अपने हितो की पूर्ति में लगे रहते हैं और राष्ट्रीय हित गौण हो जाते हैं।

2.वर्ग अथवा व्यावसायिक संघर्षः- व्यावसायिक प्रतिनिधित्व सिद्धान्त में विभिन्न वर्गों में एक तरह से होड़ अथवा संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। यह किसी भी समाज के लिये हितकर नहीं होता। यह इस सिद्धान्त का प्रमुख दोष है।

3.सम्पूर्ण मानव हितों की अनदेखीः- कुछ आलोचकों का मत है कि यह सिद्धान्त केवल व्यावसायिक हितों को महत्व देता है। यह सम्पूर्ण मानव हितों के ही अंग है। व्यक्ति के सभी हित नागरिक हित के अन्तर्गत ही आते हैं। मैरियट के शब्दों में-''नागरिक का महत्व, डॉक्टर, वकील, व्यापारी, सोनार से कहीं अधिक है।''

4.सामाजिक एवं नागरिक एकता की क्षतिः-यह सिद्धान्त सामाजिकता की भावना पर गहरा कुठाराघात करता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः उसके हितों की पूर्ति सामाजिक एवं नागरिक आधार पर हो सकती है। व्यवसाय एवं वर्ग के आधार पर प्रतिनिधित्व होने से सामाजिक एकता को क्षति होगी।

5.अव्यावहारिक सिद्धान्तः- इस सिद्धान्त को लागू करने में व्यावहारिक क्षति होगी। यह पता करना मुश्किल है कि किस हित को कितना महत्व प्रदान किया जाये। लास्की के शब्दों में - ''यह समझ से परे है कि चिकित्सा सम्बन्धी कार्य संसद के प्रयोजनों के लिये किस प्रकार अनिवार्य हैं।''

6.अनुपयोगी सिद्धान्तः- यह सिद्धान्त अनुपयोगी है। व्यावसायिक आधार पर चुने गये प्रतिनिधि सार्वजनिक हित, राष्ट्रीय हित के प्रश्नों पर विचार नहीं रखते हैं। अतः यह सिद्धान्त लोकतन्त्र में अनुपयोगी हो जाता है।

11.17 आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक शर्तें

लोकतन्त्र में प्रतिनिधित्व का बहुत महत्व है। यदि प्रतिनिधित्व ठीक से नहीं होता है तो लोकतन्त्र का भविष्य भी अन्धकारमय हो सकता है। यदि प्रतिनिधित्व समानता के आधार पर नहीं है, निष्पक्ष नहीं है तो लोकतन्त्र प्रभावित होता है। सामान्य शब्दों में कहें तो स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष प्रतिनिधित्व के बिना आदर्श लोकतन्त्र की कल्पना नहीं कर सकते हैं। आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये कुछ आवश्यक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, आदर्श प्रतिनिधित्व की कुछ प्रमुख शर्तें इस प्रकार हैं-

1.स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष चुनावः- आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक है कि निर्वाचन स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष हो। यदि निर्वाचन स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष नहीं होगा तो समाज के सभी वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल पायेगा। अतः सभी को उचित एवं न्यायपूर्ण प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक है कि निर्वाचन पक्षपात पूर्ण न हो कर स्वतन्त्र हो।

2.सार्वभौम वयस्क मताधिकारः- समाज में विषमता पाई जाती है। सभी को लोकतन्त्र में राजनीतिक अधिकार दिये जाते हैं। जब तक समाज के हर वर्ग को मताधिकार नहीं मिलेगा तब तक वे अपने मताधिकार का प्रयोग नहीं कर पायेंगे। यही कारण है कि आधुनिक समय में सार्वभौम वयस्क मताधिकार दिया गया जिससे सभी स्त्री-पुरूष एवं कमजोर वर्ग के लोग अपने मतों का प्रयोग कर सकें।

3.मतदाता एवं जनप्रतिनिधियों में घनिष्ठ सम्बन्धः- आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक है कि मतदाता एवं प्रतिनिधियों में घनिष्ठ सम्बन्ध हो। यह घनिष्ठ मतदाताओं को जागृत करता है तथा जनप्रतिनिधियों को अंकुश में रखता है। वे जनप्रतिनिधियों को उनके कर्तव्यों के प्रति सचेत करते हैं। इसके लिये एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों को अपना कर पूर्ति की जा सकती है।

4.अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्वः- समाज में अनेक जाति, धर्म के लोग होते हैं। लोकतन्त्र में सभी की सहभागिता आवश्यक है। समाज में वर्ग विशेष की आबादी कम भी होती है। अतः ऐसे भी बहुमत आधारित चुनाव प्रक्रिया में यह असफल हो जाते हैं। अतः उनकों पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयास आवश्यक है। इन प्रयासों में उव वर्ग का मनोनयन, आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली अच्छे विकल्प हो सकते हैं।

5.जनसंख्या आधारित छोटे निर्वाचन क्षेत्रः- आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक है जनसंख्या आधारित छोटे निर्वाचन क्षेत्र होने चाहिए। इससे जन प्रतिनिधि अपने क्षेत्र विशेष के प्रति अपने कर्तव्यों को कर पायेंगे। वे क्षेत्र विशेष की समस्याओं को दूर कर क्षेत्र की जनता के हितों की रक्षा कर सकेंगे। यहीं प्रतिनिध्यात्मक लोकतन्त्र की मूल मंशा है। अतः कहा जा सकता है कि छोटे निर्वाचन क्षेत्र आदर्श प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक है।

6.प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष निर्वाचन का उचित संतुलनः- प्रत्यक्ष निर्वाचन व्यवस्था प्रजातन्त्र की धारणा के अनुकूल है। आधुनिक समय के विशाल राष्ट्रों के कारण प्रत्यक्ष निर्वाचन सम्भव नहीं है। कतिपय यही कारण है कि अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र को अपनाया गया है। साथ ही कुछ पदों पर जहाँ प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व हो सकता है। वहाँ पर प्रत्यक्ष निर्वाचन भी अपनाया गया है। भारत में ये दोनों गुण मिलते हैं। जहाँ लोकसभा के चुनाव में जनता सीधे (प्रत्यक्ष) रूप में भाग लेती है। वहीं राष्ट्रपति एवं राज्यसभा में अप्रत्यक्ष (परोक्ष) रूप से भाग लेती है।

अभ्यास के प्रश्नः-

1.'मतों को गिनना नहीं तोलना चाहिए' यह कथन है।

अ फाइनर ब लावेल स रेन द लास्की

2.'सामान्य व्यक्ति को मताधिकार देने से पूर्व उसे शिक्षित, करना चाहिए' यह कथन है-
अ ग्रीन ब मैकाइवर स बेथम द मिल
3.निम्न में से कौन व्यवसायिक प्रतिनिधित्व सिद्धान्त का समर्थक है-
अ कोल ब मैरियट स हेयर द सभी
4.अच्छे प्रतिनिधित्व के लिये क्या आवश्यक नहीं है-
अ सार्वभौम व्यस्क मताधिकार ब प्रादेशिक प्रतिनिधित्व स खुला मतदान
द अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व
5.निम्न में से कौन सा अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त है-
अ आनुपातिक प्रतिनिधित्व ब सूची प्रणाली स वैकल्पिक प्रणाली द सभी

11.**18 सारांशः-**

आधुनिक समय में दुनिया में प्रतिनिधित्व लोकतन्त्र पाया जाता है। राज्यों का आकार एवं आबादी इतनी अधिक है कि सभी नागरिक शासन संचालन की प्रक्रिया में भाग नहीं ले सकते है। ऐसे में नागरिक समाज से उनके प्रतिनिधि ही विधि निर्माण एवं शासन की क्रिया में भाग लेते है। जनता अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन संचालन का कार्य करती है। सामान्यतः आमचुनाव में विधानिक के सदस्यों अथवा जनप्रतिनिधियों का निर्वाचन जनता करती है। जनता के प्रतिनिधियों द्वारा शासन संचालन की व्यवस्था को प्रतिनिधित्व कहा जाता है। आज राज्यों के बड़े आकार एवं विशाल जनसंख्या के अतिरिक्त सामान्य जनता विधि निर्माण एवं शासन संचालन एवं विधि निर्माण में असमर्थ होती है। इसके अतिरिक्त शासन एवं विधि निर्माण कार्य की जटिलता सामान्य नागरिकों के समथर्न एवं समझ से परे होती है। कतिपय इन्हीं कारणों से प्रतिनिधित्व की आवश्यकता होती है। प्राचीन राजतन्त्रात्मक युग में प्रतिनिधित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। मध्ययुग में इसके संकेत मिलने प्रारम्भ हो गये थे। जे0ए0कारी के शब्दों में -'' चर्च के धार्मिक प्रतिनिधियों के एकत्र होने के साथ ही प्रतिनिधित्व का श्रीगणेश हुआ। ब्रिटेनमेंनये कर लगाने के लिये प्रजा की राय जानने से प्रतिनिधियों का राजदरबार में आमन्त्रित करने की परम्परा ने प्रतिनिधित्व का मजबूत एवं स्थायी बना दिया। ब्रिटेन में प्रतिनिधित्व समय के साथ स्थायी एवं व्यापक हो गया। आगे जाकर यह परम्परा वहाँ संसदीय शासन एवं द्वि सदनात्मक विधायिका (हाउस ऑफ कामन्स एवं हाउस आफ लार्डस) के उदय तथा प्रधानमंत्री के नेतृत्व की जनक बन गई। आगे जाकर यूरोप के फ्रांस में इस्टेटस जनरल, जर्मनी में डाइट, स्पेन में कटिस का जन्म इसी आधार पर हुआ।

11.19 शब्दावलीः-

साम्प्रदायिक निर्वाचनः- यह अंग्रेजों द्वारा 1909 में मुस्लिम तुष्टिकरण हेतु भारत मं लायी गयी व्यवस्था थी जिसमें उनके लिये पृथक निर्वाचन क्षेत्र बनाया गया था।

गैरीमेंडरिंगः- एकल सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र में पायी जाने वाली बुराई है। इसमें सत्तारूढ़ दल अपने हितों के अनुरूप निर्वाचन क्षेत्र में बदलाव करता है। यह अमेरिकामेंबहुत प्रचालित है।

प्रत्यक्ष प्रजातन्त्रः- नागरिकों के द्वारा सीधे तौर पर विधि निर्माण एवं शासन के कार्य में भाग लेना ही प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र है। आज भी स्विटरजरलैण्ड के कुछ कैटंन (राज्यों) में प्रचलित है।

11.23 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:-

1.स,2.द,3.अ,4.स,5.द

11.21 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1.सिंहल एस0सी0, तुलनात्मक राजनीति

2.प्रसाद मणि शंकर, तुलनात्मक राजनीति

3.जौहरी जे0सी0, जौहरी सीमा, आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त

4.मल्ल वी0पी0, राजनीति विज्ञान

5.गाबा,ओ0पी0, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा

11.13 सहायक एवं उपयोगी पाठ्य सामग्री -

1.गेना सी0वी0, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थायें

2.सोडारे माइकल, कम्परेटिव पालिटिक्स

3.खन्ना वी0एन0, आधुनिक सरकारें

4.संधू ज्ञान सिंह, राजनीति सिद्धान्त

11.24 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1.प्रतिनिधित्व से आप क्या समझते है ? इसके प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिये।

2.प्रतिनिधित्व का अर्थ एवं उत्पति स्पष्ट कीजिये तथा व्यवसायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।

3.अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देने वाली प्रणलियों की व्याख्या कीजिये।

4.आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली से क्या समझते है ? इसके गुण दोष की व्याख्या कीजिये।

5.सार्वभौम व्यस्क मताधिकार पर निबन्ध लिखिये।

इकाई 12 : राजनीतिक अभिजन

इकाई सरंचना

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 राजनीतिक अभिजन का अर्थ एवं परिभाषायें
12.4 अभिजन की विशेषतायें
12.5 अभिजन के प्रकार
12.6 पैरटो का अभिजन संचरण सिद्धान्त
12.7 मोस्का के अभिजन संबंध विचार
12.8 पैरटो एवं मोस्का के विचारों में अंतर
12.9 मिचेल्स के अभिजन संबंध विचार
12.10 सी0 राइट मिल्स के अभिजन संबंध विचार
12.11 जेम्स बर्नहम के अभिजन संबंध विचार
12.12 अभिजन एवं लोकतंत्र
12.13 अभिजन का परिसंचरण एवं प्रजातन्त्र
12.14 फाइनर का अभिजन संचरण का सिद्धान्त
12.15 राजनीतिक अभिजन एवं समाजवाद
12.16 विकासशील देशों में अभिजन
12.17 मूल्याकंन
12.18 सारांश
12.19 शब्दावली
12.20 अभ्यास के प्रश्न
12.21 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.22 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर
12.23 सहायक एवं उपयोगी सामग्री
12.24 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना-

लोकतन्त्र का प्रचलित (शास्त्रीय) उदारवादी सिद्धान्त बीसवीं शताब्दी तक लोकप्रिय रहा। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध एवं इक्कीसवीं शताब्दी के पूर्वाध में लोकतन्त्र का नया उदारवादी सिद्धान्त प्रकाश में आया जिसे अभिजन सिद्धान्त कहा जाता है। यद्यपि अभिजन सिद्धान्त का बीज यूनानी चिन्तनों प्लेटों, अरस्तू के विचारों में पहले से ही दिखाई पड़ते हैं। इस संबंधमेंएस0पी0 वर्मा का कथन उल्लेखनीय है- ''राजनीतिक अभिजन सिद्धान्त का विकास 1950 के दशक में अमेरिका में सुम्पीटर जैसे अर्थशास्त्री, लासबेल जैसे राजनीतिशास्त्री , सी0 राइट मिल्स जैसे समाजशास्त्री द्वारा विभिन्न रूपों में की गई। इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में पैरेटो, मोसका, रार्बट मिचल्स और जार्ज अर्टिगा की विभिन्न कालखण्डों में महती भूमिका रही।

यह सिद्धान्त यह मानता है कि प्रत्येक समाज में एक अल्पसंख्यक वर्ग होता है जो प्रभावी ढ़ग से शासन करता है। इनकी मान्यता है कि प्रत्येक शासन शासक एवं शासित में बंटा होता है। यह सिद्धान्त मानता है कि कूछ चुने लोग अथवा श्रेष्ठ, विशिष्ठ लोग राजनीतिक शक्ति एवं प्रभाव के स्वामी सदैव बने रहते हैं। इस संबंध में डगलस वर्ने का कथन उल्लेखनीय है- ''कोई भी राजसत्ता अपने आपको प्रजातान्त्रिक बतलाने की चाहे कितनी भी चेष्ठा क्यों न करे उसके संगठन में वर्गवादी तत्व सदैव विद्यमान रहते हैं। व्यक्ति सोच सकते है कि वे राजनीतिक प्रक्रिया में भाग ले रहे है, लेकिन वास्तव में उनका प्रभाव चुनाव तक ही सीमित रहता है। सत्ता के केन्द्र में एक सामाजिक विशिष्ठ वर्ग होता है जो महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।'' यह सिद्धान्त लोकतन्त्र के शास्त्रीय सिद्धान्त को अस्वीकार करता है जिसमें माना जाता है कि सरकार निर्माण शासन, संचालन में आम लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। वास्तव में यह कुछ संभ्रात अथवा विशिष्ट लोगों का बहुसंख्यक लोगों पर शासन है। डूवर्जर के शब्दों में- ''प्रजातन्त्र केवल सिद्धान्त में लोगों का शासन है व्यवहार में यह लोगों में से उभरे संभ्रात वर्ग का शासन है।'' यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है निर्णय लेने की क्षमता थोड़े लोगों के पास रहती है। यह थोड़े से लोग देश की राजनीतिक प्रक्रिया में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। सभी आमलोग युद्ध, संधि, क्रान्ति तथा संसदीय वाद-विवाद आदि संभ्रातों द्वारा प्रभावित एवं संचालित होते हैं। लोकतन्त्र का विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त प्रजातन्त्र एवं कुलीन तंत्र के शास्त्रीय सिद्धान्त का अद्भुत मिश्रण है। यह सिद्धान्त लोकतन्त्र के इस तत्व को कि सत्ता का निवास लोगों में है तथा कुलीनतंत्र के इस तत्व को कि सत्ता कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रित होती है, को मिश्रित कर देता है। लोकतन्त्र का शास्त्रीय (प्राचीन) सिद्धान्त जहाँ शासन सत्ता, निर्वाचन आदि में लोगों (आमजन) की भागीदारी को स्वीकार करता है। वही विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त सत्ता के वितरण में विशिष्ट वर्ग एवं संभ्रात वर्ग, बुद्धिमान, धनी, चतुर, सक्षम लोगों को भागीदार मानता है। प्रजातन्त्र का शास्त्रीय सिद्धान्त जहाँ यह मानता है कि सार्वजनिक नीति विस्तृत एवं अनौपचारिक विचार विमर्श से उत्पन्न होती है। वही विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त मानता है कि यह न तो

संभव है और न ही वांछनीय है। विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त प्रजातन्त्र के शास्त्रीय सिद्धान्त के आदर्शवादी सिद्धान्त को न केवल शंका से देखते हैवरनउस पर प्रहार करते हैं। वे मानते है कि निर्वाध निर्माण की प्रक्रिया में यथा संभव अधिक से अधिक लोगों की भागीदारी उचित नहीं होगी। इसके परिणाम भयंकर होंगें। इससे चूर्त नेतृत्व का उदय, चापलूस संस्कृति का उदय, भीड़ का दमनपूर्ण व्यवहार, आदि पनपने की प्रबल संभावना सदैव बनी रहेगी। विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त यह मानता है कि लोकतन्त्र के प्राचीन सिद्धान्त को व्यवहार में तो लागू नहीं किया जा सकता। यह इसे एक काल्पनिक एवं अव्यवहारिक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करते है।

12.2 उद्देश्यः-

इस इकाई के निम्न उद्देश्य हैः-

- अभिजन सिद्धान्त का अर्थ एवं विशेषताओं को जानना।
- पैरेटो एवं मोस्का के अभिजन सिद्धान्त को समझना।
- अभिजनों के प्रकार तथा समाज में उनके महत्व को समझना।
- राजनीतिक अभिजनों में परिवर्तन की प्रक्रिया को समझना।
- राजनीतिक अभिजन एवं लोकतन्त्र के संबंध को समझना।
- फाईनर के अभिजन संचरण मॉडल को समझना।

12.3 राजनीतिक अभिजन का अर्थ एवं परिभाषाः-

राजनीतिक अभिजन अथवा विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त के बीज यूनानी चिन्तन में प्लेटो एवं अरस्तू के विचारों में ही दिखायी पड़ते हैं। ये दोनों ही विद्वान यह स्वीकार करते थे कि शासन की कला एवं क्षमता सभी के पास नहीं होती है। अतः शासन का अधिकार केवल योग्य लोगों के पास होना चाहिए। अरस्तू के शब्दों में - ''समाज में कुछ लोग शासन करने के लिये पैदा हुए है तथा कुछ लोग शासित होने के लिये पैदा हुए है।'' विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त विशिष्ट वर्ग (श्रेष्ठवर्ग) को महत्वपूर्ण भूमिका देने का पक्षधर है। राजनीतिक अभिजन सीमित अर्थवाली धारणा है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले लोग शामिल नहीं होते हैं। राजनीति अभिजन वह है जो राजनीतिक व्यवस्था के संचालन और निर्णय निर्माण में सहभागी होते हैं। कतिपय यह कारण है। कि कुछ लोगों ने राजनीतिक अभिजन को निर्णय निर्माण एवं राजनीतिक व्यवस्था के लिये निर्णयकर्ता कहा।

अभिजन शब्द अंग्रेजी में Elite कहा जाता है जिसे लैटिन भाषा के शब्द Elgcne से लिया गया है। इसका अर्थ होता है पसंद द्वारा चुनाव (Selection by choice)होता है। अंग्रेजी में Eligcne अर्थ नेतृत्व से लिया जाता है। इसका प्रयोग आगे जाकर 'विशिष्ट' अर्थों में किया गया। पैरेटो ने जहाँ इसे 'शासक अभिजन', मोस्का ने 'शासक वर्ग', राबर्ट डॉल ने इसे शासक अभिजन कहा है। अभिजन शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 17 वीं शताब्दी में विशेष, श्रेष्ठ संदर्भों में किया गया। बाद में इसका प्रयोग उच्च, श्रेष्ठ, कुलीन वर्गों के लिये किया जाना लगा। इस सिद्धान्त को स्थापित करने में एच0डी0लासवैल, मोस्का, पैरेटो, जेम्स बर्नहम, रार्बट डाल, मिचेल्स, सार्टोरी, सी0 राइटमिल्स, वॉटमोर, मैनहाइम तथा शुम्पीटर आदि का महत्वपूर्ण योगदार रहा। राजनीतिक अभिजन की परिभाषा अनेक विद्वानों ने इस प्रकार की है-

सी0 राइट मिल्स के शब्दों में- ''हम शक्ति अभिजन की व्याख्या शक्ति के साधन के रूप में कर सकते हैं। शक्ति अभिजन वह है जो आदेश देने वाले पदों को धारण करते है।''

पैरेटो के शब्दो में- ''वे व्यक्ति जो अपने कार्यक्षेत्र के अर्न्तगत सबसे अधिक उच्च श्रेणी पर हैं वे ही अभिजन हैं।''

लासवैल के शब्दों मे- ''एक राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति को धारण करने वाला वर्ग ही राजनीतिक अभिजन होता है। शक्ति धारण करने वाले वर्ग में नेतृत्व करने वाला वर्ग तथा वह सामाजिक समुदाय आते हैं जिसमें ये यह वर्ग आता है जिसके प्रति एक निर्दिष्ट समय में यह उत्तरदायी होता है।''

रार्बट ए डॉल के शब्दों में- ''प्रत्येक राजव्यवस्था में अभिजन का एकीकृत अल्पसंख्यक समुदाय अस्तित्व में होता है जो शासकीय नीतियों, नियमों तथा उस समाज से समूह अन्य सभी राजनीतिक विषयों पर अपना प्रभाव डालता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अभिजन एक संगठित अल्पसंख्यक समूह होता है। यह अपनी क्षमता, सामर्थय से बहुसंख्यक समाज पर शासन करता है। ये ऐसा समूह होता है जो राजनीतिक रूप से बहुत प्रभावशाली होता है। शासन का संचालन हर स्थिति में इन्हीं के द्वारा किया जाता है। नीतियों का निर्माण करना, उनका क्रियान्वयन करना इस लघु समूह के द्वारा ही किया जाता है। ये अपने प्रभाव, प्रभाव के द्वारा राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

12.4 अभिजन की विशेषतायें-

अभिजन समाज में वह समूह होता है जो समाज का नेतृत्व करता है। ये संख्या में कम होते हैं परन्तु इनकी प्रभाव क्षमता बहुत व्यापक होती है। यह सुविधा एवं विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग होता है। इनके हित समाज से अलग होते हैं। अभिजन की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैः-

1.अल्पसंख्यक उच्चवर्ग:- ये शासन में सदैव प्रभावी रहते हैं। संख्या बल में कम होने के बावजूद इस अल्पंसख्यक समूह का शासन में महत्वपूर्ण स्थान होता है। सम्पूर्ण शासन व्यवस्था तथा उसका क्रियान्वयन सदैव इनके हाथ में ही रहता है। ये संख्या में कम होने के बावजूद अपने प्रभाव, पैसे से

सघन प्रचार अभियान चलाकर जनमत को अपने पास में करने का प्रयास करते हैं। ये किसी न किसी प्रकार से अपनी उच्च स्थिति को बनाये रखते हैं।

2.अलग हितों की अभिवृद्धि:- अभिजन के हित सदैव जनसामान्य के हितों से भिन्न होते हैं। ये सदैव अपने हितों की पूर्ति के लिये सजग रहते हैं। ये जनसामान्य के हितों के प्रति संवेदनशीलता प्रदर्शित करते हैं परन्तु उनके हितों के विपरीत अपने हितों के संवर्धन में सक्रिय रहते हैं। संख्या बल में कमी के बावजूद अपने प्रभाव, पैसे, सघन प्रचारतंत्र के बलबूते आमजन में अपनी मौजूदगी बनाये रखते हैं।

3.बहुमत का निष्क्रिय एवं प्रभावहीन होनाः- अभिजन वर्ग जो संख्यामेंबेहद कम होता है वह सदैव सक्रिय एवं प्रभावशाली रहता है। बहुमत शासन संचालन, विधि निर्माण के कार्य में न तो सक्रिय रहता है और न ही इस पर नियन्त्रण रख पाता है। वे अपनी श्रेष्ठता एवं प्रभाव को बनाये रखने के लिये इस प्रकार के साधन का प्रयोग करते हैं। इस हेतु वे अनैतिक एवं नैतिक तथा विधिक इस प्रकार के साधन का प्रयोग करते हैं। वे येन केन प्रकारणे बहुमत को प्रभावहीन बनाकर रखते हैं।

4.समाज में विशिष्ट स्थानः- अभिजन का समाजमेंविशिष्ट स्थान होता है। वे अपने स्थान, प्रभाव को लेकर बहुत सजग रहते हैं। वे निरन्तर अपने स्थान को बनाये रखने तथा प्रभाव को बढ़ाने को लेकर सक्रिय रहते हैं।

5.जनता के द्वारा निर्वाचनः- राजनीतिक अभिजन सदैव जनता के द्वारा निर्वाचित होता है। प्रत्येक देश की राजनीतिक व्यवस्था में यह समय अलग-अलग होता है। ये जनता की आंखों में धूल झोंककर उनका मत प्राप्त कर ही सत्ता प्राप्त करते हैं। वहीं से यह विशिष्ट बनते हैं। ये अपनी राजनीतिक छवि को लेकर बहुत संवेदनशील रहते हैं।

12.**5 अभिजन के प्रकार:-**

आधुनिक समय में कई तरह के अभिजनों का अस्तित्व समाज में पाया जाता है। ये आर्थिक अभिजन,राजनीतिकअभिजन, धार्मिक अभिजन, जातिगत अभिजन के रूप में पाये जाते हैं। पैरेटो ने अभिजन के दो रूप बताये हैं- अभिजन एवं अभिजनेतर। उसने अभिजन को दो भागों में बांटा हैः-

1.शासक अभिजनः- वह कहता है कि जो व्यक्ति शासन को नियन्त्रित सत्ता का उपभोग करता है वह शासक अभिजन कहलाता है। बाद के वर्षों में उनके अनुयायी एवं शिष्या मेरी कोलम्बिसका ने इसे चार भागों में बांटाः-

- कुलीन वर्गः- प्रत्येक समाज में एक उच्च वर्ग होता है जिसके पास विशेषाधिकार होता है, उसकी समाज में विशेष भूमिका होती है। यह कुलीन वर्ग कहलाता है।
- पूँजीपति वर्गः- यह पूँजीपति वर्ग भी शासक अभिजन का हिस्सा होता है। इसकी समाज में विशेष भूमिका होती है। इसकी धन अथवा पूँजी पर विशेष पकड़ होती है।

- सैनिक वर्गः- सैनिक वर्ग भी शासक अभिजन होता है। यह समाज एवं राज्यमेंविशेष एवं शक्तिशाली भूमिका रखता है। उसके समर्थन से ही शासक सत्ता में रहता है।
- धर्माधिकारी वर्गः- यह धर्म पर विशेष पकड़ रखने वालों का समूह होता है। यह धर्म का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इनका सम्मान शासक भी करते हैं। ये विशेष अधिकारों एवं सम्मान के स्वामी होते हैं।

2.अशासक अभिजनः- ये अपने आप में अलग वर्ग होता है। ये शासक तो नहीं होते हैं परन्तु शासन सत्ता में इनका प्रभाव होता है। यही कारण है कि ये जन सामान्य से अलग विशेष अधिकारों एवं सुविधायों को उपयोग करते हैं। इस वर्ग में डॉक्टर, शिक्षक, इंजीनियर, वकील आदि बुद्धिजीवी आते है।

अपने अध्ययन 'मस्तिष्क और समाज' (Mind and Society) में पैरेटो अशासक अभिजन की अपेक्षा शासक अभिजन को ज्यादा महत्वपूर्ण मानता है। वह बताता है कि यह वर्ग बल प्रयोग एवं चालाकी दोनों का प्रयोग कर शासन करता है। राजनीतिक सक्रियता के सभी पक्ष इनके नियन्त्रण में रहते हैं। राजनीतिक अभिजन में परिवर्तन होते रहते हैं। पुराने अभिजन भ्रष्ट हो समाप्त हो जाते हैं। उनके स्थान पर नये लोग आ जाते हैं। पैरेटों मानता है कि समाज का प्रत्येक अभिजन इस प्रक्रिया से अंततः नष्ट हो जाता है। उसका स्थान दूसरे लोग लेते हैं।

12.6 पैरेटो का अभिजन के परिसंचरण का सिद्धान्त;(Circulation of elite)-

पैरेटो ने अभिजन के परिसंचरण का सिद्धान्त दिया। उसने अपने सिद्धान्त में बताया कि अभिजन स्थायी नहीं होते हैं। अपने अयोग्यता, अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार के कारण अनेक लोग अविशिष्ट हो जाते है। ठीक इसी प्रकार कुछ सामान्य लोग अपने गुणों, योग्यता एवं क्षमता में वृद्धि कर अभिजन (राजनीतिक) बनने की ओर अग्रसर हो जाते है। वह मानता है कि यह परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यह परिवर्तन स्वचालित है। वह इसके साथ यह भी जोड़ता है कि यदि यह प्रक्रिया तेज गति से चलती है तो यह शासन के लिये एवं जनकल्याण के लिये हितकर रहती है। तीव्र परिवर्तन वाली व्यवस्था में कुशल एवं योग्य शासन का जन्म होता हैं यह स्वभाविक है कि पद से हटने का भय अभिजनों को पथ से विचलित नहीं होने देता और वे निरन्तर योग्यता एवं क्षमता के साथ जनकल्याण के कार्य में सक्रिय रहते हैं। पैरेटो का स्पष्ट मानना है कि यदि परिवर्तन की प्रक्रिया धीमी होती है तो भ्रष्टाचार और अयोग्य शासन का जन्म होता है जो जन सामान्य के लिये हितकर नहीं है। अयोग्य एवं भ्रष्ट शासक को हटाने के लिये अंततः क्रान्ति की आवश्यकता होती है। कतिपय ऐसे समय में जनता का नया रूप (सरकार बनाने एवं बिगाड़ने वाली) सामने आता है। जनता नये रूप में अभिजनमेंसमान व्यवहार करती है। पैरेटो का यह सिद्धान्त संघर्ष को स्वभाविक मानता है क्योंकि विशिष्ट वर्ग एवं सामान्य वर्ग के हित परस्पर विरोधी होते हैं अतः परस्पर संघर्ष के द्वारा संतुलन की

स्थापना होती है और भ्रष्ट शासन पर अंकुश लगता है। एक नये संवेदनशील एवं योग्य सरकार का जन्म होता है।

12.7 गीटानो मोस्का के राजनीतिक अभिजन संबंधी विचारः-

मोस्का का राजनीतिक अभिजन संबंध सिद्धान्त पैरेटो के सिद्धान्त से भिन्न है। मोस्का मानता है कि समाज दो वर्गों में विभाजित होता हैः- 1- शासक वर्ग 2- शासित वर्ग।

जो वर्ग शासन करता है वे अल्पसंख्यक अथवा सीमित संख्या में होते हैं। ये वर्ग संख्या में कम होने के बावजूद अपने विशेषाधिकारों की रक्षा के लिये सदैव संगठित रहता है। दूसरी तरफ शासित वर्ग होते हैं जो बहुसंख्यक होते हैं तथा अंसगठित होते हैं। वो मानता है कि इन दोनों वर्गों में सदैव परिवर्तन होता रहता है। वह मानता है कि शासित वर्ग अथवा साधारण वर्ग में तीव्र मतभेद रहते हैं। मोस्का अपनी पुस्तक The Rulling Class में कहता है- ''सभी प्रकार के समाजों में नितान्त अल्पविकसित या जिन्हें कठिनाई से सभ्य कहा जाता है, ऐसे समाज में पूर्णतया विकसित तथा अतिशक्तिशाली समाज तक में दो वर्ग प्रकट होते हैं- वह वर्ग जो शासन करता है वह वर्ग जिसपर शासन किया जाता है। शासक वर्ग संख्या में छोटा होता है, सभी राजनीतिक क्रियाकलापों को करता है तथा शासन सत्ता पर एकाधिकार कर लेता है तथा उससे प्राप्त सभी सुख सुविधाओं का उपभोग करता है। दूसरा वर्ग जो संख्या में बड़ा होता है शासक वर्ग द्वारा ऐसे ढ़ग से ऐसे निर्देशित तथा नियन्त्रित होता है जो कभी वैद्य तथा कभी स्वेच्छाचारी प्रतीत होता है। व्यवस्थित अल्पमत का संगठित बहुमत पर प्रभुत्व अपरिहार्य है।''

वह आगे स्पष्ट करता है कि प्रत्येक समाज में शासक वर्ग अपने को सत्ता में बनाये रखने के लिये नैतिक एवं कानूनी आधार खोज निकालने का प्रयत्न करता है और उन्हें इन सिद्धान्तों एवं विश्वासों के जो सामान्य रूप से मान्यता प्राप्त और स्वीकृति है तर्क संगत एवं आवश्यक परिणाम के रूप में प्रस्तुत करता है। इस शासक वर्ग की नीतियाँ चाहे वह स्वार्थवश ही क्यों न बनी हो, एक नैतिक एवं कानूनी आवरण के साथ रखी जाती हैं और एक निश्चित सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति करती है। मोस्का के शब्दों में - ''राजनीतिक नियन्त्रण को नेतृत्व एवं कार्यान्वित करने की की क्षमता में है।'' मोस्का की मान्यता थी कि राजनीतिक अभिजन की सदस्य संख्या समय के ससाथ घटती एवं बढ़ती रहती है। शासित वर्ग के लोग भी इसमें सम्मलित होते रहते हैं।

12.8 मोस्का एवं पैरैटो के विचारों में अंतरः

- दोनों ही विचारकों ने अभिजन सिद्धान्त की व्यापक व्याख्या की। दोनों ही समाज में दो वर्गों के अस्तित्व को स्वीकार करते थे। इनके बावजूद दोनों के विचारों में अंतर के मुख्य बिन्दु निम्न हैः-

1.पैरटो जहां दोनों वर्गों में अंतर परिवर्तन का आधार मनोवैज्ञानिक मानता है वहीं मोस्का परिवर्तन का कारण सामाजिकता को स्वीकार करता है।

2.पैरेटो की स्पष्ट मान्यता थी कि कोई भी अभिजन वर्ग का सदस्य स्वयं हटना नहीं चाहता है, वह तो हटाया जाता है। उसके शब्दों में - ''इतिहास शमशानों की भूमि है।'' मोस्का मानता है कि शासक वर्ग संगठन पर निर्भर करता है। संगठन की शक्ति, योग्याता के द्वारा विशिष्ट वर्ग का शासन चलता है।
3.पैरेटो विशिष्ट वर्ग में परिवर्तन के लिये क्रान्ति एवं संघर्ष पर बल देता है वही मोस्का परिवर्तन स्वभाविक एवं जरूरी मानता है। सामाजिकता के परिवेश में जब संगठन अपने आपको अनुकुल नहीं रख पाता है तब उस वातावरण में संगठन पर नेतृत्व वर्ग की पकड़ ढ़ीली हो जाती है तब परिवर्तन आता है। मोस्का की मान्यता थी कि परिवर्तन ''समझा बुझाकर'' होना चाहिए। किसी भी परिवर्तन के लिये हिंसा, क्रान्ति की आवश्यकता नहीं होती है। यह स्वभाविक रूप से शान्ति से संभव है।
4.पैरेटो के शब्दों में प्रत्येक समाज में शासक एवं शासित दो अलग वर्ग होते हैं। अतः प्रजातन्त्र और अन्य सरकारें सभी समान होती है। मोस्का इसके विपरीत प्रजातन्त्र एवं अन्य सरकारों में स्पष्ट अंतर करता है। वह मानता है कि शासक वर्ग तथा शासित वर्ग में क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है।

12.9 मिचेल्स के अभिजन संबंधी विचार:-

पैरेटो के बाद उसके शिष्य मिचेल्स ने अभिजन संबंधी विचार दिये। वह स्पष्ट रूप से मानता था कि आम जनता कभी भी अपनी अयोग्यता, अक्षमता के कारण शासन कार्यों , नीति निर्माण के योग्य नहीं होती। वह मानता था कि शासन करने वालों में सदैव परिवर्तन होता रहता है। वह भी शासन करने वालों के लिये 'अल्पतंत्र' शब्द का प्रयोग करता है। वह मानता था कि कोई लोकतान्त्रिक व्यवस्था वास्तव में दलीय व्यवस्था होती है। दल के ऊपर कुछ नेताओं का नियन्त्रण रहता है। ये नेता किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं रहते हैं। ये अभिजन (नेता) लोकतन्त्र में अपना अधिपत्य बनाये रखते हैं। वो आगे इसी से प्रेरित हो कर मिचेल्स ने ''अल्पतंत्र का लौह नियम'' का सिद्धान्त दिया। वह स्पष्ट करता है कि लोकतन्त्र में बहुमत का शासन नहीं होतावरनअल्पमत का शासन किसी न किसी रूप में बना रहता है। यह अल्पंसख्यक लोग अपनी योग्यता, क्षमता, प्रतिभा, मेधा से शासन में सदैव प्रभावी रहते हैं। वे सत्ता के संघर्ष में आगे निकलकर सदैव सत्ता को प्राप्त करने में सफल रहते हैं। सत्ता प्राप्ति की यह प्रक्रिया निरन्तर चलती है। यह नियम लोहे के समान अटूट एवं मजबूत है। मिचेल्स के शब्दों में- ''संगठन की चर्चा करना अल्पतन्त्र की प्रवृत्ति की चर्चा करना है। जनता के संदर्भ में संगठनतंत्र नेता की स्थिति अलग बना देता है। यह अल्पतंत्र का लौह नियम है।
मिचेल्स अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए लिखता है कि अधिकतर व्यक्ति स्वभाव से आलसी, उदासीन होते हैं। वे शासन कार्या को समझने तथा करने में असमर्थ होते हैं। ये झूठे, आश्वासनों एवं प्रसन्नता से सतुष्ट हो जाते हैं। वे अपने से योग्य लोगों के समक्ष विनम्र एवं आज्ञाकारी बने रहते हैं। ऐसे योग्य एवं क्षमतावान लोग बहुसंख्यक वर्ग की इस कमी का भरपूर फायदा उठाकर सत्ता को अपने जैसा बनाये रखने के लिये उनका समर्थन (वोट) प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं। इस हेतु वे उनकी प्रशंसा करने, सपने दिखाने, अनैतिक माध्यमों के प्रयोग आदि करने से भी परहेज नहीं रखते

हैं। मिचेल्स के शब्दों में- ''ये नेता एक बार सत्ता में आ जाते हैं तो कोई भी उन्हें शक्ति के शिखर से हटा नहीं सकता।''

संगठन के बिना आधुनिक युग में राजनीतिक दल परिणाम नहीं प्राप्त कर सकता है। यह लौह नियम ऐसा है जिससे किसी भी प्रगतिशील राजनीतिक दल का निकल पाना संभव नहीं है। सत्ता के शीर्ष पर बैठे व्यक्ति आसानी से सत्ता नहीं छोड़ते हैं। उन्हें सत्ता से अलग करना एक कठिन कार्य है। मिचेल्स के शब्दो में- ''इन्हें नियन्त्रित करने के लिये बनाये कानून भी कुछ समय बाद प्रभावहीन हो जाते हैं। नेताओं की शक्ति में किसी भी प्रकार की कमी नहीं होती है। उन्हें समय-समय पर क्रान्तियों के द्वारा ही हटाया जाता है। इससे भी विशेष अंतर नहीं पड़ता क्योंकि उनके स्थान पर नया शासक आ जाता है जो उतना ही निरकुंश होता है। सत्ता सदैव कुछ लोगों के हाथों में बनी रहती है। उनका प्रयोग मनमाने तरीके से होता है। इस प्रकार अभिजन (विशिष्ट) वर्ग सदैव सत्ता में बने रहते हैं। भोली-भाली जनता सदैव शासित होती रहती है।

12.10 सी0 राइट मिल्स के अभिजन संबंधी विचार:-

सी0 राइट मिल्स ने अभिजन संबंधी विचार प्रस्तुत किये। उसने 'शक्ति अभिजन' जैसी नई शब्दावली का प्रयोग किया। वह मानता था कि कुछ लोग समाज में शक्तिशाली पदों पर आसीन रहते हैं। वे उन्हें 'शक्ति अभिजन' संबोधित करता था। वह स्पष्ट करता था शक्ति अभिजन का आधार आर्थिक एवं सामाजिक होता है। आधुनिक समाज में शक्ति उन्हें संगठनों में केन्द्रित होती है जिनकी वृत्तरूपी समाज में केन्द्रीय स्थिति होती है और जो व्यक्ति इन संगठनों में शिखर पर होते हैं। ये शक्ति अभिजन ;च्वूमत म्सपजमद्ध कहलाते हैं।

मिल्स ने मोस्का के 'शासक वर्ग' के स्थान पर 'शक्ति अभिजन' शब्द देता है। वह स्पष्ट करता है कि वर्ग शब्द से आर्थिक शक्ति का मान होता है तथा शासक से राजनीतिक शक्ति का मान होता है। अतः आर्थिक वर्ग जो राजनीतिक रूप से शासन करता है। मिल्स अपने अभिजन संबंधी सिद्धान्त में व्यक्तियो के स्थान पर संस्थाओं को जोड़ता है। वह स्पष्ट करता है कि अब राजनीतिक शक्तियों का संस्थानीकरण हो चुका है। अब शक्ति व्यक्ति के स्थान पर संस्थाओं में केन्द्रित होती है। नागरिक अब संस्थानिक सत्ता का पालन करती है। इन सत्ताधारियों के चयन में जनता को पूरी छूट होती है। वह मानता है कि नेताओं में बदलाव संस्थाओं के ढाँचे में बदलाव कर ही किया जा सकता है। इनके संचालन में चुनाव महत्वपूर्ण होता है।

12.11 जेम्स बर्नहम के राजनीतिक अभिजन संबंधी विचार:-

जेम्स बर्नहम ने अपने 'प्रबन्धकीय क्रान्ति' नामक निबन्ध में अभिजन संबंधी विचार को मार्क्सवाद से जोड़ने का प्रयास किया। उनकी मान्यता थी कि वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था के स्थान पर आर्थिक सामाजिक व्यवस्था पर ऐसे थोड़े से व्यक्तियों का अधिपत्य होगा। यह थोड़े से व्यक्ति सम्पूर्ण शक्तियों के न केवल स्वामी होगेंवरनवे समाज का नेतृत्व भी प्रदान करेंगे। बर्नहम ने इन थोड़े व्यक्तियों के लिये 'प्रबन्धकीय अभिजन' शब्दावली का प्रयोग किया।

बर्नहाइम पहला अभिजनवादी विचारक था जिसने इस सिद्धान्त के साथ आर्थिक तत्व को जोड़ा। वह अपने सिद्धान्त में आगे स्पष्ट करता है कि समाज में नेतृत्व उसी के पास रहता है जो आर्थिक रूप से सबल होते हैं। वह कहता है कि पूँजीवादी व्यवस्था में आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियाँ घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती हैं। इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। वह कहता है कि अभिजन वर्ग का आधार 'आर्थिक शक्ति' है। वह सत्ता में आर्थिक तत्व को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानता है। वह अपने सिद्धान्त में 'नौकरशाही' को बहुत महत्वपूर्ण मानता है। उसकी मान्यता है कि यह शक्तिशाली नौकरशाही के साथ राजनीतिक अभिजन को जोड़ता है। इस अभिजन को वह टिकाऊ मानता है।

विभिन्न विचारकों के द्वारा विशिष्ट वर्ग के लिये तथा राजनीतिक अभिजन संबंधी विचार दिये। इन सभी विचारों से अभिजन सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। इनके विचारों में अंतर है परन्तु इस बात पर सभी सहमत है कि प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में शासन शक्ति केवल कुछ लोगों में रहती है। इस बात पर भी सभी सहमत दिखते हैं कि एक बार सत्ता में आने के बाद अभिजन सदैव अपनी स्थिति को बचाने अथवा सत्ता में बने रहने का प्रयास करते हैं। ये सभी विचारक इस बात पर भी सहमत दिखते हैं कि निर्णय लेने की क्षमता अन्तिम रूप से अभिजन के पास ही रहती है। पैरेटो, मोस्का, मिचेल्स, बर्नहाइम तथा मिल्स सभी अभिजन को विशिष्ट शासक वर्ग के रूप में मानते हैं। राजनीतिक अभिजन सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैः-

1.अभिजन, शक्ति और प्रभाव का प्रयोग इसलिये करते हैं क्योंकि इसमें कुछ विशेष गुण होते हैं जैसे प्रशासनिक क्षमता, बौद्धिक योग्यता आदि होते हैं।

2.प्रत्येक राजनीतिक सामाजिक व्यवस्था में अल्पसंख्यकों या व्यक्तियों के छोटे समूह का उदय होता है। वे महत्वपूर्ण पदों पर स्थापित होते हैं और निर्णय प्रक्रिया में सक्रिय रहते है।

3.राजनीतिक अभिजन सत्ता में रहते हुए जनसमर्थन से मुक्त रहते हैं।

4.वे समाज में शक्ति प्रयोग का वैध अधिकार रखते हैं। वे बिना भय एवं संकोच से अपनी इस शक्ति का प्रयोग करते हैं।

5.अपनी सत्ता को बचाये रखने के लिये अभिजन हर प्रकार के माध्यम जैसे झूठ, फरेब, हिंसा तथा अनैतिक माध्यमों का प्रयोग करने से नहीं हिचकिचाते।

6.अभिजन वर्ग सदैव साधारण वर्ग से अलग उच्च स्थिति में रहता है। वे विशेष स्थिति तथा विशेषाधिकार सम्पन्न होते हैं।

7.ये संख्या में कम होते हैं परन्तु सत्ता पर नियन्त्रण रखते हैं।

8.लोकतन्त्र में अभिजन वर्ग में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। यह अभिजन अथवा विशिष्ट वर्गों के बीच एक प्रतियोगिता होती है।

12.12 अभिजन तथा लोकतन्त्रः-

लोकतन्त्र का सामान्य अर्थ जनता का शासन होता है। लोकतन्त्र स्वतन्त्रता एवं समानता पर आधारित होता है। इस व्यवस्था में सरकार सदैव जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें कोई भी व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार कोई भी उच्च पद प्राप्त कर सकता है। मैन्हाइम 'लोकतन्त्र को खुली प्रतियोगिता' मानता है। शुम्पीटर के शब्दों में- ''लोकतन्त्र को राजनीतिक विनिश्चय कर लेने का एक संस्थापक समझौता है जिसमें राजनीतिक निर्णय लेने की शक्ति जनता के मत द्वारा प्राप्त कर प्रतियोगिता एवं संघर्ष माध्यम से प्राप्त करते हैं।

लोकतन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त का तात्पर्य राजनीतिक विशिष्ट वर्ग के शासन से है जो जनता के द्वारा निर्वाचित होते हैं। यहाँ जनता के द्वारा निर्वाचित व्यक्ति राजनीतिक अभिजन के रूप में शासन करते हैं। इनकी स्पष्ट मान्यता है कि राजनीतिक अभिजन के अभाव में लोकतन्त्र संभव हो ही नहीं सकता। लोकतन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त स्वतन्त्रता एवं खुली प्रतियोगिता में विश्वास रखते हैं। यह सिद्धान्त यह मानता है कि कोई भी व्यक्ति जिसके पास क्षमता होती है। योग्यता होती है वह अभिजन बन सकता है। लोकतन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त यह भी स्पष्ट करता है कि एक बार अभिजन बन सत्ता पर काबिज होने के बाद भी वे निश्चित नहीं रह सकते। यदि वे प्रतियोगिता में असफल होते हैं तो नये अभिजन के उदय की संभावना बनी रहती है।

उदारवादी लोकतन्त्र में बहुमत के आधार पर कुछ लोग (अल्पतंत्र) शासन सत्ता का प्रयोग करते हैं। जनता के विश्वास पर्यन्त ही वह सत्ता के शीर्ष पर आसीन हो 'राजनीतिक अभिजन' के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। उनके ऊपर बहुसंख्यक जनता के नियन्त्रण का दायित्व रहता है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। अल्पमंत्र द्वारा बहुसंख्यक समाज को नियन्त्रित किया जाता है। राजनीतिक नेतृत्व (अभिजन) ही प्रायः बहुसंख्यक जनता को नियन्त्रित करते हुए दिखायी पड़ते हैं। यह सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि 'जनता का शासन' एक भ्रम है, एक कपोल कल्पना तथा भ्रामक अवधारणा है। आरोन के शब्दों में- ''किसी भी समाज में शासन सत्ता कुछ लोगों के हाथ में रहने के अतिरिक्त अन्य लोगों के हाथों में रहना असम्भव है। जनता के लिये सरकार तो होती है, जनता द्वारा शासन नहीं होता है।''

राजनीतिक अभिजनवादी सिद्धान्त शास्त्रीय उदारवादी सिद्धान्त के अनुसार लोकतन्त्र में समानता के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते हैं। ये मानते है कि पूर्ण समानता न तो प्राकृतिक है और न ही व्यवहारिक ही है। वे कहते है कि शासक एवं शासितों के बीच, सत्ताधारियों, एवं शासितों के बीच समानता कोरी कल्पना है। वे स्पष्ट रूप से मानते है कि असमानता, योग्यता, कुशलता, ज्ञान प्रतिभा के कारण होती है। वे मानते है कि जनसाधारण में जटिल राजनीतिक समस्याओं को समझने की क्षमता आम लोगों में नहीं होती है। कतिपय यही कारण है कि यह कार्य स्वभाविक रूप ये अधिक क्षमतावान, योग्य, प्रतिभाशाली लोगों (अभिजन) के पास स्वभाविक रूप से पहुँच जाता है। मैन्हाइम के शब्दों में- ''वास्तविक रूप से नीतियों को अभिजन ही निर्धारित करते हैं परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि समाज लोकतान्त्रिक नहीं है। लोकतन्त्र के लिये यह पर्याप्त है कि प्रत्येक नागरिक के पास

निश्चित अवधि के बाद अपनी भावनाओं को महसूस कराने की सम्भावना तो है क्योंकि राजनीतिक अभिजन के शासनाधिकार प्राप्त करने के लिये जनता के मतों के लिये प्रतियोगिता करनी है क्योंकि विभिन्न प्रतिस्पर्धी अभिजन वर्गों में सत्ता प्राप्ति के लिये प्रतियोगिता जारी रहती है। अतः वे स्वमेव अंततः जनता के प्रति उत्तरदायी रहते हैं। यह सिद्धान्त अभिजन वर्ग के बीच निरन्तर चलने वाली प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता में विश्वास करता है। ब्राइस का मत उल्लेखनीय है- ''संभवतः किसी भी प्रकार के शासन को महान नेताओं की इतनी आवश्यकता नहीं होती है जितनी लोकतन्त्र को।'' लोकतन्त्र के लिये अभिजन अपरिहार्य है। सफल एवं प्रभावी लोकतन्त्र के लिये विशिष्ट वर्ग (अभिजन) बहुत आवश्यक है। डाई व जीगलर ने अपनी पुस्तक ''दि आमरनी ऑफ डेमोक्रेसी'' में स्पष्ट रूप से लिखा है कि लोकतन्त्र की यह विडम्बना है कि जनता का शासन होते हुए भी इसको बनाये रखने तथा कुशलता पूर्वक अपने लक्ष्य की ओर बढ़ाने के लिये विशिष्ट वर्ग (अभिजन) पर निर्भर रहना होता है। प्राचीन समय से आजतक के लोकतन्त्र का बारीक अध्ययन करने ये यह स्पष्ट होता है कि प्रजातन्त्रीय मूल्य जनता के द्वारा सुरक्षित नही रखे जातेवरनये अभिजनों के द्वारा ही सुरक्षित रखे जाते हैं। पीटर ब्राचाश ने अपनी पुस्तक ''दी थ्योरी ऑफ डेमोक्रेटिक एलिटिज्म'' में लिखा है- ''लोकतान्त्रिक खेल के नियमों को बनाये रखने का उत्तरदायित्व जनता के कंधों पर न होकर, अभिजनों के ऊपर होता है।''

12.13 अभिजन वर्ग का परिसंचरण और प्रजातन्त्रः-

प्रजातन्त्र में अभिजन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रजातन्त्र में अभिजनों के बीच स्वतन्त्र प्रतियोगिता निरन्तर चलती रहती है। जो व्यक्ति सत्ता प्राप्त करने में सफल होता है व निरन्तर उसे बनाये रखने तथा जनता के बीच लोकप्रियता बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील रहता है। मैन्हाइम इसे अवसर की समानता मानता है। इसमें समाज के विभिन्न स्तरों के व्यक्ति व्यक्तिगत गुणों के आधार पर उस वर्ग में निर्वाचन के माध्यम से सम्मिलित किये जाते हैं। इस संबंध में शुम्पीटर का कथन उल्लेखनीय है- ''वह राजनीतिक निर्णय लेने का ऐसा संघात्मक समझौता है, जिसमें व्यक्ति निर्णय करने की शक्ति को जनता का मत प्राप्त करके प्रतियोगितापूर्ण संघर्ष के माध्यम से प्राप्त करते है।'' पैरेटो ने सर्वप्रथम अभिजन वर्ग के परिसंचरण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने इसमें स्पष्ट किया कि यह संघर्ष अभिजन तथा सामान्य वर्ग के बीच निरन्तर चलता रहता है। इस परिसंचरण सिद्धान्त में प्रतियोगिता (प्रतिस्पर्धा) अनवरत चलती रहती है। अभिजन वर्ग में परिवर्तन इस प्रतियोगिता के कारण होता रहता है।

मोस्का ने अभिजन के परिसंचरण को वैधानिक शासन तक सीमित न रखकर परिसंचरण की गतिशीलता का भी अध्ययन किया। उसने अभिजन वर्ग के सदस्यों की बौद्धिक, नैतिक गुणों को उत्पन्न करने वाली सामाजिक परीस्थितियों एवं परम्पराओं का भी अध्ययन किया। मोस्का ने आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न नवीन समूहों एवं उनके शासन व्यवस्थाओं पर होने वाले प्रभावों का भी अध्ययन किया। उसने आगे यह भी स्थापित किया कि

केवल अभिजन ही व्यवस्था में परिवर्तन के लिये उत्तरदायी नहीं होते वरन अन्य समूहों, छोटे संगठनों की भी अपनी भूमिका होती है।

12.14 फाइनर का अभिजन संचरण का सिद्धान्तः-

फाइनर ने अभिजन संचरण की एक सटीक व्याख्या की। उसने अभिजन संचरण को एक स्वभाविक प्रक्रिया बताया जो निरन्तर चलती रहती है। राजनीतिक व्यवस्था में अभिजन अपनी स्थिति को बनाये रखने में प्रयत्नशील रहते हैं। वहीं दूसरी तरफ नये अभिजन उदयमान होने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। इसको सिद्ध करने के लिये उन्होंने 'फ्लास्क एवं संतरे' का मॉडल प्रस्तुत किया। इस मॉडल के द्वारा फाइनर ने सिद्ध किया कि लोकतन्त्र रूपी जल में राजनीतिक व्यवस्था पर कब्जा पाने के लिये अभिजन संघर्षशील रहते हैं। इसमें से कुछ उदयमान अभिजन राजनीतिक व्यवस्था तक पहुंचने का प्रयास करते हुए सफल होते हैं तथा कुछ अभिजन विस्थापित होते हैं तथा डूब जाते हैं। उदयमान अपनी क्षमता, योग्यता, प्रतिभा से ऊपर जाते हैं। प्रतिस्पर्धा के कारण जल में हलचल होती है और संतरे की स्थिति बदलने लगती है। जो पानी के ऊपर सत्ता (संतरे) पर आसीन थे वे प्रति अभिजन बनने लगते हैं। जो अपनी क्षमता खो देते हैं वे सतह (संतरे) से हटकर जल में डूबने लगते हैं। इस प्रकार लोकतन्त्र में केवल थोड़े लोग (समूह) ही सत्ता में बने रहते हैं। सत्ता में बने रहने के लिये इनमें संघर्ष चलता रहता है। सत्ता में वे ही रहते हैं जो योग्यता, प्रतिभा साबित करते हैं।

12.15 राजनीतिक अभिजन और समाजवादः-

लोकतन्त्र का आधार स्वतन्त्रता है जबकि समाजवाद का आधार समानता है। वे आर्थिक समानता पर अत्याधिक जोर देते हैं। यह समाजवादी विचार शोषण के विरूद्ध मजदूर वर्ग के संघर्ष एवं उनके द्वारा संगठित क्रान्ति के द्वारा व्यवस्था परिवर्तन पर बल देता है। मोस्का, पैरेटो तथा मिचल्स वर्ग विहीन समाज के विचार से सहमत नहीं है। वे समाजवाद में स्थापित सत्तारूढ़ समूह को अभिजन नहीं मानते। वे इसमें संघर्ष (प्रतिस्पर्धा) तथा परिवर्तन का अभाव देखते हैं। साम्यवादी राजनीतिक व्यवस्था पर रेमण्ड एरन का कथन प्रांसगिक है- ''यहाँ पर प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की अपेक्षा अल्पसंख्यक के पास निश्चित ही अधिक शक्ति है क्योंकि आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति उसमें समाहित है। राजनीतिक टे"ड यूनियन, समस्त संस्थायें, समस्त व्यक्तिगत समूह (व्यवसायिक समूह) वास्तव में अभिजन के प्रतिनिधियों द्वारा नियन्त्रित होते हैं। ''अभिजन सिद्धान्त के समर्थन मार्क्स के इस विचार को भी नकार देते हैं जिसमें मार्क्स मानता था कि समाज में केवल दो वर्ग होते हैं। इन दो वर्गों में निरन्तर संघर्ष चलता है। सभी घटनाओं के पीछे आर्थिक कारण होते हैं। अभिजनवादी समाज में अनेक वर्गों, समूहों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। इस संबंध में मैक्स बेबर कहता था- ''समस्त परिवर्तन आर्थिक कारणों से नहीं होते हैं। सामाजिक संरचनायें उत्पादन एवं तकनीक को प्रभावित करती है। वे ऐसे सिक्के के समान है जो सरलता से नहीं पिघलते हैं।''

12.16 विकासशील देशों में अभिजनः-

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दुनिया में साम्राज्यवादी शक्तियों का पराभाव प्रारम्भ हुआ और नये लोकतान्त्रिक देशों का उदय हुआ। नई राजनीतिक एवं शासन की व्यवस्था के साथ इन देशों में कुछ सामाजिक एवं राजनीतिक चुनौतियाँ भी सामने आइ। स्वतन्त्रता संघर्ष में तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक अभिजन की महती भूमिका थी तथा आजादी के बाद भी वे अपने पुराने गौरव के अनुरूप ही नई भूमिका तलाश रहे थे। इन नवोदित राष्ट्रों के अभिजन को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। एडवर्ड मिल्स ने इन देशों की सामस्याओं का व्यापक विश्लेषण करते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन की तीन अवस्थायें बतायी हैं। विकासशील अथवा नवोदित राष्ट्रों के अभिजनों के विभिन्न रूप हैं। शिल्स के अनुसार जहाँ उच्च बुद्धिजीवी विचार सृजन एवं समाज को मार्गदर्शन का कार्य करते हैं। मध्यम बुद्धिजीवी पत्रकारिता, अध्यापन, वकालत का कार्य करते हैं। समाज के समक्ष उत्पन्न नई चुनौतियों का समाधान भी इस अभिजन वर्ग से ही आता है। कतिपय यही कारण है कि किसी भी शासन व्यवस्था में अभिजन (विशिष्ट) वर्ग का विशेष महत्व होता है। उनके प्रभावी एवं कुशल नेतृत्व के बिना राष्ट्र निर्माण नहीं किया जा सकता है। एक सफल लोकतन्त्र के लिये विशिष्ट वर्ग में निम्न विशेषतायें आवश्यक हैः-

1.लोकतन्त्रीय मूल्यों तथा आदर्शों ने विशिष्ट वर्ग का विश्वास एवं आस्था।

2.विशिष्ट वर्ग का चयन समाज के विभिन्न वर्गों से होना चाहिए। इससे सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व एवं विश्वास विशिष्ट वर्ग में हो जायेगा।

3.प्रभावी शासन संचालन के लिये आवश्यक है कि जनता अनावश्यक अभिजन वर्ग के कार्यों एवं नीतियों में दखल न दें।

4.विशिष्ट वर्ग (अभिजन) का ज्ञान, योग्यता, तथा अनुभव उच्चकोटि का हो। जिससे वे जनसामान्य का सम्मान स्वयं अर्जित कर सके।

5.अभिजनों में सत्ता के लिये प्रतियोगिता हो तो उसका माध्यम चुनाव हो। चुनाव द्वारा ही अभिजनों को शासन का अवसर प्राप्त होना चाहिए।

6.अभिजन (विशिष्ट) वर्ग खुला एवं व्यापक होना चाहिए। इसमें सदैव योग्य एवं क्षमतावान व्यक्ति के प्रवेश का अवसर बना रहना चाहिए।

12.17 मूल्यांकनः-

पिछले कई दशकों से अमेरिका के व्यवहारवादियों तथा वैज्ञानिक आधार पर राजनीतिक प्रणाली का अध्ययन करने वालों ने राजनीतिक जीवन की वास्तविकता के आधार पर इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। आज व्यवहारिक आवश्यकताओं को देखते हुए लोकतन्त्र का विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही अनेक दोषों को समेटे हुए वर्तमान व्यवस्था को बनाये रखने का प्रतिक्रियावादी सिद्धान्त बन जाता है। प्रत्येक सिद्धान्त से यह आशा रखी जाती है कि वह केवल वास्तविकता का बयान ही नहीं करेवरनवास्तविक समस्याओं का आदर्शों , मूल्यों के अनुरूप समाधान प्रस्तुत करे । इस सिद्धान्त की आलोचना डंकन तथा ल्यूक्स, डेविस, वांटमोर, वे, गोल्ड

स्मिथ, वाकर वैकरैक, पेटसमैन, प्लामनाज आदि ने की। इन विद्वानों द्वारा की गयी आलोचना का मुख्य आधार निम्न हैः-

1.यह सिद्धान्त लोकतन्त्र से साधारण व्यक्ति को दूर करना चाहता है।

2.यह सिद्धान्त प्राचीन विशिष्ट वर्गीय व्यवस्था को बनाये रखना चाहता है अतः यह रूढ़िवादी सिद्धान्त है।

3.विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त वर्तमान व्यवस्था के साथ संतुलन स्थापित नहीं कर सकता। समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता से वर्ग संघर्ष जन्मता है। बिना उसे समाप्त किये सामंजस्य एवं सहयोग की कल्पना नहीं की जा सकती है।

4.यह सिद्धान्त लोकतन्त्र को केवल राजनीतिक व्यवस्था ही मानता है। यह आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था की अनदेखी करता है।

5.यह सिद्धान्त विचारधारा तथा मूल्यों को महत्वपूर्ण नहीं मानता है।

6.यह सिद्धान्त मानव को साधन तथा शासन को साध्य मानता है।

7.यह सिद्धान्त अभिजन (नेताओं) को विशेष महत्व देता है। यह आमलोगों को विशेष महत्व नहीं देता है।

8.यह सिद्धान्त जनमत की पूर्णतः अनदेखी करता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि जनमत का निर्माण अभिजन (विशिष्ट) वर्ग करता है।

9.यह सिद्धान्त समानता को न तो आवश्यक मानता है और न ही स्वभाविक मानता है।

10.विशिष्ट वर्ग में परिवर्तन का नियम देखने में ठीक दिखता है परन्तु व्यवहार में अव्यवहारिक लगता है क्योंकि कोई भी अपनी मजबूत स्थिति तथा विशेषाधिकार को आसानी से नहीं छोड़ता है।

11.विशिष्ट वर्ग की योग्यता, क्षमता का आधार अस्पष्ट है। इसके अतिरिक्त अन्य तत्व भी है जो व्यक्ति को समाज में मजबूत एँव प्रभावशाली बनाते हैं।

अभ्यास के प्रश्नः-

1निम्न में से कौन अभिजन सिद्धान्त के समर्थक है-

(अ) पैरेटो (ब) मोस्का (स) मिचेल्स (द) सभी

२.पैरेटो अभिजन को कितने भाग में बाँटता है-

(अ) 1 (ब) 2 (स) 3 (द) 4

3. The Power elite पुस्तक का लेख कौन है-

(अ) पैरेटो (ब) मोस्का (स) सी0 राइट मिल्स (द) मिचेल्स

4. 'The Rulling elite' पुस्तक का लेखक हैं-

(अ) मिचेल्स (ब) बर्नहाइम (स) लासवैल (द) कोई नहीं

5.यदि समानता से प्रजातन्त्र भ्रष्ट होता है तो अति समानता से यह नष्ट होता है- यह कथन है-

(अ) टेलर (ब) मॉटेस्क्यू (स) वोथा (द) वे

6.सी0 राइट मिल्स ने अभिजन के लिये शब्द प्रयोग किया -

(अ) शासक वर्ग (ब) शक्ति अभिजन (स) दोनों (द) कोई नहीं

12.18 सारांशः-

राजनीतिक अभिजन का सिद्धान्त एक लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। राजनीतिक अभिजन सिद्धान्त को कुछ आलोचना का सामना करना पड़ता है परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वास्तव में सत्ता में कुछ लोग ही प्रभावशाली होते हैं। एक बार सत्ता में काबिज होने के बाद वे निरन्तर अपनी मजबूत स्थिति को बनाये रखने के लिये प्रयासरत रहते हैं। वे कई बार इस हेतु गलत एवं अनैतिक माध्यमों का भी प्रयोग करने से किसी प्रकार का परहेज नहीं करते। यह भी सत्य लगता है कि विशिष्ट अथवा अभिजन वर्ग स्थायी नहीं होता है। इनकी स्थिति ने परिवर्तन समय के साथ होता रहता है। लोकतन्त्र का अभिजनवादी सिद्धान्त न केवल सत्ता में कुछ लोगों के प्रभाव को स्वीकार करता है।वरनअभिजन को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने की भी वकालत करता है। वे जनहित में अभिजन की शक्ति को स्वस्थ प्रतियोगिता तथा जनता के नियन्त्रण के द्वारा सीमित करने की बात करता है। वे विकेन्द्रित लोकतान्त्रिक संस्थाओं का जाल बिछाकर अभिजन शक्ति का समायोजन लोकतन्त्र की आवश्यकतानुसार करने का समर्थन करते हैं।

12.19 शब्दावलीः-

अभिजनः- इसका तात्पर्य है विशिष्ट। वह जो सामान्य लोगों से अलग शक्ति, पहचान एवं प्रभाव रखता हो अभिजन कहलाता है।

अल्पसंख्यकः- कम संख्या में पाये जाने वाले समूह को अल्पसंख्यक समूह या समुदाय कहा जाता है।

कुलीन वर्गः- यह प्राचीन व्यवस्था में पाया जाने वाला सम्पन्न एवं प्रभावी वर्ग होता था। इनका प्रभाव समाज, शासन, आर्थिक गतिविधियों में होता था।

पूँजीपति वर्गः- यह वह वर्ग था जो उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण रखता है। इनका नियन्त्रण उद्योंगों एवं व्यापार पर होता है। कार्ल मार्क्स इनके विरूद्ध क्रान्ति कर उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व स्थापित कर समानता स्थापित करना चाहता था।

12.21 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1.संधू ज्ञान सिंह, राजनीति सिद्धान्त

2.खन्ना वी0एन0, आधुनिक सरकारें

3.सिंघल एस0सी0, तुलनात्मक राजनीति

4.गाबा , ओ0पी0, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा

5.जौहरी, जे0सी0, जौहरी सीमा, आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त

12.22 अभ्यास के प्रश्नों के उत्तर

1.द,2.ब,3.स,4.स,5.ब,6.ब

12.14 सहायक एवं उपयोगी सामग्रीः-

1.सोडारो माइकल, कम्परेटिव पॉलिटिक्स
2.गेना सी0वी0, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थायें
3.गाबा , ओ0पी0, तुलनात्मक राजनीति की रूपरेखा
4.शुक्ला वी0 राजनीतिक सिद्धान्त
5.गाबा, ओ0पी0 समकालीन राजनीति सिद्धान्त

12.24 निबन्धात्मक प्रश्नः-

1.अभिजन की धारणा से क्या समझते है? इस सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।
2.राजनीतिक अभिजन क्या है? पैरेटो एवं मोस्का के विचारों का विश्लेषण कीजिये।
3.लोकतन्त्र के विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त पर निबन्ध लिखिये।
4.अभिजन वर्ग के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।

इकाई संख्या 13 : शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन

इकाई संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

13.4 शक्ति पृथक्करण की आवश्यकता

13.5 मांटेस्क्यू के शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का अर्थ एवं परिभाषा

13.6 शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का प्रभाव

13.7 शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त की आलोचना

13.8 अवरोध संतुलन सिद्धान्त का अर्थ

13.9 अमेरिका का अवरोध संतुलन

13.10 भारत में शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन

13.11 अवरोध संतुलन के प्रकार

13.12 अवरोध संतुलन सिद्धान्त की आलोचना

13.13 निष्कर्ष

13.14 सारांश

13.15 शब्दावली
13.16 अभ्यास के प्रश्न
13.17 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.18 सहायक उपयोगी सामग्री
13.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.20 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावनाः-

प्रस्तुत इकाई में हम शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन के सिद्धान्त का अध्ययन करेंगे। यह आधुनिक समय के सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों में से एक है। इस सिद्धान्त ने आधुनिक शासन व्यवस्था के लिये न केवल एक कसौटी का निर्माण कियावरननागरिक स्वतन्त्रता की सुरक्षा की गारण्टी प्रस्तुत की। मांटेस्क्यूने शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को व्यवस्थित ढ़ग से स्थापित किया। उनसे पूर्व यूनानी विचारक सिसरो, प्लेटो, अरस्तू के विचारों में इसके बीज दिखायी देते हैं। उनके बाद लाँक, ब्लैकस्टोन आदि ने इसे आगे बढ़ाया। अवरोध संतुलन का सिद्धान्त का उदय मुख्य रूप से शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त में उत्पन्न हो रही व्यवहारिक समास्याओं का हल प्रस्तुत करने के लिये हुआ। यह सिद्धान्त पूर्ण पृथक्करण के स्थान पर सरकार के अंगों के सुचारू संचालन के लिये सहयोग तथा नागरिक स्वतन्त्रता को बहाल रखने के लिये अंगों के द्वारा एक दूसरे को नियन्त्रित करने की व्यवस्था की गई। यह सरकार के अंगों के आपसी सहयोग एवं एक दूसरे को नियन्त्रित करने का आदर्श संतुलन पर आधारित सिद्धान्त है। इस इकाई में शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन सिद्धान्त के अर्थ, विशेषतायें, गुण-दोष एवं शासन पर प्रभाव का व्यापक विश्लेषण किया जायेगा।

13.2 उद्देश्यः-

इस इकाई का अध्ययन के उपरान्त हम-

- शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का अर्थ एवं प्रभाव को जान सकेंगे।
- शक्ति पृथक्करण का आधुनिक शासन व्यवस्था में महत्व को समझ सकेंगे।
- मांटेस्क्यूके शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का प्रभाव एवं उसकी प्रमुख आलोचनाओं का समझ सकेंगें।
- अवरोध संतुलन सिद्धान्त का अर्थ एवं उपयोगिता को समझ पायेंगें।
- आधुनिक समय में अवरोध संतुलन सिद्धान्त की विश्व की शासन व्यवस्थाओं में भूमिका का मूल्यांकन कर पायेंगे ।
- अमेरिका तथा भारत में शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन की समझ सकेंगें।

13.3 शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन

शक्ति पृथक्करण का अर्थ एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः-प्रारम्भ से ही राजनीति शास्त्र में शक्ति को लेकर राजवैज्ञानिकों में संशय एवं चिन्ता रहीं। वे सदैवराजनीतिकशक्ति के प्रयोग एवं प्रभाव को लेकर खेमो में बंधे रहे। राजनीतिक, संवैधानिक, शक्ति का प्रयोग किस प्रकार हो? उसका क्या प्रभाव नागरिकों की स्वतन्त्रता पर है? इन प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयास अद्यतन चल रहा है। मानव सदैव से ही राजनीतिक शक्ति के सदुपयोग के लिये एक के बाद दूसरी राजनीतिक व्यवस्था, संरचना का निर्माण करता रहा है। इन सबके बावजूद मानव ने आजतक ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की है जो शत् प्रतिशत राजनीतिक शक्ति के दुरूपयोग से बचाव की गारण्टी दे सके। राजनीतिक शक्तियों के दुरूपयोग से बचाव की अनेक व्यवस्थाओं एवं संस्थागत संरचनाओं का मूल आधार यह है कि शक्ति के प्रयोगकर्ताओं पर ऐसे नियन्त्रण लगाये जायें जिससे प्रयोगकर्ता इसका दुरूपयोग न कर पाये। लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक शक्ति का प्रयोग प्रायः कुछ लोगों के द्वारा किया जाता है। स्वेच्छाचारी अथवा तानाशाहीपूर्ण शासन व्यवस्था में निर्णय लेने एवं शक्ति प्रयोग का अधिकार एक व्यक्ति के हाथ में रहता है। अतः सत्ता के दुरूपयोग से बचाव के लिये इन्हीं निरकुंश शासकों से संबंधित होता है। इनको नियन्त्रित करने से समस्या का समाधान दिखाई पड़ता है। इनको नियन्त्रित करने के तरीके में एक तरीका सत्ता का संस्थाकरण करना है। दूसरे शब्दों में कहे तो शक्ति को व्यक्ति के स्थान पर संस्था में निहित करना है। इस प्रकार राजनीतिक शक्ति का विभाजन कर उसे विभिन्न संस्थाओं एवं व्यक्तियों में बांटकर प्रयोगकर्ता के मनमानेपन पर रोक लगाने का तरीका लंबे समय से चलन में है तथा सफल है। इस संबंध में जोसेफ ला पालोम्बरा का कथन उल्लेखनीय है- ''शक्तियों का पृथक्करण या विभाजन शक्तियों के मनमाने प्रयोग या इनके निरपेक्ष दुरूपयोग से कुछ सुरक्षा व्यवस्था के माध्यम के रूप में, मानव के सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक खोजों में से एक है।''

कतिपय यही कारण है कि राजनीतिक शक्तियों को विभाजित कर उसके प्रयोग को नियन्त्रित करने का प्रयत्न रोमन व्यवस्था में दिखता है। इस संबंधमेंकार्ल जे0 फ्रेडरिक ने अपनी पुस्तक ''कॉस्टीट्यूशनल गर्वनमेट एण्ड डेमोक्रेसी'' में स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया है-'' आधुनिक राजनीतिक व्यवस्थाओं की पेचीदगियों एवं राज्य शक्ति के नियन्त्रण के अनौपचारिक उपकरणों के विकास के बावजूद शक्ति विभाजन एवं शक्ति पृथक्करण आज भी एवं संविधानवाद की एक मात्र पक्की गारण्टी है।''

शक्ति पृथक्करण से शक्ति नियन्त्रित करने का चलन केवल आधुनिक लोकतन्त्रों की विशेषता नहीं है। कम लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं अथवा तानाशाहीपूर्ण शासन व्यवस्थाओं में भी तानाशाह अपनी शक्ति सुरक्षा के लिये शक्ति बँटवारे अथव शक्ति वितरण के माध्यम से ठोस नियन्त्रण व्यवस्था स्थापित कर अपने अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति या गुट को शक्ति के दुरूपयोग करने से रोके रखता है। इस प्रकार स्पष्ट है शक्ति के दुरूपयोग से बचाव के लिये शक्ति नियन्त्रण की सुव्यवस्था शक्ति पृथक्करण द्वारा प्राचीन काल से ही चलनमेंहै।

शक्ति के दुरूपयोग रोकने के लिये शक्ति का संस्थानीकरण तथा उसके बँटवारे का चलन प्राचीन समय से चला आ रहा है। शक्तियों का संस्थाकरण करना वास्तव में शक्तियों का संविधान द्वारा अथवा विधि द्वारा नियन्त्रित करना है। संविधान द्वारा सरकार की स्थापना ही अपने आप में शक्ति नियन्त्रण की व्यवस्था बन जाती है। संविधान द्वारा शक्तियों को दो प्रकार से नियन्त्रित किया जाता हे। प्रथम विधि द्वारा शक्तियों का कार्यात्मक विभाजन किया जाता है। दूसरा विधि द्वारा राज्य की शक्तियों का प्रादेशिक एवं भौगोलिक विभाजन किया जाता है। सरल शब्दों में कहें तो शक्तियों का कार्यात्मक विभाजन ही शक्ति पृथक्करण है। राज्य शक्ति का भौगोलिक विभाजन संघात्मक व्यवस्थाओं में दिखाई पड़ता है। दोनों ही के द्वारा शक्ति को एक स्थान पर केन्द्रित नहीं होने दिया जाता है। इससे शक्ति के दुरूपयोग की संभावना कम हो जाती है।

मानव इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण है कि शक्ति को शक्ति के द्वारा ही नियन्त्रित किया जाता रहा है। शक्ति को नियन्त्रित करने के लिये आवश्यक है कि उसको नियन्त्रित करने वाली संस्था भी उतनी शक्तिशाली एवं प्रभावशाली हो। अतः राजनीतिक शक्तियों के दुरूपयोग को रोकने के लिये, उनको नियन्त्रित करने की व्यवस्था शासन शक्तियों को पृथक करके की जाती है। इसके निम्नलिखित निहितार्थ होते हैः-

1.शक्ति, शक्ति द्वारा संतुलित हो जाती है।

2.शक्ति ही शक्ति की नियन्त्रक बन जाती है।

3.शक्ति केवल अपने अधिकार क्षेत्र में सीमित रहती है।

4.शक्ति दूसरे अंगों के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण करने असमर्थ हो जाती है।

5.सारे शक्ति (अंग) समान हो जाते है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि राज्य शक्ति की अभिव्यक्ति साधारणतया तीन रूपों में होती है। राज्य शक्ति का एक पहलू राज्य की इच्छा से सम्बन्धित होता है। इसकी अभिव्यक्ति के लिये संस्थागत संरचना को ही विधानमण्डल (विधायिका) कहते हैं। व्यवस्थापिका ही विधान बनाकर राज्य की इच्छा की अभिव्यक्ति करती है। यह राज्य शक्ति की व्यवहारिक अभिव्यक्ति की संस्था है। राज्य शक्ति की इच्छा को कार्यरूप देने (Execute)वाली संरचनात्मक व्यवस्था राजशक्ति का दूसरा भाग अर्थात् कार्यपालिका होती है। राजशक्ति का तीसरा भाग विधियों को क्रियान्वित करने, उसे लागू करने से संबंधित होता है जिसे न्यायपालिका के नाम से जाना जाता है। व्यवस्थापिका द्वारा बनाये विधियों को कार्यपालिका के द्वारा क्रियान्वित नीतियों का पालन सही प्रकार से हो रहा है अथवा नहीं, इसका निर्धारण करने का दायित्व न्यायपालिका का होता है। न्यायपालिका ही तय करती है कि कानून संविधान अथवा विधि के अनुरूप है अथवा नहीं। इस संबंध में उसका फैसला अंतिम होता है। इस प्रकार से स्पष्ट है कि कानून बनाने का कार्य व्यवस्थापिका का है, उसे लागू करने का कार्य कार्यपालिका का है तथा कानून को लागू होने में आ रही बाधाओं को रोकने का दायित्व न्यायपालिका का है। ये तीनों ही सरकार के तीन अंग हैं।

ये तीनों अंगों को लंबे समयसे अलग-अलग स्वीकार किया जाता है। कुछ विद्वानों का यहाँ तक मानना है कि शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त उतना ही प्राचीन है जितना ''राज्य'' नामक संस्था है। यह कथन पूर्णतः सही प्रतीक नहीं होता है। यह जरूर सत्य है कि प्राचीन काल से यूनानी चिन्तन में राज्य के तीन अंगों को पृथक मान लिया गया था। प्लेटो ने अपनी पुस्तक ''लांज'' में मिश्रित राज्य का विचार प्रतिपदित किया। ''अरस्तू'' ने और आगे बढ़कर सरकार को असेम्बली, मजिस्ट्रेट तथा जुडीशियरी नामक तीन भागों में बांटा था। अरस्तू ने सर्वप्रथम सरकार के वैधानिक, प्रशासनिक तथा न्यायिक रूप का संकेत दिया तथा इनके पृथक का भी संकेत दिया। इसी प्रकार रोम के गणतन्त्र में भी शासन के अंगों का विभाजन दिखाई पड़ता है। इस संबंध में रोमन विचारक पोलिबियस तथा सिसरो ने भी संकेत दिये। इन सभी उदाहरणों में स्पष्ट रूप से शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया गया और न ही इसे सुव्यवस्थित रूप से स्थापित किया गया। इस संबंध में जॉन लॉक के राज्य संबंधी विचारों की अनदेखी नहीं की जा सकती। उन्होंने ने भी राजशक्ति को विधायिका, शासन संबंधी तथा राजनम संबंधी शक्तियों में विभाजित करने की बात की थी।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि सरकार को शक्तियों के विभाजन का विचार अति प्राचीन है परन्तु इस संबंधमेंसर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य ''मॉटेस्क्यू'' ने किया। उन्होंने इसे एक सुव्यवस्थित सिद्धान्त के रूप में स्थापित किया। यहाँ पर हरमन फाइनर का कथन उल्लेखनीय है ''व्यक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त प्रथम बार पूर्ण रूप में केवल मांटेस्क्यूद्वारा ही प्रतिपादित किया गया।'' शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धान्त मांटेस्क्यूका अपना ही है यद्यपि इसके कुछ संकेत जॉन लौक की पुस्तक ''सिविल गर्वनमेंट'' में भी मिलते प्रतीक होते है। इसमें लौक ने स्पष्ट किया कि व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका संबंधी कार्यों को पृथक रूप अलग-अलग व्यक्तियों के द्वारा किया जाना चाहिए। इन सबके बावजूद शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का जनक मांटेस्क्यूही है। उन्होंने इस सिद्धान्त को प्रतिपदित कर ''आधुनिक शासन व्यवस्था'' तथा ''विधि के शासन'' का मार्ग प्रशस्त किया। इस सिद्धान्त के द्वारा मानव स्वतन्त्रता को निर्बाध बनाने का अप्रतिम कार्य किया। यहाँ सिद्धान्त मानव जाति के इतिहास में एक 'मील का पत्थर' साबित हुआ। यहाँ पर 'ब्लैकस्टोन' का उल्लेख करना भी आवश्यक हो जाता है जिन्होंने 'शक्ति पृथक्करण'' के सिद्धान्त को और आगे ले जाकर राजनीति शास्त्र के महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में प्रतिस्थापित किया।

13.4 शक्ति पृथक्रण की आवश्यकता:-

शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त सरकार के तीनों अंगों व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के पृथक अस्तित्व एवं स्वतन्त्र रूप से कार्य करने पर बल देता है। यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि यदि तीनों अंग स्वतन्त्र एवं पृथक होगें तो मानव स्वतन्त्रता सुरक्षित रह सकेगी। प्लेटो, अरस्तू, पोलीवियस, सिसरो, लाँक आदि विचारकों ने शक्ति विभाजन को मानव स्वतन्त्रता एवं कुशल शासन के लिये आवश्यक माना। लाँक से पूर्व के विचारक इस सिद्धान्त की व्यापक एवं सपष्ट व्याख्या नहीं कर पाये थे। लाँक प्रथम विचारक था जिसने शक्ति पृथक्करण को कुशल शासन के

लिये आवश्यक बताया। उसने पहली बार यह स्पष्ट किया कि व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, तथा न्यायपालिका के कार्य एक दूसरे से अलग हैं तथा इनको एक नहीं समझा जा सकता है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि लाँक व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के कार्यों के पृथक्करण पर अत्याधिक जोर देता था। उसने न्यायपालिका के पृथक्करण पर उसकी स्वतन्त्रता पर विशेष बल नहीं दिया। व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका को एक दूसरे से स्वतन्त्र एवं अलग रखने का विचार एक महत्वपूर्ण विचार था। यह लाँक का उल्लेखनीय योगदान है। इस संबंध में लाँक ने लिखा है-''जिन व्यक्तियों के हाथ में विधि निर्माण की शक्ति होती है उसमें विधियों के क्रियान्वयन की शक्ति को अपने हाथ में लेने की प्रबल इच्छा हो सकती है क्योंकि शक्ति हथियाने का प्रलोभन मनुष्य की महन दुर्बलता है।''

शक्तिपृथक्करणकी आवश्यकता एवं औचित्य को बड़े ही स्पष्ट रूप से मांटेस्क्यू ने सिद्ध किया। उसने फ्रांस में लुई चौदहवें के तानाशाहीपूर्ण शासन को बड़े नजदीक से देखा था। फ्रांस के बाद इंग्लैण्ड में प्रवास के दौरान उसने वहाँ के राजा की मर्यादित सत्ता को देखा था। उस समय इंग्लैण्ड के राजा की सत्ता संसद एवं मत्रिमण्डल के उदय के साथ सीमित हो गई थी। वहाँ की बेहतर व्यवस्था को देखकर मांटेस्क्यू इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि राजशक्ति का पृथक्करण ही नागरिक स्वतन्त्रता एवं सुशासन का आधार है। इसी से प्रभावित होकर उसने शक्ति पृथक्करण का व्यापक एवं स्पष्ट सिद्धान्त प्रस्तुत किया। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है। जिस इंग्लैण्ड की व्यवस्था से प्रेरित होकर वह शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त दे रहा था उस इंग्लैण्ड में संसदीय शासन व्यवस्था होने के कारण व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका में घनिष्ठ संबंध पाया जाता है। वहाँ पर शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त नहीं पाया पाया जाता है। इसके बावजूद भ्रमवश ही उसने जो शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया वह मांटेस्क्यू की राजनीतिशास्त्र को अमूल्य देन है। पहली बार उसने ही शक्ति पृथक्करण को स्वतन्त्रता की पहली एवं अंतिम आवश्यकता माना था। सी0एफ0 स्ट्रांग ने शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के महत्व को समझते हुए लिखा-''शासन के तीन विभागों - विधानमण्डल, कार्यपालिका, न्यायपालिका का उदय वास्तविक कृत्यों के विशेषीकरण ;(Specialization of functions) की प्रक्रिया के फलरूवरूप हुआ। यह प्रक्रिया सभ्यता की प्रगति उसके कार्यक्षेत्र की वृद्धि और उसके उपकरणों की बढ़त हुई जटिलता के साथ ही सिद्धान्त एवं व्यवहार की समस्त शाखाओं में दृष्टिगोचर हुई है। प्रारम्भ में राजा सभी शक्तियों का स्वामी था परन्तु बाद में इन शक्तियों को दूसरे को सौंपने की प्रकृति का विकास हुआ। कार्यों का विशेषीकरण एक आवश्यकता थी और उसके परिणामस्वरूप प्रत्यायोजन एक सीधा सादा प्रयास था। राजा की शक्ति नियन्त्रित की जाने लगी और संवैधानिक साधनों का विचार होने लगा। इसी से एक सिद्धान्त का जन्म हुआ।''

लाँक, मांटेस्क्यू तथा स्ट्रांग तीनों ने ही शक्ति पृथक्करण को आवश्यक माना तथा इसको अलग-अलग रूप से प्रस्तुत किया। सभी विद्वानों ने शक्ति पृथक्करण की उपयोगिता को अलग-अलग तरीके से सिद्ध किया। आधुनिक समय में भी यह सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी माना जाता है। आज

न्यायपालिका को इसी सिद्धान्त के माध्यम से व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका से स्वतन्त्र एवं दबावमुक्त रखने की कोशिश की जाती है। जिससे वे स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष रूप से संविधान की सुरक्षा एवं नागारिक अधिकारों की रखा कर सके। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता हेतु शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की आवश्यकता हमेशा रहती है। इस संबंध में हरमन फाइनर का कथन महत्वपूर्ण है-'' शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त का राजनीतिक विज्ञान में तब तक विशेष महत्व नहीं रहा जब तक राजनीतिक स्वतन्त्रता का मुद्दा आवश्यक नहीं बन गया। ''

13.5 मांटेस्क्यू के शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का अर्थ एवं परिभाषाः-

साधारण शब्दों में कहें तो एक दूसरे से स्वतन्त्र होना तथा एक दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना ही शक्ति पृथक्करण है। इस सिद्धान्त में हय स्वीकार किया जाता है कि सरकार के तीनों अंगों को अपने-अपने कार्यों को करना चाहिए तथा दूसरे अंगों के कार्यक्षेत्र में अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। यह प्रक्रिया शासन के हित में भी है तथा नागरिक एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिये भी आवश्यक है। इस सिद्धान्त के मूलमेंयह भावना छिपी है कि जब-जब सरकार के तीनों अंगों की शक्तियों का केन्द्रीकरण होता है तब-तब निरंकुश शासन, अत्याचार अपने चरम पर पहुँच जाता है। इस सिद्धान्त की यह मान्यता है कि शक्तियों के केन्द्रीकरण के स्थान पर उनका विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। विकेन्द्रीकरण सत्ता से मानव पर होने वाले अत्याचार, शोषण पर रोक लग सकती है। सरकार के तीनों अंगों के पृथक एवं स्वतन्त्र होने से वे ने केवल अपने क्षेत्र में कार्य करते हैंवरनदूसरे अंग के अतिक्रमण के प्रयास पर विराम भी लगाते हैं। इससे स्वभाविक रूप से एक संतुलन कायम होता है। कतिपय यही कारण है शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त से आगे जाकर एक नया सिद्धान्त विकसित हुआ जिसे हम अवरोध एवं संतुलन का सिद्धान्त भी कहते हैं।

मांटेस्क्यू ने शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए लिखा था-'' प्रत्येक सरकार में तीन प्रकार की शक्तियाँ होती हैः- व्यवस्थापन संबंधीः- इस शक्ति के अनुसार शासक स्थाई या अस्थाई कानूनों का निर्माण करता है तथा पहले से बने कानूनों का संशोधन तथा समापन करता है। दूसरी शासन संबंधीः-जिसके अनुसार वह संधि करता है अथवा युद्ध की घोषणा करता है। अन्य देशों को राजदूत भेजता है तथा उनके राजदूत को अपने यहाँ स्थान देता है। सार्वजनिक सुरक्षा की स्थापना तथा आक्रमणों से रक्षा की व्यवस्था करता है। तीसरी न्याय संबंधी- इस शक्ति के अनुसार वह अपराधियों को दण्ड देता है। अथवा व्यक्तियों के झगड़ों का निपटारा करता है। व्यवस्थापन तथा शासनसंबंध शक्ति जब किसी एक व्यक्ति अथवा शासकों के समूह में निहित हो जाती है, तो स्वतन्त्रता का कोई अस्तित्व नहीं रहता है। इस दशा में इस बात का भय रहता है मिक एक राजा अथवा सत्ता अत्याचारी कानूनों का निर्माण कर ले तथा उन्हें अत्याचारपूर्ण ढंग से लागू करे। इसी प्रकार यदि न्याय संबंधी शक्ति को व्यवस्थापन अथवा शासन सबंधी शक्ति से अलग नहीं किया गया तो भी स्वतन्त्रता संभव नहीं होती है। यदि वह व्यवस्था के साथ जोड़ दी जायेगी तो प्रजा के जीवन तथ उसकी स्वतन्त्रता को स्वेच्छाचारी नियन्त्रण का शिकार बनना पड़ेगा क्योंकि उस दशा में

न्यायकर्ता ही व्यवस्थापक होगा। यदि इसे (न्याय शक्ति) शासन शक्ति के साथ जोड़ दिया जायेगा तो न्यायकर्ता का व्यवहार हिंसक एवं अत्याचारी हो जायेगा।''

मांटेस्क्यूके शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के विश्लेषण से मुख्य रूप से निम्न तथ्य उभरते हैः-

1.सरकार के तीनों अंगों का स्वतन्त्र अस्तित्व है तथा तीनों की अलग-अलग शक्तियाँ है।

2.स्वतन्त्रता सुनिश्चित करने के लिये तीनों शक्तियों का केन्द्रण नहीं होना चाहिए।

मांटेस्क्यूयह स्वीकार करता है कि सरकार के तीनों अंगों की अपनी अलग विशिष्ट पहचान तथा कार्यक्षेत्र है। अतः इनको अलग रखा जा सकता है। सभी राज्यों में , सरकारों में इन कार्यों का संपादन किया जाता है। यदि इन कार्यों का निष्पादन एक स्थान से होना प्रारम्भ होता है तो नागरिक स्वतन्त्रता गंभीर संकट में पड़ जाती है। इसी से बचने के लिये मांटेस्क्यूशक्ति के केन्द्रकरण रोकने पर जोर देता है। वह तीनों अंगों को स्वतन्त्र एवं समान रूप से शक्ति सम्पन्न बनाने पर जोर देता है। वह उनके स्वतन्त्र क्रियान्वयन को भी आवश्यक बताता है। जब तीनों अंग समान रूप से शक्ति सम्पन्न होगें तथा तीनों का स्वतन्त्र अस्तित्व होगा तो कोई भी दुरूपयोग करने की स्थिति में नहीं होगा। इसके साथ ही प्रत्येक अंग दूसरे के कार्यों में दखल नहीं दे पायेगा। मांटेस्क्यूशक्ति के केन्द्रीकरण के स्थान पृथक्करण पर बल देता है। वह मानता है कि तीनों ही शक्तियाँ विशिष्ट है अतः उनको अलग ही रहना चाहिए। जब वे एक स्थान पर केन्द्रित होगी तब मानव स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जायेगी।

मांटेस्क्यूस्वतन्त्रता को श्रेष्ठतम् मानवीय आवश्यकता एवं आवश्यक गुण मानता है। वह स्पष्ट रूप से कहता है कि राज्य नामक संस्था के उदय के साथ राजनीतिक स्वतन्त्रता का महत्व बढ़ जाता है। राजनीतिक स्वतन्त्रता को स्पष्ट करते हुए वह लिखता है- ''जो हम चाहे उसे करने तथा जो न चाहे उसे न करने की स्वतन्त्रता ही राजनीतिक स्वतन्त्रता है।'' दूसरे शब्दों में कहे तो ''विधि के अनुसार व्यवहार ही स्वतन्त्रता है।''

वह स्पष्ट करता है कि स्वतन्त्रता मानव का आवश्यक गुण है और मानव को सदैव स्वतन्त्रता की आवश्यकता होती है। हर प्रकार के सरकारों में इस अनिवार्य मानवीय आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती है। इसके लिये एक उदार एवं मानवीय सरोकार से जुड़ी सरकार की आवश्यकता होती है। इसके लिये यह भी आवश्यक है कि सरकार के अंगों द्वारा शक्ति का दुरूपयोग न किया जाय। वह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति के दुरूपयोग रोकने के लिये आवश्यक है कि शक्ति का केन्द्रीकरण रोका जाय। वह इतिहास के अनुभव से यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि ''निरन्तर का अनुभव यह स्पष्ट करता है कि प्रत्येक व्यक्ति जिसके पास सत्ता है उसकी प्रवृत्ति उस शक्ति के दुरूपयोग करने की होती है और वह अपनी शक्ति को तब तक बढ़ाता जाता है जब तक उसका सामना नियन्त्रक सीमा से नहीं होता है।'' वह स्पष्ट करता है कि यह नियन्त्रक एक ही स्थिति में हो सकता है। जब शक्ति को ही शक्ति का नियन्त्रक व सन्तुलक बना दिया जाय। अतः उसकी यह मान्यता थी कि शक्ति के तीन केन्द्र अलग-अलग होने चाहिए। सत्ता तीन स्थानों पर केन्द्रित हो तथा किसी अंग को दूसरे के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। वह स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है।

कि सत्ता का मद अनिवार्य रूप से पतन की ओर ले जाता है। इस अवस्था से बचने के लिये 'सत्ता पर नियन्त्रण' तथा शक्तियों का सन्तुलन आवश्यक है। वह स्पष्ट करता है कि सत्ता अथवा शक्ति का यह संतुलन तभी संभव हो सकता है जब प्रत्येक अंग अपनी सीमाओं में कार्य करे तथा दूसरे अंग की सीमाओं में अतिक्रमण न करे। यह व्यवस्था तीनों अंगो को पूर्णतः पृथक कर ही हो सकती है। वह मानता था कि स्वतन्त्रता की रक्षा तभी हो सकती है जब शक्तियों का पृथक्करण हो। संक्षेप में मांटेस्क्यूके शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के मूल तत्व इस प्रकार है-

1.सरकार के तीनों अंगों व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, नन्यायपालिका संबंधी शक्तियों एक दूसरे पृथक तथा स्वतन्त्र हो।

2.सरकार के तीनों अंगों की शक्तियाँ अलग-अलग व्यक्तियों में निहित हो।

3.सरकार के तीनों अंगों की शक्तियाँ एवं उनके कार्मिकों की शक्तियाँ केवल उनके अधिकार क्षेत्र में सीमित, स्वतन्त्र और सर्वोच्च हो।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि शक्ति को शक्ति से पूर्णतः अलग कर शक्ति को ही शक्ति का नियन्त्रक बनाया जा सकता है। कतिपय यही कारण है कि वह इस बात पर जोर देता है कि -

1.सरकार के प्रत्येक अंग की शक्तियाँ स्पष्ट रूप से एक दूसरे से पृथक की जाय।

2.हर अंग का कार्यक्षेत्र एवं उसकी शक्तियाँ स्पष्ट रूप रेखांकित हो।

3.किसी भी अंग को अथवा सत्ता को किसी अन्य के अधिकार क्षेत्र में दखल नहीं देना चाहिए।

4.हर अंग को अथवा प्रत्येक सत्ता की शक्तियाँ बराबर होनी चाहिए। सभी का समान महत्व होना चाहिए।

5.हर प्रकार के शासन में केवल शक्ति ही शक्ति का विरोध करने की क्षमता रखती है।

मांटेस्क्यूके शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त ने मानवीय स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने में महत्वपूर्ण कार्य किया। यह उसका मानव स्वतन्त्रता हेतु दिया गया बहुमूल्य योगदान है। उसी के भांति ति आगे जाकर ब्लैकस्टोन, बाइल आदि शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की व्याख्या की। जहाँ ब्लैकस्टोन लिखता है- ''जहाँ कही भी कानून बनाने तथा लागू करने का अधिकार एक व्यक्ति में निहित होता है वहाँ सर्वाजनिक स्वतन्त्रता नष्ट हो जाता है क्योंकि शासक अत्याचारपूर्ण कानून बनाकर उसे अत्याचारपूर्ण ढ़ग से लागू कर सकता है। यदि न्यायिक अधिकार को व्यवस्थापिका के साथ संयुक्त कर दिया जाय तो प्रजा के जीवन, स्वतन्त्रता तथा संपति के अधिकार स्वेच्छाचारी न्यायाधीशों के हाथ में आ जायेंगें क्योंकि वे अपने निर्णय अपने अनुसार देते है न कि विधि के अनुरूप। यदि न्यायपालिका को कार्यपालिका के साथ जोड़ दिया जाय तो व्यवस्थापिका का स्थान गौण हो जायेगा।

आधुनिक समय में एम0जे0 सी0 वाइल ने शक्ति के पृथक्करण के सिद्धान्त को और अधिक स्पष्ट एवं व्यवस्थित करने का प्रयास किया। उनका सम्पूर्ण विश्लेषण मांटेस्क्यू एवं ब्लैंकस्टोन के नजदीक ही दिखायी पड़ता है। उनके शब्दों में - ''राजनीतिक स्वतन्त्रता की स्थापना और स्थामित्व के लिये

यह आवश्यक है कि सरकारों को विधायी, कार्यकारी और न्यायिक इन तीनों अंगों में विभाजित किया जाय। इन तीनों अंगों में से प्रत्येक के पास सरकार के व्यवस्थापन संबंधी, प्रशासकीय और न्यायिक कार्य हो। उन्हें दूसरे अंगों के कार्यों में दखल देने की अनुमति न मिले। कोई भी व्यक्ति एक ही समय में एक से अधिक अंग अथवा शाखा का सदस्य न हो। इस प्रकार सरकार का प्रत्येक अंग दूसरे अंगों पर नियन्त्रण अथवा अंकुश रखे और व्यक्तियों का कोई एक समूह सम्पूर्ण सरकारी तन्त्र पर न छा जाये।''

एम0जे0सी0वाइल ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि समाजो की मूल्य व्यवस्था को सुरक्षित करनेका एकमात्र साधन मानव से इस सिद्धान्त के माध्यम से खोज लिया है। वह कहता है - ''मानव मूल्यों की सुरक्षा के लिये जितने भी सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं उन सबमें शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त आधुनिक समय में बौद्धिक दृष्टि से तथा संस्थापक संरचनाओं पर प्रभाव की दृष्टि से अत्याधिक महत्वपूर्ण है। इस संबंध में अमेरिकी संविधान निर्माता मेडीसन का कथन उल्लेखनीय है- ''व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका संबंधी सारी शक्तियों का एक हाथ में एकत्रित होना, अत्याचारी शासन की उपयुक्त परिभाष कही जा सकती है।''

13.6 शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का प्रभाव:-

शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त एक ऐतिहासिक सिद्धान्त था। उसका व्यापक प्रभाव शासन, सत्ता तथा सरकारों के कार्यों पर पड़ा। इस सिद्धान्त ने सरकारों को मानव मूल्यों के प्रति अधिक संवेदनशील बना दिया। अमेरिका तथा फ्रान्स की शासन व्यवस्था पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। कुछ विद्वान तो यहाँ तक मानते हैं कि इस सिद्धान्त ने फ्रांस की क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार की। फ्रांस की क्रान्ति (1789) के मुख्य नारे समता, स्वतन्त्रता एवं भाईचारे (बंधुत्व) की आधार शिला इस सिद्धान्त ने रखी। बाद के वर्षों में फ्रांस में मानवीय अधिकारों की जो घोषणा हुई उसमें कहा गया कि जिस देश में शक्ति पृथक्करण की व्यवस्था नहीं है, उस देश में संविधान एवं मानव मूल्य नाम की चीज नहीं है। फ्रांस के 1791 के संविधान में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका को एक दूसरे से पृथक रखा गया। फ्रांस में प्रशासकीय विधि एवं प्रशासकीय न्यायालय का अस्तित्व इसी सिद्धान्त का प्रभाव है। अमेरिकी संविधान निर्माता शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त से बहुत अधिक प्रभावित थे। इसी का प्रभाव था कि फिलाडेल्फिया सम्मेलन के प्रमुख सदस्य मेडीसन कहते थे- ''हम निरन्तर मांटेस्क्यू की अदृश्य छाया से प्रेरणा ग्रहण करते रहे हैं।'' अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने भी समय-समय पर शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के संविधान एवं अमेरिकी समाज पर प्रभाव को स्वीकारा है। यहाँ पर फाइनर का कथन उल्लेखनीय है- ''अमेरिका का संविधान जानबूझकर एवं प्रयास करके शक्तियों के पृथक्करण पर एक विस्तृत निबंध बनाया गया है। यह संविधान इस सिद्धान्त पर चलने वाला विश्व में सर्वाधिक प्रसिद्ध राज्य शासन है।'' दुनिया के अनेक देशों ने बाद के वर्षों में इस सिद्धान्त को अपने संविधान में जगह दी। कतिपय यही कारण है अध्यक्षात्मक शासन दुनिया में सर्वाधिक पायी जाने वाली शासन व्यवस्था है। 1948 में संयुक्त

राष्ट्र की महासभा द्वारा स्वीकृत मानव अधिकारों के सार्वलौकिक घोषणा पत्र की धारा 16 में भी इस सिद्धान्त को मान्यता दी गई है।

13.7 शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की आलोचनाः-

यह निर्विवाद सत्य है कि शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त ने सभी महाद्वीपों के नागरिकों एवं वहाँ बनने वाले संविधानों को प्रभावित किया। यह ऐसा विचार था जिसने मानव मूल्यों, नागरिक एवं राजनीतिक स्वतन्त्रता ऊँचाइयों पर स्थापित किया। इस सिद्धान्त ने निरंकुश शासन, तानाशाही से बचने का व्यवहारिक हल प्रस्तुत किया। यह ऐसा विचार था जिसने सरकार के अंगों को तथा उसके कार्मिकों को दूसरे से पृथक एवं स्वतन्त्र रखकर मानव स्वतन्त्रता को सुरक्षित बनाने का प्रयास किया। इसके बावजूद समय गुजरने के साथ इस सिद्धान्त में कुछ त्रुटियाँ उजागर हुई। व्यवहार में इस पर आधारित शासन व्यवस्था में कई तरह की कमियाँ नजर आई। समय के साथ इस विचार में कई संशोधन भी किये गये। कुछ राजनीति शास्त्रीयों ने इसे अतिवादी विचार बताया तो कुछ ने इसे अव्यवहारिक बताया। संक्षेप में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की आलोचना निम्न आधार पर की जाती है-

1.सिद्धान्त के प्रतिपादन का आधार गलतः- मांटेस्क्यूने शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त का प्रतिपादन ब्रिटेन की शासन व्यवस्था का अध्ययन कर किया गया था। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि जिस शासन व्यवस्था को आधार बनाकर मांटेस्क्यूशक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त दे रहा था वहाँ पर संसदीय शासन व्यवस्था है। संसदीय व्यवस्था का यह आधारभूत तत्व है कि वह व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के बीच घनिष्ठ संबंध पर आधारित होती। संसदीय शासन में कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। इस संबंध में रेम्जे म्योर का कथन महत्वपूर्ण है- ''यदि शक्ति पृथक्करण अमेरिकी शासन व्यवस्था का आवश्यक नियम है तो दायित्व का केन्द्रीकरण ब्रिटिश संविधान का आवश्यक नियम है।''

यहाँ पर यह महत्वपूर्ण है कि मांटेस्क्यूने जिस सिद्धान्त को आधार बनाकर शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त दिया वह शासन व्यवस्था विधायिका एवं कार्यपालिका में घनिष्ठ संबंध पाया जाता है। दोनों ही अंगों का जीवन एवं मरण एक दूसरे पर निर्भर करता है। कार्यपालिका, विधायिका के प्रसाद पर्यन्त सत्ता में रहती है तथा विश्वास समाप्त होते ही कार्यपालिका (सरकार) को पद छोड़ना पड़ता है। वहीं दूसरी तरफ कार्यपालिका का वास्तविक प्रधान संकट के समय निम्न सदन को भंग कर नये चुनाव कराने की सिफारिश राष्ट्र प्रमुख से कर विधायिका का भंग करा सकता है। उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मांटेस्क्यूका सिद्धान्त गलत आँकलन तथा गलत विश्लेषण का परिणाम है। इस सिद्धान्त का आधार ही गलत है। कतिपय यही कारण है कि इसकी व्यापक आलोचना हुई है।

2.किसी भी शासन व्यवस्था में पूर्ण पृथक्करण संभव नहीं:- मांटेस्क्यू का शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त एक अतिवादी सिद्धान्त है। जो सरकार के अंगों के पूर्ण पृथक्करण को स्वीकार करता है। वह सरकार के अंगों के साथ उनके कार्मिकों के भी पृथक्करण अथवा कार्य विशेषीकरण की बात करता है।

व्यवहार में किसी भी शासन में यह संभव नहीं है। अध्यक्षात्मक शासन जो शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित आदर्श शासन व्यवस्था मानी जाती है, उसमें भी अंगों के बीच आवश्यक तालमेल एवं संतुलन पाया जाता है। आज के जटिल शासन व्यवस्था में पूर्ण पृथक्करण एक कपोल कल्पना सिद्ध होगी। आज सरकार के कार्य दायित्व दिनों-दिन व्यापक ही नहीं जटिल एवं तकनीकी प्रवृत्ति के हो गये हैं। इन सभी कारणों से सरकार के अंगों में तालमेल ही अपेक्षित परिणाम दिला सकता है। अमेरिका के संविधान निर्माता जो कि शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के प्रबल सर्मथक थे उन्होंने ने भी सीनेट (विधायिका) के कानून निर्माण के साथ सरकार के द्वारा किये गये संधि समझौते की स्वीकृति प्रदान करने की शक्ति दी है। यह कार्य वास्तव में कार्यपालिका है परन्तु विधायिका का दखल दिखायी पड़ रहा है। इसी प्रकार राष्ट्रपति द्वारा की गयी नियुक्तियों को पुष्टि भी सीनेट द्वारा करने की व्यवस्था भी पूर्ण शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के विरूद्ध है। इसके अलावा राष्ट्रपति तथा अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों द्वारा संविधान का उल्लंघन करने पर महाभियोग द्वारा पद से हटाने की व्यवस्था भी विधायिका एवं कार्यपालिका के पूर्ण पृथक्करण के विरूद्ध है। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के द्वारा विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों की संवैधानिकता की न केवल जाँच कर सकती हैवरनउसे अंसवैधानिक घोषित कर सकती है। अमेरिका का राष्ट्रपति जो कार्यपालिका का प्रधान होता है वह न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा क्षमादान के कार्य कर न्यायिक कार्य करता है। विधायिका द्वारा बनाये गये कानूनों के संबंध में उसके पास 'वीटो का अधिकार' (निषेधाधिकार) है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि अमेरिका जहां पर शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त पर बहुत जोर था, वह भी पूर्ण रूप से शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को नहीं अपना पाया। अमेरिका में भी सरकारों के अंगों में सांमजस्य एवं सहयोग बनाना पड़ा। वहाँ पर सरकार के सभी अंग दूसरे के कार्यों में आवश्यकतानुसार न केवल दखल दे रहे हैंवरनव्यापक हित में दूसरे के कार्यों को करते हुए दिखायी पड़ रहें हैं। वास्तव में सत्ता का पूर्ण पृथक्करण पूर्णतः अव्यवहारिक सिद्धान्त है। यह आधुनिक समय में संभव ही नहीं है। आज शासन के अंगों के द्वारा मिश्रित कार्यों का संपादन किया जाता है। आधुनिक समय में कार्यों की अधिकता एवं जटिलता ने प्रदत्त विधायन को मजबूत किया है। इसमें एक अंग का कार्य दूसरा करता है। इस व्यवस्था में कार्यपालिका के कार्यों एवं शक्तियों में वृद्धि हो जाती है। आकस्मिक स्थिति में कार्यपालिका द्वारा अध्यादेश पारित करना भी कार्यपालिका का विधायी कार्य है। आधुनिक लोकतन्त्र में कार्यों की अधिकता एवं जटिलता ने इसे अव्यवहारिक बना दिया है वहीं फॉसीवाद, नाजीवादी तथा साम्यवादी विचारधारा वाली सर्वाधिकारवादी शासन में इसकी कोई जगह नहीं है। इस संबंध में गेटेल का कथन महत्वपूर्ण है- ''शासन विभिन्न कार्य करने वाले कई अंगों से बनता है, उनका एक साझा कार्य एवं उद्देश्य होता है। जिनकी सफलता के लिये उनकी एकरूपता तथा सहयोग आवश्यक है। विभिन्न विभागों में पृथकता की एक दृढ़ रेखा नहीं खींची जा सकती है।''

3.तीनों अंगों की शक्ति विभाजन एवं सामंजस्य योजना का अभाव:- यह सिद्धान्त पूर्ण रूपेण अंगों के अलग कार्यक्षेत्र का समर्थक है। इससे कई बार तीनों अंगों में गतिरोध, टकराव उत्पन्न हो जाता है। नई जटिल शासन व्यवस्था में टकराव एवं गतिरोध के स्थान पर सहयोग की आवश्यकता होती है। यदि गतिरोध के साथ शासन आगे बढ़ेगा तो शासन का लक्ष्य ही प्राप्त नहीं हो सकेगा। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त में विभाजन का विचार दिया गया है। परन्तु विभाजन योजना का पूर्ण आभाव है। इस सिद्धान्त में अंगों के बीच गतिरोध अथवा टकराव की स्थिति में समाधान हेतु किसी योजना का पूर्णरूपेण अभाव दिखायी देता है।

4.शक्ति पृथक्करण की आवश्यकता ही नहीं है:- यह सिद्धान्त पूर्णरूपेण कठोर रूप से कभी भी स्वीकार नहीं हो सकता है। आधुनिक समय में सरकार के सभी अंग सामूहिक रूप से एक ही लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये प्रयासरत रहते हैं। वह लक्ष्य होता है जनकल्याण एवं मानव आकांक्षाओं की पूर्ति करना। यह लक्ष्य आज राष्ट्र राज्य वाले बड़े देशों में सरकार के बड़े कार्यक्षेत्र को इंगित करता है। बड़े व्यापक लक्ष्य को पाने के अंगों के सहयोग एवं सामंजस्य की आवश्यकता होती है न कि असहयोग एवं पृथक्करण। यदि आज पूर्ण पृथक्करण के साथ सरकार कार्य करे तो अपने मूल लक्ष्य को ही नहीं प्राप्त कर पायेगी। सरकार असफल हो जायेगी।

आज आवश्यकता व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बीच सहयोग की है। इनके सहयोग एवं मार्गदर्शन के बिना लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अतः आज के समय में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की आवश्यकता ही नहीं है।

5.न्यायपालिका की निष्पक्षता एवं नागरिक अधिकारों का अंत:-

यदि शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को पूर्ण रूपेण लागू किया गया तो न्यायपालिका की सर्वोच्च ता एवं निष्पक्षता प्रभावित हो जायेगी। न्यायाधीशों की नियुक्ति विधायिका के द्वारा न होकर जनता के द्वारा होने लगेगी तथा न्यायपालिका न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग नहीं कर पायेगी। इसके अभाव में नागरिक अधिकारों की रक्षा तथा संविधान के प्रावधानों का पालन सुनिश्चित नहीं करा पायेगी। ऐसी दशा में संविधान केवल दिखाने की वस्तु बन कर रह जायेगा। आधुनिक समय में नागरिक अधिकार तथा संविधान की सर्वोच्च ता का सिद्धान्त सर्वोच्च माना जाता है। इन दोनों आदर्शों को आज अनिवार्य रूप से सर्वोच्च मूल्य के रूप में स्वीकार किया जाता है।

6.स्वतन्त्रता के लिये शक्ति पृथक्करण आवश्यक नहीं- यह मानना कि सरकार के तीनों अंगों को पृथक कर ही स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखा जा सकता है पूर्णतः गलत है। नागरिक स्वतन्त्रता हेतु संविधान एवं संविधान के अनुरूप सरकार के अंगों का सुचारू रूप से संचालन आवश्यक है। सरकार के अंगों में बेहतर सांमजस्य ही स्वतन्त्रता की गारंटी है। इसका अच्छा उदाहरण इंग्लैण्ड का है। इंग्लैण्ड के शासन से ही प्रभावित हो कर मांटेस्क्यूने शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त दिया था। जबकि इंग्लैण्ड ने संसदीय शासन व्यवस्था होने के कारण वहाँ तीनों अंगों में घनिष्ठ संबंध पाया जाता है। वहाँ पर सरकार के अंगों में पृथक्करण न होते हुए भी नागरिक स्वतन्त्रता सुरक्षित है। ब्रिटेन

की नागरिक स्वतन्त्रता ने ही मांटेस्क्यूको शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के लिये प्रेरित किया था। यहाँ पर वाशिगटन का कथन महत्वपूर्ण है- ''निरन्तर जागरूकता ही स्वतन्त्रता का सच्चा मूल्य है''

मांटेस्क्यू के शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की आलोचना की जाती है परन्तु यह महत्वपूर्ण है कि मांटेस्क्यूने मानव मूल्यों और स्वतन्त्रता को न केवल महिमा मण्डित कियावरनउसके सुरक्षा के लिये व्यवहारिक उपाय शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के माध्यम से प्रस्तुत किया। वह पहला विचारक था जिसने शक्ति के केन्द्रकरण को स्वतन्त्रता का दुश्मन बताया। उसने सरकार के अंगों के समान रूप से शक्तिशाली बनाकर आगे जाकर अवरोध संतुलन के सिद्धान्त का मार्ग प्रशस्त किया। आज दुनिया के सभी देशों में किसी न किसी रूप में पृथक्करण सिद्धान्त तथा अवरोध संतुलन के सिद्धान्त का प्रयोग हो रहा है।

13.8 अवरोध एवं सतुंलन का सिद्धान्तः-

अवरोध एवं सतुंलन का सिद्धान्त आज बहुत लोकप्रिय एवं उपयोगी सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया जाता है। आज दुनिया के सभी लोकतान्त्रिक देशों में अवरोध संतुलन के सिद्धान्त के द्वारा सरकार के अंगों में सांमजस्य बनाने का कार्य करता हुआ दिखायी पड़ता है। कुछ विद्वान इसे शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का नवीन रूप भी मानते हैं। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि सरकार के सभी अंग समान हो तथा कोई किसी पर दबाव नहीं बनाये। कोई अंग इतना मजबूत एवं शक्तिशाली न बन जाये जिससे मानव स्वतन्त्रता ही खतरे में पड़ जाये। इस सिद्धान्त का आशय है सरकार के विभिन्न अंग एक दूसरे की शक्ति पर इस प्रकार से नियन्त्रण स्थापित करें कि शक्ति का संतुलन बना रहे। कोई भी अंग निरंकुश न हो जाय। दूसरों शब्दों में कहे तो विभिन्न विभाग पृथक तो हो सकते है परन्तु स्वतन्त्र नहीं। इस व्यवस्था में सरकार का प्रत्येक अंग एक दूसरे की शक्तियों को इस प्रकार सीमित करते है जिससे कि कोई भी अंग नागरिक स्वतत्रन्ता के लिये खतरा नहीं बन पाता है। नियन्त्रण एवं संतुलन सिद्धान्त के अर्न्तगत ऐसा प्रबन्ध किया जाता है कि कानून निर्माण का कार्य व्यवस्थापिका करे परन्तु विधायिका की इस शक्ति पर कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के द्वारा नियन्त्रण रखा जाता है। इसमें यह व्यवस्था दिखायी पड़ती है कि विधायिका द्वारा पारित विधेयक तभी कानून बनते हैं। जब कार्यपालिका के प्रधान के हस्ताक्षर न हो जायें। न्यायपालिका के द्वारा न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के द्वारा न्यायपालिका विधायिका द्वारा बनाये गये कानूनों की वैधता को जांचती है। इससे विधायिका की विधायी शक्तियों पर नियन्त्रण रखा जाता है।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि पूर्ण एवं कठोर शक्ति पृथक्करण न तो व्यवहारिक है और न ही आधुनिक परीस्थितियों में लागू करने योग्य है। सरकार के अंगों में कार्य विभाजन तो ठीक है साथ ही उनमें सहयोग एवं सामंजस्य भी आवश्यक है। यही कारण है कि नियन्त्रण एवं संतुलन के सिद्धान्त में सहयोग तथा एक अंग द्वारा दूसरे को सीमित करने की व्यवस्था की जाती है। शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त के अव्यावहारिक होने के कारण इस सिद्धान्त के द्वारा शक्ति पृथक्करण को व्यावहारिक एवं अधिक कारगर बनाया गया। नियन्त्रण संतुलन का सिद्धान्त में शासन का प्रत्येक

अंग दूसरे पर निर्भर रहता है तथा दूसरे की शक्तियों द्वारा शक्ति के दुरूपयोग को रोकता है। अमेरिकी संविधान इसी अवरोध एवं संतुलन के सिद्धान्त पर कार्य करता है।

13.9 अमेरिका का अवरोध संतुलनः-

अमेरिका के संविधान में अवरोध संतुलन का एक आदर्श उदाहरण मिलता है। वहाँ पर सरकार के तीनों अंगों की शक्तियाँ संविधान द्वारा अलग-अलग रखी गई हैं। वहाँ पर शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। इसके बावजूद सभी अंग एक दूसरे को नियन्त्रित करते हुए दिखायी पड़ते हैं। अमेरिका में विधायिका का मुख्य कार्य कानून बनाना है। परन्तु वह कार्यपालिका की नियुक्ति संबंधी कार्यों की, संधि समझौते की पुष्टि करती है। राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग भी विधायिका के द्वारा ही पूर्ण किया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अमेरिका में विधायिका कार्यपालिका के ऊपर प्रभावी अंकुश लगाती है। विधायिका न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति कर तथा न्यायाधीशों के विरूद्ध महाभियोग लगाकर न्यायपालिका पर प्रभावी अंकुश लगाने का कार्य करती है। ठीक इसी प्रकार कार्यपालिका का प्रमुख कार्य नीतियों कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना होता है परन्तु वहाँ की कार्यपालिका का प्रधान (राष्ट्रपति) वीटो की शक्ति का प्रयोग कर विधायिका के द्वारा निर्मित कानून को कानून बनने से रोक सकता है। राष्ट्रपति के वीटो का अधिकार अमेरिकी काँग्रेस (विधायिका) पर प्रभावी नियन्त्रण है। इसी प्रकार अमेरिका में कार्यपालिका का प्रधान (राष्ट्रपति) न्यायाधीशों की नियुक्ति करने का अधिकार का प्रयोग कर न्यायपालिका को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय एक शक्तिशाली न्यायालय है। उसके पास कानूनों की संवैधानिकता की जांच करने तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा करने का महत्वपूर्ण दायित्व है। अपनी इस शक्ति का प्रयोग वह न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के द्वारा करता है। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय अपने न्यायिक पुनरावलोकन के अधिकार के द्वारा विधायिका के ऊपर प्रभावी नियन्त्रण स्थापित रखती है। इसी प्रकार अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय कार्यपालिका के कार्यों, आदेशों की वैधानिकता की जांच कर उस पर नियन्त्रण लगाने की क्षमता रखता है। इस प्रकार से स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिका की संवैधानिक व्यवस्था में शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त तो अपनाया गया है साथ में सभी अंगों को इतना ताकतवर एवं महत्वपूर्ण बनाया गया है कि वे दूसरे अंगों के ऊपर प्रभावी अंकुश एवं नियन्त्रण स्थापित कर सके। अमेरिकी संवैधानिक व्यवस्था में सरकार के अंगों को परस्पर एक दूसरे पर निर्भर रखा गया है। यह व्यवस्था व्यापक विमर्श के उपरान्त की गई है जिससे सरकार के अंगों के बीच एक 'प्रतिस्पर्धात्मक सहयोग' की भावना रहे और कोई भी सरकार का अंग इतना शक्तिशाली न हो जाय कि वह दूसरे सरकार के अंग को प्रभावित कर अत्याधिक शक्तिशाली (निरंकुश) बन जाये। अमेरिका के संविधान में अपनायी गई यह अद्भुत एवं दूरदर्शी व्यवस्था थी जिसने नागरिक स्वतन्त्रता के साथ प्रशासनिक कुशलता को सुनिश्चित किया। यह वह व्यवस्था थी जिसने सरकार के अंगों में सामंजस्य एवं सहयोग

को बढ़ावा दिया। इस सम्पूर्ण व्यवस्था से नागरिक स्वतन्त्रता के साथ वैधानिक, प्रशासनिक एवं **न्यायिक कुशलता का मार्ग प्रशस्त हुआ।**

13.10 भारत में शक्ति पृथक्करण एवं नियन्त्रण संतुलन व्यवस्था:

भारत में संसदीय शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। सामान्यतः संसदीय शासन व्यवस्था में यह माना जाता है कि इस शासन व्यवस्था में व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के बीच घनिष्ठ संबंध पाया जाता है। दोनों का अस्तित्व एक दूसरे पर निर्भर करता है। मन्त्रिमण्डल का निर्माण तथा उसका जीवन विधायिका के विश्वास पर्यन्त ही रहता है। उसी प्रकार विधायिका का अस्तित्व भी कार्य पालिका (प्रधानमंत्री सहित मन्त्रिमण्डल) पर निर्भर करता है। मन्त्रिमण्डल की सिफारिश पर निम्न सदन को भंग कर नये चुनाव कराये जा सकते हैं। यह कहना कि संसदीय शासन व्यवस्था में शक्ति पृथक्करण नहीं हो सकता पूर्णतः गलत है। वास्तव में संसदीय शासन में सीमित शक्ति पृथक्करण होता है तथा अवरोध संतुलन पर अधिक जोर पाया जाता है। सामान्यतः संसदीय शासन व्यवस्था में संविधान की रक्षा तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिये न्यायपालिका को संविधान द्वारा स्वतन्त्र रखा जाता है। शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये संसदीय शासन व्यवस्था में अवरोध संतुलन को स्वीकार किया जाता है। भारत की शासन व्यवस्था संसदीय है अतः यहाँ पर भी ''अवरोध संतुलन'' के तत्व दिखायी पड़ते हैं। भारत के संविधान में संसदीय शासन होने के बावजूद शक्ति पृथक्करण तथा नियन्त्रण संतुलन की व्यवस्था की गई है। भारत में विधायिका का कार्य कानून बनाना है परन्तु विधायिका कार्यपालिका के प्रधान राष्ट्रपति के विरूद्ध महाभियोग पारित कर उसे पद से हटा सकती है । ठीक इसी प्रकार स्वतन्त्र न्यायपालिका के न्यायाधीशों को भी महाभियोग द्वारा पद से हटाने का कार्य भी विधायिका करती है। भारत में कार्यपालिका अथव मन्त्रिमण्डल की सिफारिश पर राष्ट्रपति (कार्यपालिका का प्रधान) लोकसभा (विधायिका) को भंग कर सकता है। भारत में न्यायपालिका की स्वतन्त्रता एवं सर्वोच्च ता के लिये संविधान द्वारा विशेष प्रावधान किये गये हैं। इसी के लिये सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्रदान की गई है। अपनी इस शक्ति के द्वारा भारत में न्यायपालिका विधायी कानूनों की वैधानिकता की जांच कर सकता है। यदि कोई कानून संवैधानिक प्रतीक नहीं होता तो वह असंवैधानिक घोषित कर सकता है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय अपनी न्यायिक पुनरावालोकन की शक्ति का प्रयोग कार्यपालिका के आदेशों तथा नीतियों के संदर्भ में कर उसे अवैधानिक घोषित कर सकता है। भारत में राष्ट्रपति कार्यपालिका का प्रधान होते हुए भी विधायिका के ऊपर संसद का सत्र बुला सत्रावसन की घोषणा कर, अध्यादेश जारी कर, विधेयकों पर वीटो कर प्रभावी अंकुश लगाता है।

उपरोक्त विवरण ये यह स्पष्ट है कि यद्यपि भारत में संसदीय शासन होने के कारण पूर्ण शक्ति पृथक्करण की व्यवस्था नहीं की गई है परन्तु नियन्त्रण एवं संतुलन की व्यापक व्यवस्था की गई है।

13.11 अवरोध संतुलन के प्रकार:-

शक्तियों के पूर्ण पृथक्करण की व्यापक व्यवस्था अमेरिका में की गई। इसके बावजूद नियन्त्रण संतुलन के द्वारा अंगों में सहयोग एवं नियन्त्रण स्थापित किया गया। विकसित देशों में नियन्त्रण संतुलन की गैर संवैधानिक सरंचनाओं के कारण शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त कम प्रभावी दिखायी पड़ता है। अब अन्य संस्थायें इन दोनों कार्यों को करने लगी हैं। आधुनिक समय में राजनीतिक दल, दबाव, समूह, लोकमत, जनसंचार के साधन इस कार्य को करते हुए दिखायी पड़ते हैं। विकसित राजनीतिक व्यवस्थाओं में संरचनात्मक व्यवस्थाओं के कारण नियन्त्रण एवं संतुलन का सिद्धान्त आवश्यक होता जा रहा है। विकासशील समाजों में अभी इन सबका इस रूप में विकास नहीं हुआ है। अतः इन देशों में लोकतन्त्र एवं नागारिक स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये शक्ति पृथक्करण की अभी भी आवश्यकता बनी हुई है। अमेरिका एवं अन्य विकसित राजनीतिक व्यवस्था वाले देशों में दो तरह के नियन्त्रण एवं संतुलन की व्यवस्था दिखायी पड़ती है-

1.संवैधानिक नियन्त्रण संतुलन

2.गैर संवैधानिक नियन्त्रण संतुलन

1.संवैधानिक नियन्त्रण व संतुलन व्यवस्थाः-

शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त की अव्यवहारिकता एवं उससे होने वाले नुकसान के कारण इस सिद्धान्त का पूर्ण रूप से लागू नहीं किया जा सकता । इसके स्थान पर एक नये सिद्धान्त नियन्त्रण व संतुलन सिद्धान्त के द्वारा इस कार्य को करने का प्रयास किया गया। इस हेतु संविधान द्वारा ही इसकी व्यवस्था की गई इसीलिये इसे संवैधानिक नियन्त्रण व संतुलन व्यवस्था कहा गया। इस व्यवस्था में नियन्त्रण की व्यवस्था संविधान द्वारा स्पष्ट होती है। नियन्त्रण करने की सम्पूर्ण व्यवस्था औपचारिक होती है। तथा सामान्य परीस्थितियों में यह प्रभावी होती है। यहाँ पर यह महत्वपूर्ण है कि सामान्य परीस्थितियों से ज्यादा नियन्त्रण की आवश्यकता आपातकाल में होती है। जब कोई सरकार अपनी शक्तियों का दुरूपयोग करती है तब संवैधानिक व्यवस्थायें उस पर रोक लगाने में असफल रहती हैं। विकासशील देशों में प्रायः देखा गया है कि वहाँ लोकतन्त्र सैनिक क्रान्तियों से समाप्त नहीं हुआ है। वहाँ पर संवैधानिक नियन्त्रण संतुलन होने के बावजूद सरकारों ने अप्रत्याशित शक्तियों को हथिया लिया। अतः इस सिद्धान्त के द्वारा शासन के तीनों अंगों की शक्तियों के लिये ऐसा प्रबन्ध करना होता है जिसमें तीनों अंग एक दूसरे से स्वतन्त्र रहते हुए भी एक दूसरे पर ऐसा नियन्त्रण बनाये रखते हैं, जिससे कि संतुलन बना रह सके। शासन के प्रत्येक अंग को इतना एक दूसरे पर निर्भर बना दिया जाता है कि यदि कोई अंग अपनी जिम्मेदारी न निभाये तो शासन का दूसरा अंग उसे सचेत करने तथा नियन्त्रित करने का कार्य करता है। तीनों अंगों में परस्पर सामंजस्य और नियन्त्रण के साथ स्वतन्त्रता भी बनी रहती है। इस सिद्धान्त का मूल लक्ष्य नियन्त्रण लगाना नहीं है। इसका मूल उद्देश्य संतुलन बनाना है। यह कार्य जटिल है। नियन्त्रण उतना ही स्वीकार्य है जितना की संतुलन हेतु आवश्यक है। यही कारण है कि आज विधायिका के ऊपर कार्यपालिका विधेयकों को स्वीकृति दे कर, अध्यादेश जारी कर नियन्त्रण स्थापित करती है। वही कार्यपालिका के ऊपर विधायिका

नियुक्तियों को स्वीकृति दे, महाभियोग स्वीकृति कर, नियन्त्रण प्राप्त होता है। न्यायपालिका विधेयकों तथा कार्यपालिका के आदेशों की वैधानिकता की जाँच के द्वारा विधायिका एवं कार्यपालिका पर नियन्त्रण स्थापित करती है। इस प्रकार तीनों अंग प्रभावी नियन्त्रण तथा उनमें संतुलन करने का प्रयास करने में सफल हो पाते हैं।

2.गैर संवैधानिक नियन्त्रण और संतुलन व्यवस्थाः- समय गुजरने के साथ नियन्त्रण एवं संतुलन के तरीके भी बदल गये हैं। आधुनिकता के विकास, विज्ञान के विकास ने शासन के तौर तरीकों में भी बदलाव किया है। आज नियन्त्रण हेतु कई गैर संवैधानिक तत्व उभर आये हैं। ये तत्व संवैधानिक व्यवस्थाओं से अधिक प्रभावी तरीके से नियन्त्रण एवं संतुलन करते हुए दिखायी पड़ रहे हैं। आधुनिक समय में राजनीतिक दल, दबाव समूह, हित समूह, नये संचार के माध्यम, सोशल मीडिया, लोकमत ने सरकार के ऊपर अदृश्य रूप से प्रभावी अंकुश लगाना है। आज सरकार के अंगों के ऊपर प्रभावी अंकुश ही नहीं दिखायी पड़ रहा हैवरनसरकारें तथा उनके अंग बेहतर ढंग से संतुलित दिखायी पड़ रहे हैं। विकासशील समाजों में से अभी प्रभावी नहीं हो पाये हैं। परन्तु विकासशील राज्यों तथा उनकी शासन व्यवस्थाओं में इनका प्रभाव दिखायी पड़ने लगा है।

13.12 नियन्त्रण एवं संतुलन सिद्धान्त की आलोचनाः-

नियन्त्रण एवं संतुलन का सिद्धान्त आधुनिक समय में एक उपयोगी सिद्धान्त के रूप में विकसित हुआ है। इस सिद्धान्त ने कठोर शक्ति पृथक्करण की अव्यवहारिका को न केवल दूर कियावरनसरकार के अंगों में नियन्त्रण एवं संतुलन का व्यवहारिक हल प्रस्तुत किया। आज दुनिया के अधिकांश देशों में इस सिद्धान्त का अस्तित्व दिखायी पड़ता है। इन सबके बावजूद विभिन्न कारणों से इस सिद्धान्त की आलोचना की जाती है। इसकी आलोचना के प्रमुख आधार निम्न हैः-

1.शासन में गतिरोध की संभावनाः- नियन्त्रण एवं संतुलन का सिद्धान्त की आलोचना कुछ विद्वान इस आधार पर करते है कि इससे शासन के अंगों के बीच सहयोग के स्थान पर टकराव प्रारम्भ हो जाता है। अंगों का टकराव किसी भी शासन व्यवस्था के लिये हितकर नहीं होगा। सरकार अपने अंगों के बीच सांमजस्य से ही अपेक्षित परिणाम दे सकती है। शासन के अंगों बीच उपजा गतिरोध न केवल अपेक्षित परिणाम आने से रोकता है वरन शासन का मूल उद्देश्य ही समाप्त कर देता है।

2.निर्णय लेने में देरीः- प्रायः देखा जाता है कि शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध एवं संतुलन से सरकार के अंगों के बीच अनिश्चितता एवं अविश्वसनीयता का वातावरण बन जाता है। वे एक दूसरे के मार्ग में बाधायें उत्पन्न करने लगते हैं। यदि अंगों के बीच असहयोग एवं अनिश्चतता होगी तो सरकारें अपने कार्यों को ठीक प्रकार नही कर पायेंगी। उनके बीच उपजा टकराव कई बार निर्णय लेने में व्यवधान उत्पन्न करता है। यह इसका प्रमुख दोष है।

3.अव्यवहारिक सिद्धान्तः- आधुनिक समय में सरकार का स्वरूप एवं कार्यक्षेत्र का दायरा तेजी से बढ़ रहा है। आज सरकारों को तकनीकी एवं विशेषज्ञता पूर्ण कार्य करने पड़ते हैं। आज सरकारों के बीच जो चुनौतियां है उनमें त्वरित निर्णय की आवश्यकता रहती है। ऐसे में शक्ति पृथक्करण के

सिद्धान्त की ही तरह नियन्त्रण एवं संतुलन के सिद्धान्त पर सवाल उठने लगे हैं। अमेरिका में विधायिका एवं कार्यपालिका के बीच टकराव के कारण कई अवसरों पर राष्ट्रहित ही खतरे में पड़ गया। उतः कुछ विद्वान इस सिद्धान्त को अव्यवहारिक मानते हैं।

4.नियन्त्रण संतुलन के सिद्धान्त एवं महत्व में कमीः- आधुनिक समय में यह सिद्धान्त अपना प्रभाव एवं महत्व निरन्तर खोता जा रहा है। इसका प्रमुख कारण आज के दौर में सरकार के समक्ष उपजी चुनौतियों का जबाव इस सिद्धान्त के द्वारा नहीं दिया जा सकता है। आज टकराव के स्थान पर सरकार के अंगों के बीच सहयोग एवं सामंजस्य से ही सरकार के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

13.13 मूल्यांकन

आज दुनिया में शायद ही कोई देश ही जहाँ किसी न किसी रूप में शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन न दिखायी पड़ रहा हो। इस प्रकार की शासन प्रणालियों में किसी न किसी रूप में यह सिद्धान्त दिखायी पड़ता है। समय के साथ शक्ति पृथक्करण के सिद्धानत में उपजी खामियों की भरपाई अवरोध एवं संतुलन के सिद्धानत ने कर दी है। यह भी सत्य है कि इस सिद्धान्त की अवधारणाओं में आये सभी प्रयत्नों के बावजूद यह सिद्धान्त व्यक्ति की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने वाला सर्वाधिक उपयुक्त सिद्धान्त है। तेजी से बदल रही राजनीतिक स्थितियों तथा सरकार के समक्ष आ रही नई चुनौतियों के मुकाबले में यह सिद्धान्त किसी न किसी रूप में खड़ा हो रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सभी महाद्वीपों एवं विकसित-विकासशील देशों में इस सिद्धान्त का प्रसार इसकी सफलता एवं उपयोगिता को दर्शाता है। यह ऐसा विचार है जो किसी न किसी रूप में सभी प्रकार की शासन व्यवस्थाओं में स्वीकार किया जाता है। यहाँ पर बाइल का कथन उपयोगी हैः- ''विगत शताब्दियों के इतिहास का परीक्षण करने पर यह भेद खुलता है कि अपनी सभी कमियों के बावजूद शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त में एक अड़ियल विशेषता है कि यह भिन्न-भिन्न रूपों में बार-बार प्रकट होता है। यह इस लक्ष्य की पुष्टि है कि किसी न किसी रूप में शक्तियों का विभाजन तथा शासन कार्यों का पृथक्करण सरकार व शासन की व्यवस्था के अन्तरतम में ही निहित रहता है।'' कुछ विद्वान ठीक ही कहते है कि- ''शक्तियों का केन्द्रीकरण तथा शक्तियों का पृथक्करण दोनों ही न टलनेवाले तथ्य है।''

13.14 सारांशः-

शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त प्राचीन है। इस सिद्धान्त को देने के पीछे मानव स्वतन्त्रता की खोज तथा उसको निरन्तर बनाये रखने की इच्छा थी। यह सत्ता के एक स्थान पर केन्द्रीकरण को रोकने लिये लाया गया सिद्धान्त था जिसका मूल उद्देश्य नागरिक स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखना था। यह सिद्धान्त सरकार के तीनों व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका को परस्पर एक दूसरे से स्वतन्त्र एवं नियन्त्रण मुक्त रखना चाहता है। यह सिद्धान्त यह स्वीकार करता है कि जब-जब इन तीनों अंगों की शक्तियाँ किसी एक स्थान पर केन्द्रित हो जाती हैं तो वहाँ पर निरंकुश शक्ति का जन्म हो जाता है। निरंकुश सत्ता के आते ही नागरिक स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जाती है। नागरिक स्वतन्त्रता

को सुरक्षित एवं निर्बाध बनाये रखने के लिये यह सिद्धान्त अस्तित्व में आया। नागरिक स्वतन्त्रता के इतिहास में यह मील का पत्थर साबित हुआ।

लाँक पहला राजनीतिक विचारक था जिसने सर्वप्रथम माना था कि नागरिक स्वतन्त्रता के लिये सरकार के अंगों का पृथक्करण आवश्यक है। लाक के बाद मांटेस्क्यूने इस सिद्धान्त को नई ऊँचाइयों पर पहुंचाया। सर्वप्रथम मांटेस्क्यूने इंग्लैण्ड के संविधान का अध्ययन कर शक्ति पृथक्करण की एक व्यापक एवं व्यवस्थित सिद्धान्त के रूप में स्थापित किया। मांटेस्क्यूके बाद ब्लैकस्टोन, बाइल आदि ने इसे नई ऊंचाइयों पर पहुंचाया। पूर्व में यूनानी विचारकों, सिसरो, अरस्तू, प्लेटो आदि ने विकेन्द्रित सत्ता को मानव के हित में बताया था।

यह सिद्धान्त सरकार के तीनों अंगों को न केवल पृथक एवं स्वतन्त्र रखने की वकालत करता हैवरनइनसे जुड़े कार्मियों को भी स्वतन्त्र रखने का जोर देता है। आधुनिक समय में राज्यों के बढ़ते कार्यक्षेत्र, जटिल एवं तकनीकी प्रवृत्ति के कार्यों की अधिकता ने अंगों के पृथकीकरण को अव्यवहारिक बना दिया है। आज के समय में प्रदत्त विधायन को स्वीकार किया जा रहा है। जिसमें विधायिका के कार्यों को हल्का करने के लिये विधि निर्माण का सीमित दायित्व कार्यपालिका को सौंप दिया जाता है। इस प्रकार आधुनिक सरकार के तीनों अंगों में पूर्ण पृथकता न तो संभव है और न ही व्यवहारिक है। चाहे अध्यक्षात्मक शासन हो या संसदात्मक शासन सभी में अंगों के बीच सहयोग एवं सामंजस्य आवश्यक है। अध्यक्षात्मक शासन जिसे शक्ति पृथक्करण का आदर्श माना जाता है वहाँ भी व्यवहार में अंगों के बीच सहयोग एवं सामंजस्य से ही शासन आगे बढ़ता दिखायी पड़ता है। पूर्ण पृथक्करण न तो सभंव है और न ही व्यवहारिक है। अतः इस दशा में पृथक्करण के सिद्धान्त के आगे और सिद्धान्त अवरोध और संतुलन का सिद्धान्त कारगर दिखता है। यह सिद्धान्त प्रत्येक अंग की स्वतन्त्रता तो सुनिश्चित करता है। साथ में दूसरे का निर्भरता को भी निश्चित करता है। इस सिद्धान्त में प्रत्येक शासन का अंग दूसरे अंग को नियन्त्रित करता हुआ दिखायी पड़ता है। आधुनिक समयमेंअवरोध एवं संतुलन का सिद्धान्त बहुत कारगर एवं प्रभावी है। अमेरिका की अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था में विधायिका कार्यपालिका द्वारा (राष्ट्रपति) की गई नियुक्तियों तथा संधि समझौते की पुष्टि करता है और उसे नियन्त्रित करता है। दूसरी तरफ राष्ट्रपति विधायिका द्वारा पारित विधेयकों को वीटो कर कानून बनने से रोक सकता है तथा उसे नियन्त्रित करता है। निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि शक्ति पृथक्करण तथा उसकी अगली कड़ी अवरोध संतुलन का सिद्धान्त एक प्रभावी एवं उपयोगी सिद्धान्त है ।

13.15 शब्दावली:-

1.कार्य विशेषीकरणः- इस सिद्धान्त में यह स्वीकार किया जाता है कि व्यक्ति की योग्यता के अनुसार विशेष कार्य सौंपा जाना चाहिए।

2.प्रदत्त विधायनः- आधुनिक समय में बढ़े हुए विधायिका के कार्यों को कम करने के लिये कार्यपालिका को कानून बनाने की शक्ति सौंपने की व्यवस्था प्राप्त विधायन है।

3.महाभियोगः- राष्ट्रपति तथा न्यायाधीशों को पद से हटाने की विशेष प्रक्रिया महाभियोग कहलाती है।

4.न्यायिक पुनरावलोकनः- विधायिका के निर्मित कानूनों तथा कार्यपालिका के आदेशों को संवैधानिकता की जांच करने की न्यायपालिका की शक्ति न्यायिक पुनरावलोकन कहलाती है।

5.वीटोः- विधायिका द्वारा स्वीकृत विधेयक जब राष्ट्रपति के पास अनुमोदन के लिये जाता है और राष्ट्रपति हस्ताक्षर न कर वापस कर देता है। राष्ट्रपति की यह शक्ति वीटो शक्ति कहलाती है।

6.अध्यादेशः- विधायिका का सत्र न चल रहा हो और आकस्मिक कानूनों की आवश्यकता हो तब कार्यपालिका अध्यादेश जारी करती है। अध्यादेश कार्यपालिका द्वारा निर्गत कानून होता है।

13.16 अभ्यास के प्रश्नः-

1.निम्न में से कौन सा सरकार का अंग है?

(अ) विधायिका (ब) कार्यपालिका (स) न्यायपालिका (द) सभी

2.निम्न में से कौन यूनानी विचारक है?

(अ) सिसरो (ब) प्लेटो (स) अरस्तू (द) सभी

3.मांटेस्क्यूका शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का उल्लेख है-

(अ) दि गर्वनमेंट (ब) स्पिरिट ऑफ लॉ (स) स्टेट (द) ले विभाजन

4.शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त का आदर्श उदाहरण है-

(अ) भारत (ब) इंग्लैण्ड (स) अमेरिका (द) सभी

5.अवरोध एवं संतुलन का सिद्धान्त कार्य करता है-

(अ) विधायिका-कार्यपालिका सहयोग एवं नियन्त्रण (ब) कार्यपालिका और न्यायपालिका सहयोग एवं नियन्त्रण (स) विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका सहयोग एवं नियन्त्रण (द) कोई नहीं

13.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1.गेना0 सी0वी0 , तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं

2.मल्ल वी0पी0, भारत का राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारत का संविधान

3.जैन आर0वी0एस0 , तुलनात्मक राजनीति

4.अग्रवाल आर0सी0, आधुनिक सरकारें के सिद्धान्त एवं व्यवहार

5.जैन पुखराज, आधुनिक सरकारें, सिद्धान्त एवं व्यवहार

13.18 सहायक उपयोगी सामग्रीः-

1.सोडारो जे माईकल , कम्परेटिव पॉलिटिक्स

2.राम गांधी जी, तुलनात्मक शासन एवं राजनीति

3.गाबा ओ0पी0, राजनीति शास्त्र की रूपरेखा

4.खन्ना वी0एन0, आधुनिक सरकारें

5.सिघंल एस0सी0, आधुनिक सरकारों के सिद्धान्त एवं व्यवहार

13.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:-

1.द, 2.द, 3.ब, 4.स ,5.स

13.20 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1.शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त से क्या समझते है? इसके गुण-दोष की व्याख्या कीजिये।

2.अवरोध संतुलन सिद्धान्त पर निबन्ध लिखिये।

3.अमेरिका में अवरोध एवं संतुलन सिद्धान्त किस प्रकार काम करता है। इसकी व्यापक व्याख्या कीजिये।

4.''पूर्ण पृथक्करण न केवल अव्यावहारिक वरन अवांछनीय है।'' इस कथन की व्याख्या कीजिये।

5.शक्ति पृथक्करण एवं अवरोध संतुलन सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं? नागरिक स्वतन्त्रता में इसके योगदान को स्पष्ट कीजिये।